भारतीय साहित्य

(हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय का मुखपत्र)

अप्रैल १९५९

[वर्ष ४, अंक २]

सम्पादक

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रकाशक :—

संचालक,

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय,

आगरा ।

वार्षिक मूल्य १२, रु० ।

भारतीय साहित्य

वर्ष ४, अंक २ ।

मुद्रक :—

एच० के० कपूर,

आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,

आगरा ।

विषय-सूची

डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जी ने कहा कि मैं इतिहास का भी प्रेमी हूँ और साहित्य का भी। कुछ अंश में यह बात ठीक है। किन्तु सिद्ध प्रेमी होना बहुत मुश्किल है। मैं तो जैसा इतिहास का पहले विद्यार्थी था, वैसा ही अब भी हूँ। और हिन्दी का भी जैसा विद्यार्थी पहले था, वैसा ही अब भी हूँ। इसलिए यहाँ मैं विद्यार्थी की हैसियत से ही कुछ कहूँगा।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे देश में माध्यमिक काल में विशेष रूप से १५वीं, १६वीं और १७वीं शताब्दी में हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य की अपूर्व उन्नति हुई। हिन्दी साहित्य चाहे छठी शती से शुरू हुआ हो या पाँचवीं शती से शुरू हुआ हो मगर वह अपने पूर्ण गौरव पर, पूर्ण सौन्दर्य पर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में पहुँचा। प्रश्न यह उठता है कि इन शताब्दियों में हिन्दी साहित्य क्यों उठा और उठा तो उसकी विशेषता क्या है। क्या देश में कोई ऐसी घटना हो गई थी जो हमारे इस समय के साहित्य में पाई जाने वाली विशेषताओं के लिए उत्तरदायी हो। यह प्रश्न और भी स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि ये विशेषताएँ हमारे साहित्य में आई ही नहीं, बल्कि अपने पूर्ण यौवन से साथ आईं। इतिहासकार कहते हैं कि इस युग में मुसलमान लोग बहुत बड़ी संख्या में आये और उनके आने से यहाँ का वातावरण बहुत दूषित हो गया। व्यसन और व्यभिचार की मात्रा बहुत बढ़ गई। उत्तेजना बढ़ाने के लिए वे लोग हर प्रकार का प्रयत्न करते थे। शराब पीते थे, गरमागरम माल खाते थे और जब उससे भी उनकी पूर्ति नहीं होती थी तो फिर कवियों और गायकों को बुलाकर कहते थे कि अब कुछ चटपटी बातें सुनाओ। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा साहित्य का यह अंग अस्तित्व में आया। कम से कम १७वीं शती का अंग इसी का है। यह तो १७वीं शती की बात हुई। १६वीं शती के विषय में उनकी धारणा है कि रामानुजाचार्य ने दक्षिण में एक मत विशिष्टाद्वैत नाम से चलाया था और फिर उनके थोड़े समय के बाद मध्वाचार्य ने अपने द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार किया। इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयायी बंग देश से होते हुए प्रायः उत्तर में आए और यहाँ पर उन्होंने उनका प्रचार किया। इस प्रचार के

फलस्वरूप देश में भक्ति संबंधी कुछ भावनाएँ उठीं। १५वीं शताब्दी के अन्त में और १६वीं शताब्दी में उनका पूर्ण विकास हुआ। इस विकास, प्रचार और प्रसार से अनुमान लगाया जा सकता है कि जनता को इस साहित्य की अन्तर्भूत भावनाएँ कितनी रुची होंगी। जब जनता साधारण रूप से किसी सिद्धान्त को मान लेती है और वह सिद्धान्त सर्वव्यापी हो जाता है तो कोई न कोई परिस्थिति वहाँ पहले से ऐसी रहती है जिससे वह विशिष्ट सिद्धान्त लोगों को इतना रुचिकर, आदरणीय और ग्रहणीय हो जाता है। प्रश्न यह है कि उस समय कौन परिस्थिति ऐसी थी कि यह बात इतनी रुचिकर हो गई, इतनी शीघ्रता से इतना व्यापक प्रचार हो गया और लोगों को इतनी अधिक स्फूर्ति मिली जिसका प्रमाण तत्कालीन गीति काव्य में और अन्य प्रकार के काव्यों में पाया जाता है। इस विन्दु पर यह विषय इतिहास, साहित्य तथा संस्कृति तीनों से मिल जाता है। इसलिए यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इस समय इस विषय का और निरूपण करूँ।

भक्ति की अपनी एक विशेषता है। दर्शन का दर्शन सिर्फ थोड़े से ही आदमी कर सकते हैं। उसको पढ़ भी लें तब भी शब्दार्थ की दृष्टि से 'दर्शन' जो कुछ है, वह उन्हें सिद्ध नहीं हो सकता। बिरले विद्वान या विरले महात्मा ही दर्शन प्राप्त कर पाते हैं। और दूसरी कठिनाई इन्टेलेक्चुअलिज्म या बौद्धिकता में यह है कि 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' के अनुसार सब अपनी-अपनी रायजनी करते हैं और उस रायजनी के कारण कौन ठीक कहता है कौन गलत कहता है, इसका निर्णय कठिन हो जाता है। और तो और, इसके निर्णय में भीष्मपितामह तक घबरा गए।

अब ऐसी दशा में क्या हो? 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'। धर्म का स्वरूप गुफा म निहित है और गुफा टेढ़ी-मेढ़ी है। सम्भवत: उस गुफा में अन्धकार भी होगा। तो गुफा के अन्धकार से कौन उस तत्व को ले आएगा? इसके लिए वही विद्वान् कोई मार्ग निकाल सकते हैं और उन्होंने बतलाया है कि इसका एक मार्ग है योग-साधना। योग से तुमको उसके दर्शन प्राप्त होंगे। योग के मार्ग की विशेषता यह है कि जितना संयम है और जितना योगशास्त्र में लिखा हुआ है उसका पालन तो करो ही, वह तो केवल भूमिका है, किन्तु उसके अतिरिक्त एक चीज साधना भी करनी है। साधना में इड़ा, सुषुम्ना, पिंगला और न मालूम शरीर के भीतर के कितने चक्रों का सहारा लेना पड़ेगा। इसके लिए मूलाधार से उठकर और सहस्रार चक्र पर कुंडलिनी जगाओ। आज भला कितने आदमी इस प्रकार के अभ्यास के लिए तैयार हैं और भारतवर्ष में कितनी कुण्डलिनी जगाई गई?

जब इस दिशा में प्रवृत्त होने का साहस और रुचि विद्वानों में भी नहीं है, तब साधारण जनता के सामने इन्हें रखना व्यर्थ ही है, क्योंकि उनका जीवन इतना साधारण है कि उनकी अत्यन्त साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति भी मुश्किल है। इससे अगर किसी को लाभ होगा तो केवल उन्हीं दो चार मौलिक व्याख्याताओं को होगा। इसी वजह से कबीर दास जी ने अपने ग्रंथ में कह दिया कि सत्य और मर्म जो है, वह न तो रामचन्द्र ने पाया, न मुहम्मद ने पाया, न मछन्दर नाथ ने पाया और न गोरखनाथ ने पाया। वह सत्य

केवल कबीर ने देखा है। रामचन्द्र और कबीर के बीच सहस्रों वर्ष बीत गए, किन्तु इतने वर्षों में सत्य पाने वाला एक ही सौभाग्यशाली विद्वान् निकला। ऐसा कठिन मार्ग बतलाने से जनता को तो कोई लाभ नहीं है। आपको अवश्य ही कुछ लाभ हो सकता है, क्योंकि जनता आपकी तरफ आकर्षित होकर आपका सम्मान करेगी, आपको महात्मा कहेगी और आपका गुणगान करेगी। स्वयं जनता को इसका कोई व्यावहारिक लाभ होना संदिग्ध ही है। इसलिए ऐसे मार्ग में ज्ञान कितना भी हो, उस पर चल पाना बड़े-बड़ों के बस की बात नहीं है। एक उर्दू के शायर ने कहा है "किसी को काबा किसी को पसन्द बुतखाना, है अपना अपना मजाकेनजर जुदा गाना"। अब इस दृष्टि से देखिए जनता की क्या आवश्यकता है। उसको एक ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो उस वक्त की उसकी परिस्थिति में उसे संतोष दे, उसकी आशा कायम रखे, उसे स्फूर्ति तथा उत्साह दे जिससे कि वह उस परिस्थिति का सामना कर सके। यह परिस्थिति क्या थी ?

उस समय परिस्थिति यह थी कि राज्य मुसलमानों के हाथ में था, शक्ति उनके हाथ में थी, और हम यह सब देखकर बेकार आहें भरा करते थे। जितने राजा थे, सब मुसलमान बादशाहों के अधीन थे। कोई स्वतन्त्र नहीं था। यह एक सत्य बात है और इसको मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। मगर जब यह कहा जाता है कि मुसलमानों में ही दुराचार व्यभिचार की मात्रा अपूर्व थी तब मुझे संदेह हो जाता है। मैंने कुछ संस्कृत भी पढ़ी है, कुछ महाकाव्य भी पढ़े हैं, वात्स्यायन का कामसूत्र भी पढ़ा है और इन सबसे मेरे सन्देह का समर्थन होता है। कुमारसम्भव में इन्द्र से कामदेव कहता है—कौन सी कामिनी आपकी नजरों में चढ़ गई है, जरा इशारा तो करिए, फिर मैं उसे इतना व्याकुल कर दूंगा कि वह आपके चरणों पर आकर गिर पड़ेगी।

अब आप देखिए: इन्द्र देवताओं के राजा हैं, पर उनकी मनोकामना क्या है, और उनके मित्र क्या सोचते हैं ? देवताओं के यहाँ अप्सराएँ घूम रही हैं, उनका प्रयोग ऋषियों मुनियों के तप भंग करने में किया जाता है। और ऋषिमुनि भी ऐसे-वैसे नहीं, विश्वामित्र जैसे, जिन्होंने एक बार क्रोध में आकर ब्रह्मा के सृष्टि-निर्माण के गर्व को खंडित करने के लिए अपने तप और योगबल से एक नई सृष्टि की रचना आरम्भ कर दी, और फिर प्राकृतिक लीला के अव्यवस्थित हो जाने के भय से त्रस्त, जनसमुदाय की अनेक प्रार्थनाओं के बाद ही जो शान्त हुए। इतने तेजस्वी और तपस्वी मुनि के तप को भंग करने के लिए साधारण व्यक्तियों ने नहीं, देवताओं ने सभा करके, प्रस्ताव पास किया। महाकाव्य से इस प्रकार के और भी उदाहरण मैं आपको दे सकता हूँ:—जल-विहार के, वनविहार के, और भी कई विहारों के। ये विहार कुमारसम्भव में ही नहीं, अन्य ग्रंथों में भी हैं।

कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण मुझे नहीं मिला जिससे मैं तुलना कर सकूँ, और बतला सकूँ कि किस-किस शताब्दी में हिन्दी साहित्य का कितना और कैसा आन्दोलन हुआ। इसीलिए जो सज्जन यह कहते हैं कि इस युग में दुराचार तथा व्यभिचार अधिक मात्रा में था, मेरी समझ में उनकी बात अत्युक्ति अलंकार है और अत्युक्ति अलंकार होने के नाते उनका कथन काव्य का ही एक अंग हो सकता है। इतिहास का समर्थन उसे नहीं

मिलता। मैंने थोड़ा बहुत इतिहास लिखा है। मुझे इस बात का संतोषजनक प्रमाण नहीं मिला। इसलिए सबसे बड़ी कठिनाई यह हो जाती है कि जो हिन्दी-प्रेमी प्रचलित इतिहास के भरोसे आज कुछ लिखना चाहते हैं उनको पहले ही यह भ्रमात्मक बात मिल जाती है जिसे कि हम लोग इतिहास के विद्यार्थी भी अच्छी तरह नहीं समझ पाते। मगर साहित्य में यह एक प्रतिष्ठित सिद्धान्त सा मान लिया जाता है और फिर उसकी नींव पर एक बड़ा भारी प्रासाद खड़ा करने का प्रयत्न किया जाता है।

एक बात और है। क्षण भर के लिए यह मान भी लिया जाय कि यवनों के सम्पर्क से हममें यह रोग आ गया जो ऐसा फैला कि शरीर के किसी एक विशेष अंग पर ही सीमित नहीं रहा, नख से शिख और शिख से नख तक फैल गया। ठीक भी है, हमारी यह कविता नख-शिख से शिख-नख शृंगार से पूर्ण है। लेकिन ऐसी स्थिति में जो पहला रोगी होगा और जिसके सम्पर्क से हमारे समाज में यह रोग आया, उसकी दशा तो बहुत ही जर्जर हो गई होगी। हमारे समाज में यदि यह रोग मुसलमानों से फैला, तो उनके समाज में तो यह रोग असाध्य ही हो गया होगा और हमारा रोग जब हमारे काव्य में इतनी अधिकता के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है, तब उस असाध्य रोगी के साहित्य में इसकी मात्रा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेकिन क्या साहित्यों की पारस्परिक तुलना से इस बात का समर्थन होता है? अमीर खुसरो फारसी का बड़ा भारी शायर हुआ है और अमीर खुसरो के बाद अकबरी दरबार में तथा जहाँगीरी दरबार में जो शायर हुए, उनका जमाना ही फारसी का सबसे बड़ा जमाना है। अमीर खुसरो का मैं सम्मान करता हूँ लेकिन शायरी और दार्शनिक शायरी में अमीर खुसरो का १५वीं-१६वीं या १६वीं-१७वीं शताब्दी के कवियों से कोई मुकाबिला नहीं। उनके साहित्य में हमको एक भी बात नहीं दिखलाई पड़ी जिसे आप नख-शिख वाला शृंगार-साहित्य कहते हैं। १६वीं शती के जिस साहित्य को आप रीति साहित्य कहते हैं उस प्रकार का रीति साहित्य वहाँ कहीं नहीं मिलता। जब उन्होंने इश्क या शायरी की तो उन्होंने कन्धे के ऊपर ज्यादातर निगाह रखी। कन्धे से नीचे उतरने की बहुत कम कोशिश की और अगर की तो कहीं थोड़ा सा इशारा कमर का कर दिया होगा, अन्यथा नहीं। आपके यहाँ यह साहित्य लबालब भरा पड़ा है। यह कहाँ से आया? जो उनको भी नहीं मिली वह कौड़ी आप कहाँ से मार लाए? यह बात इतिहासज्ञ को और साहित्यकारों को बतलानी चाहिए क्योंकि जब तक यह बात स्पष्ट रूप से समझ में न आ जाए तब तक जो प्रचलित धारणाएँ हैं उनके बारे में हम लोगों को कठिनाई होती है। परीक्षक रहते हुए ऐसी आदत ही पड़ गई है कि बिना परीक्षा किए हुए कोई बात हम लोग मानते ही नहीं।

तीसरी बात यह है कि क्या उस समय लोगों की दुर्दशा अधिक थी? इस संबंध में तो यूरोपीय विद्वानों में ही मतभेद है। कुछ कहते हैं कि किसान लोग और देहात के लोग उस समय इतने दुखी नहीं थे जितने कि स्वतन्त्रता पाने के पहले और स्वतन्त्रता के बाद। इस दिशा में मुझे कोई अनुभव नहीं है। मैं हमेशा पढ़ता-लिखता रहता हूँ, बाहर नहीं जाता। जो लोग नगरों और देहातों में घूमते रहते हैं वे ही बता सकेंगे

कि अब कैसी दशा है। मगर स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पहले किसानों की दशा बहुत ही दयनीय थी। कुछ लोगों का कहना है कि तब यहाँ के लोग भूखों मरते थे। लेकिन उस समय ही किसी-किसी यूरोपीय लेखक ने यह मत व्यक्त किया है कि यहाँ भूखों मरने की समस्या नहीं थी। यों धन का तो अभाव था क्योंकि सोना-चाँदी आदि धातुओं का प्रचार, और विशेषकर सिक्कों के लिए, आज जितना नहीं था। व्यापार भी इतना नहीं था, जितना अब है। फिर भी, इसमें संदेह नहीं कि उस समय पेटपूजा करने भर के लिए अन्न सुलभ था। लेकिन उनका पेट इस कदर भरा हुआ भी न था कि वे बड़ी दूर की उड़ान ले सकते। भरे पेट वाले और बड़ी दूर की उड़ान ले सकने वाले तो थोड़े से ही थे। फिर भी साधारण जनता पूरी तरह भूखी नहीं थी। यानी भूखी थी जरूर, लेकिन इतनी अधिक भूखी नहीं थी। ऐसी दशा में किन्हीं सज्जन ने कहा कि इस साहित्य में स्फूर्ति नहीं है। जब आदमी का मानसिक पतन होता है तब ऐसी मनोहर चीजों में उसकी तबियत लगती है, वर्ना उसकी तबियत नहीं लगती। किन्तु ऐसी स्फूर्ति लाने को कड़खे लिखे जाने चाहिए थे तब मालूम होता कि आप अपने देशवासियों को उत्तेजना दे रहे हैं। परन्तु यहाँ तो कड़खे न लिखकर भजन लिख डाले गए।

एक और भी बात आपको इस संबंध में सोचनी चाहिए। जिस समय यह सब घटना हो रही थी उस समय एक सम्प्रदाय साधुओं का था जिसे आप निर्गुण उपासक कहते हैं। अब एक विचार-सम्प्रदाय यह भी विद्यमान है। यह फिर किस परिस्थिति से निकला? उस वक्त भी मुसलमान सब वैसे ही धड़ाधड़ राज्य कर रहे थे, उस वक्त भी यही दुर्दशाएँ थीं। उस वक्त भी इतना व्यभिचार था, मगर उसकी यह भिन्न प्रतिक्रिया कैसे हुई? इनकी राय में और उनकी राय में जमीन आसमान का फर्क है। ये कहते हैं वैराग्य, त्याग और इस तरह से इड़ा सुषुम्ना के जरिए से चलो। वे कहते हैं:—

मुखड़ा क्या देखे दरपन में,
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, जोड़ धरी बरतन में,
बन्द हुए जब दस दरवाजे, रह गई मन की मन में,
मुखड़ा क्या देखे दरपन में।

इस तरफ भी जरा आप ध्यान दीजिए। इस प्रकार से उन्होंने कहा कि माया कैसी भयंकर है और माया का यह सबसे भयंकर रूप स्त्री है। स्त्री नरक का दरवाजा है, यमराज के यहाँ से पक्की सड़क है। मनुष्य की अध्यात्म-भावना का विनाश करने वाली है।

तो ये बातें इन सबों को सुझाई पड़ीं, उन सन्तों को नहीं सुझाई पड़ीं। क्या वह वातावरण कोई दूसरा था जिसमें इतना दर्शन रचा गया जितना न हुआ था और न आगे होता दिखता है? इसके बाद इतिहास में इतना दार्शनिक प्रयत्न नहीं हुआ। आप बौद्ध दर्शन और शंकराचार्य दर्शन को देखकर चकाचौंध हो जाते हैं, मगर इस दर्शन का देश के ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। जब हम भारत पर मुसलमानों की विजय की बात करते हैं तो अपनी कमजोरियों को पहिले उठाकर नहीं देखते और न यह देखते

हैं कि इन दर्शनों ने इन हमारी कमजोरियों को दूर करने में कोई भी विशेष सहायता नहीं की, कोई ऐसी स्फूर्ति प्रदान नहीं की। हाँ, आचरण की श्रेष्ठता में यह जरूर कर दिया कि कुछ विद्वान् पैदा कर दिये, कुछ मठ पैदा कर दिये, जहाँ अच्छे-अच्छे साधु रहने लगे, ऐसे सन्यासी रहने लगे जो सरस्वती की तरह बातचीत करते थे। इन विद्या-केन्द्रों में देश-विदेश के चुने हुए विद्वान् एकत्र होते थे। अपेक्षाकृत कम बौद्धिक स्तर अथवा विद्वत्ता वाले पंडितों का तो इनमें प्रवेश ही संभव न था। प्रवेश पाने के लिए बाहरी द्वार से लेकर मुख्य कक्ष तक दर्जनों परीक्षाएँ पास करनी पड़ती थीं।

नदिया एक विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। अकबर तक के जमाने में लिखा हुआ है कि काशी और नदिया में संस्कृति के केन्द्र थे। नदिया में विद्वान् लोग कश्मीर तक से आते थे और आते ही उनसे शास्त्रार्थ किया जाता था। पहिले जो भारतवर्ष के विश्वविद्यालय थे उनके दरवाजों पर अबकी तरह जाहिल नहीं बैठे रहते थे कि ये चपरासी बैठे हुए हैं या दरबान बैठे हुए हैं। उस जमाने में विश्वविद्यालय के हर दरवाजे पर विद्वान् बैठे रहते थे और जब आप उसके अन्दर जाना चाहते थे तो आपसे पूछते थे कि आपको आता क्या है? पहिले एक परीक्षा यहाँ, उससे निकल गए तो दूसरी परीक्षा वहाँ। जब अनेक परीक्षाएँ दे चुके, तब फिर जाकर वह केन्द्र मिलता था, जहाँ विद्वत् समाज बैठा होता था। ऐसा ही विक्रम शिला में था और ऐसा ही नालन्दा में था। नदिया के विद्वत्समाज में जाने से पहिले अपनी परीक्षा तो देते जाओ कि तुम स्वयं कितने पानी में खड़े हो। लिखा है कि साउल भट्ट न्याय शास्त्र के वक्ता थे लेकिन उनकी कुछ नहीं चली और केशव पंडित कश्मीर से आए हुए थे, उनकी खिल्ली उड़ा दी गई। इस पर उसी वक्त उन्होंने ग्रंथ लपेटे और लपेट करके गंगाजी में फेंक दिये, कहा—इससे कुछ फायदा नहीं, अब हम फायदे की बात सोचेंगे।

यह कोई ऐतिहासिक घटना है या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते मगर यह एक प्रचलित किंवदन्ती जरूर है। और अगर ऐतिहासिक घटना न मानकर तत्कालीन स्थिति का प्रतीक-मात्र माना जाय तो यह कहा जा सकता है कि नीरस, कठिन और कष्टसाध्य होने के कारण बौद्धिकता के प्रति लोगों में थकावट आ गई थी।

यह वैराग्य कठिन ऊधो हम सबको।

इस सिद्धान्त को पहिले ही गोपियों ने उद्धव से कह दिया और आप देखेंगे कि साहित्य में जो उद्धव और गोपियों का संवाद हो रहा है वह असल में किसी एक निश्चित घटना का इत्तिवृत्तात्मक आकलन नहीं है, उससे कुछ अधिक है। लोग कहते हैं—गोपियाँ तो जाहिल थीं, उद्धव तो पंडित था। लेकिन जाहिल औरतें ऐसी बातें करती हैं कि मालूम होता है पंडित बातें कर रहे हों। वे लोग यह नहीं सोचते कि गोपियाँ भले ही जाहिल हों, लिखने वाले तो जाहिल नहीं थे। उन्होंने गोपियों और उद्धव के संवाद में उठ सकने वाले सब प्रश्नों पर विचार किया है और जरा शान्तिपूर्वक पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि इस प्रसंग पर एक ने नहीं लिखा है, एक उद्धव गीत

नहीं लिखा गया है, उद्धव का यह प्रसंग तो हमारे हिन्दी साहित्य में निरन्तर अजस्र धारा के रूप में चलता आ रहा है, अब तक चला आ रहा है। रत्नाकर जी ने लिखा है और रसाल जी ने भी उस पर कुछ छन्द लिखे हैं। यह तो दार्शनिक और साहित्यिक स्तर पर विवेचन है। इस प्रकार गोपियों के मुख से हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत उद्धव-गोपी संवाद के प्रसंग में विविध वर्गों की इस शुष्क बौद्धिकता के विरुद्ध विद्रोह की भावना मुखरित होती रही है। पर साधारण जनता के लिए तो इतनी-सी चीज बतला दी गई कि इड़ा और पिंगला—इन सबकी चिन्ता में तुम मत पड़ो, तुम तो अपने इसी साधारण जीवन को स्वर्ग बना सकते हो। और उसे स्वर्ग बना सकने का एक मात्र उपाय यह है कि तुम भक्ति-भजन पहले कर डालो और भक्ति भी हृदय में ऐसी मत पैदा करो जो तुम्हें समाज से विभक्त करे। तुम तो समाज के अन्दर रहते हुए भक्ति पैदा करो और वह ऐसे कि अपने बच्चे, अपनी स्त्री, अपने बन्धुओं से, अपने समुदाय से जितनी प्रीति बढ़ा सकते हो, बढ़ाओ। प्रीति-संबंधी साहित्य पढ़ो, नवधा भक्ति का वातावरण अपने घर में बनाओ और इसमें रहते हुए थोड़े दिनों में आप से आप तुममें वह गुण आ जायगा जो एक भक्त में होना चाहिए। यानी मोक्ष के लिए यह आवश्यक है कि उसकी साधना के लिए वांछित शक्ति का उपार्जन साधारण जीवन से और गार्हस्थ्य जीवन से ही किया जाय। यह शक्ति ही ब्रह्मानन्द का आस्वादन कराएगी।

अब सवाल आता है कि इस रास्ते में तो विद्या की जरूरत ही नहीं है। निर्गुण वाले भी विद्या के विरुद्ध थे। उनमें किसी ने कहा है कि हम वेद जानते हैं। इस पर उन्होंने कहा क्या तुम्हीं वेद जानते हो। और उन्होंने आदेश देकर एक भैंसे से वेद पढ़वा कर दिखला दिया। लोग आश्चर्य करेंगे कि कोई ऐसी बातें भी लिख सकता है! भला कहीं भैंसे और बैल भी वेद पढ़ते हैं! लेकिन नहीं, इस बात का अपना एक अभिप्राय है। इसके बहाने उन्होंने यह बताया है कि वेद पढ़ते हुए भी आदमी भैंसे और बैल की तरह रह सकता है। इसलिए जीवन का निर्माण, अपने चारों ओर विशेष वातावरण की सृष्टि और आचरण का सुधार—इन्हीं बातों से साधारण जीवन में सिद्धि प्राप्त होती है, विद्वत्ता से नहीं। जहाँ आचरण की श्रेष्ठता की बात आती है, वहाँ किसी विद्वान् की जरूरत नहीं पड़ती। यहाँ तो जाहिल और पंडित सब एक मैदान में खड़े हुए हैं। प्रेम के मार्ग में गरीब और अमीर का कोई फर्क नहीं, विद्वान् और मूर्ख का कोई फर्क नहीं। यदि कोई अन्तर हो सकता है तो वह हमारे विपक्ष में ही होगा। क्योंकि वह भावुकता जो हम शीक्षितों के हृदय में उठती है, वह शायद इतनी तीव्रता से नहीं उठती क्योंकि हमारा मस्तिष्क और हमारी ऊर्मि अशुद्ध और अस्वाभाविक है। इसके विपरीत जिनकी बुद्धि शुद्ध और स्वाभाविक है, उनके हृदय में भाव और संवेग हमारी अपेक्षा अधिक तीव्रता से उठते हैं, क्योंकि उनका हृदय अभी अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं बिगाड़ पाया है।

तो यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका पालन आबालवृद्ध वनिता सभी स्वाभाविक रूप से कर सकते हैं, समझ सकते हैं, अनुभूति कर सकते हैं। और अनुभूति होना बहुत आवश्यक है क्योंकि जब तक अनुभूति नहीं होती तब तक विश्वास नहीं होता, जब तक विश्वास नहीं होता तब तक प्रेरणा नहीं होती, जब तक प्रेरणा नहीं होती तब तक प्रयत्न

नहीं होता और जब तक प्रयत्न नहीं होता तब तक सिद्धि नहीं होती। यहाँ अनुभूति का रास्ता साफ लगा हुआ है।

इसी गृहस्थाश्रम और गृहस्थ धर्म को लोग फँसाने वाला कहते थे। बौद्धों ने कहा कि तुम संन्यास ले करके मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। गृहस्थाश्रम में हो तो यह भजन करते जाओ मगर मुक्ति की आशा मत करो। मुक्ति तो उसी को प्राप्त होगी जो संघ में संन्यासी होकर मिल जायगा। शंकराचार्य ने भी गृहस्थाश्रम पर कृपा-दृष्टि नहीं की। उनके अनुसार बिना ज्ञान सिद्धि नहीं होती।

अब यह ज्ञान वेद में है या दर्शन में है या उस अनुभूति में जिसको कि हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं ? और अगर इस अनुभूति की नींव पर एक सिद्धान्त या मत रखा जाय तो वह हम सब लोगों के लिए उपयोगी होगा। यह धर्म का जनतंत्रात्मक मार्ग है। यह कोई सामन्तवादी धर्म नहीं है जिसका उपयोग केवल कुछ थोड़े से लोग, थोड़े से विद्वान् कर सकें। यह धर्म और यह दर्शन आप संस्कृत पढ़ें तो वल्लभाचार्य के भाष्य मौजूद हैं, रामानुज का भाष्य मौजूद है। मध्वाचार्य के भाष्य मौजूद हैं, और १८वीं शताब्दी में चैतन्य के ऊपर भी एक भाष्य उस सिद्धान्त के अनुकूल भी संस्कृत में मौजूद है। उस भाष्य को पढ़ लीजिए और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझ लीजिए। यहाँ पर दर्शन और जीवन, व्यवहार और परमार्थ दोनों को मिलाने की कुछ चेष्टा की गई है। आदमी चेष्टा ही तो करता है। उसके जीवन में सफलता कहाँ तक मिलेगी, यह तो भगवान जाने। यहाँ एक बात और उठती है। जब मुसलमानों ने आकर भारत में बसना आरम्भ किया तो उनके और हमारे विचार परस्पर टकराने लगे। इस टकराहट का परिणाम यह हुआ कि न तो उन्हीं को आराम मिलता था और न हमें ही। आप इतिहास में देखिए कि बेचैनी दोनों तरफ थी। पहिले तीन सौ वर्ष तक मारकाट रोज ही होती थी, किसी बात पर कुछ न कुछ झगड़ा ही होता रहता था। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठा कि आखिर किया क्या जाय ? राजनैतिक ढंगों को सुधारने की बात भी लोगों के दिमाग में आती थी, क्योंकि राजनैतिक ढंग तो हमेशा एक से रहे हैं। जो पहले होता था वह आज भी होता है। वैसे, लिखने को तो इतिहास की पुस्तकों में हर राजा और बादशाह का वृत्तान्त अलग-अलग लिखा जाता है। इसी राजनैतिक कर्तव्य के पालन में बाज-बाज की गर्दन गड़ गई। अकबर को तो अब तक लोग गाली देते ही चले आ रहे हैं। वह हिन्दू को मुसलमान करना चाहता था और मुसलमान को हिन्दू करना चाहता था। और अब तो लोग यह लिख रहे हैं कि वह न तो मुसलमान था न हिन्दू, वह तो मंगोल था। चंगेजखाँ के खानदान का था। उसे क्या मतलब इन बातों से ! तमाशा देखता था अपने दरबार में। नवरत्न बुलाकर शोभा के लिए रख छोड़े थे, गुलदस्तों की तरह। दारा की तो गरदन ही काट दी गई क्योंकि वह उपनिषद् का तर्जुमा कर रहा था और कहता था कि उपनिषद् में वही सिद्धान्त हैं जो हमारी कुरान सिखलाती है।

तो इस विशिष्ट परिस्थिति में राजनैतिक दाँव-पेचों और धार्मिक असहिष्णुताओं की समस्या हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान रूप से आन्दोलित कर रही थी। दोनों के सामने न्यूनाधिक अंश में यह चुनौती विद्यमान थी, इसका सामना करना था और कोई

रास्ता निकालना था। ऐसे में भक्ति के इस मार्ग ने दोनों को आकर्षित किया। अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति प्रेम और भक्ति की बात हिन्दुओं की तो समझ में आई ही, मुसलमानों को वह विशेष रूप से रुची क्योंकि वे और किसी देवी-देवता की भक्ति न कर सकते थे। फारसी वाले तो किसी रूप को मानते ही नहीं। अगर रूप को मानें तो यह इस्लाम के बिल्कुल खिलाफ है। उनका खुदा रूप नहीं ले सकता, हम लोग तो जिस चीज का चाहें रूप बना लें—सरस्वती का रूप बना दें, लक्ष्मी का बना दें, कुबेर का बना दें, इन्द्र का बना दें, भगवान विष्णु का बना दें। वाग्देवता का रूप भी हमने खड़ा कर दिया है। इन रूपों की रचना करने का अभ्यास हमें वैदिक युग से ही था। आग को, पानी को, बादल को, सबको हमने मूर्तिमान कर दिया। मगर मुसलमानों को इसमें कठिनाई थी। वे तो अपनी रूह की तलाश में थे।

इसलिए जिस वक्त यह सिद्धान्त चला उस वक्त उनका ध्यान आकर्षित हुआ और हिन्दी साहित्य पर उन्होंने ग्रन्थ भी लिखे। हिन्दी साहित्य में उनका योग होना यही सिद्ध करता है कि इस समय कोई ऐसी बात चली थी जो हिन्दुओं के ही दिल पर असर नहीं करती थी, बल्कि मुसलमानों के दिल पर भी करती थी। आप यह ख्याल रखें कि कबीर आदि सन्तों के जो मत चले हैं उनके भी अनुयायी थे, इसलिए कि जीवन में दो ही रास्ते बतलाए गए हैं—प्रवृत्ति मार्ग और निवृति मार्ग, एक अनुराग और एक वैराग्य। तो लोग वैराग्य को भी मानते थे। लेकिन वैराग्य मत इतने जोरों से नहीं चला क्योंकि उसमें अनेक दोष थे। मनुजी ने कहा है कि बिना गृहस्थ आश्रम लिए वैराग्य लेना कोई अच्छा काम नहीं है। बौद्धों पर ब्राह्मणों का यही आरोप था कि वे हट्टे कट्टे जवान मजा करते हैं, इधर-उधर विश्राम करते हैं, कोई धन्धा नहीं करते, सिर्फ भोजन करते हैं। तो ऐसी दशा में इस साहित्य का आदर होना स्वाभाविक ही था, किन्तु दुर्भाग्यवश इस साहित्य के गुणों की परीक्षा अभी नहीं हुई। १९०४ से लेकर १९५८ तक हिन्दी की जितनी भी प्रगति हुई है, उसका पूरा नाटक हमने देखा है और देख रहे हैं। किन्तु इसी समय के आरम्भ में दो एक विशेष घटनाएँ हुईं। एक तो सुधार की हम में बहुत बड़ी कामना पैदा हुई कि जितने भी दोष हैं, दूर किए जायँ। लेकिन जो बहुत से दोष बतलाए गए उनमें कुछ तो वास्तविक दोष थे, कुछ वे दोष थे जिन्हें दूसरे लोगों के कहने से ही हमने दोष मान लिया था। चूँकि ये भावुकता वाली बातें नवयुवक में एक विशेष स्फूर्ति पैदा करती थीं, इसलिए वे लोगों को अच्छी नहीं जान पड़ीं। उन्होंने कहा कि यह सब कविता खराब है, यह तो राजाओं की ऐयाशी का मसाला है, और आप तो अच्छी कविता लिखिए—उर्वशी के ऊपर कुछ लिखिए, रम्भा के ऊपर कुछ लिखिए। इसके बाद यह आवश्यक समझा गया कि राजनैतिक दृष्टि होनी चाहिए, खड़ी बोली बननी चाहिए। इन सब आवश्यकताओं के कारण इस साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन जैसा होना चाहिए था, नहीं हुआ। इसलिए उस वक्त की आलोचनाओं पर पुनर्विचार होना चाहिए। यह पुनर्विचार ऐतिहासिक दृष्टि से भी होना चाहिए, शास्त्रीय दृष्टि से भी होना चाहिए और साहित्यिक दृष्टि से भी होना चाहिए। हिन्दी के बड़े-बड़े इतिहास लिखे जा रहे हैं लेकिन साहित्य में जो बातें एक बार कह दी गईं, बस वही लगातार

चली आती हैं। नई बोतलों में पुराना रंग भर कर सामने रख दिया जाता है। कहीं एक-आध बात मजे की कह दी या नई कह दी या कोई अपने तजुर्बे की कह दी। यह न तो गवेषणा है, न साहित्य-साधना है, न इतिहास है, न दर्शन। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यहाँ पर हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की गई है जहाँ अन्वेषक की वैज्ञानिक दृष्टि से साहित्य पर विचार होगा। मुझे विश्वास है कि अध्ययन करने पर यह सारी सामग्री 'साहित्य' की संज्ञा ही न पाएगी, बल्कि हिन्दी का मूल्यवान और अभिन्न अंग सिद्ध होगी, जिसे हटाना हिन्दी साहित्य के लिए घातक माना जायगा।

मेरी धारणा है कि तत्कालीन जीवन से संबंध रखते हुए उस समय के समस्त सृजन की परीक्षा की जाय। संस्कृत भी देखी जाय, हिन्दी भी देखी जाय, फारसी भी देखी जाय, इतिहास भी देखा जाय और कला की भिन्नता भी देखी जाय। यह सब अच्छी तरह समझ में आ जाने पर चिन्तन से वह परिस्थिति और वह चित्र उपस्थित किया जाय, जिसे लोग इतिहास कहते हैं। मैं इसीलिए अभी तक अपने को इतिहास का विद्यार्थी समझता हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि मैंने इन विषयों पर अन्तिम निर्णय दिया है, मैंने केवल आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए अपनी समस्याएँ इस विद्वत्समाज के सामने रख दी हैं।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

भाषावैज्ञानिक अनुसन्धान*

"**वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म**"—यह उपनिषद् का वाक्य है। यहाँ शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द या वाक्य की उपासना भी ब्रह्म की ही उपासना है। जब हम अपने यहाँ के प्राचीन शिक्षा, प्रातिशाख्य, व्याकरण, काव्यशास्त्रादि ग्रंथों को देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उक्ति कोई भावनात्मक उद्गार-मात्र नहीं है, वरन् शताब्दियों के अध्ययन, अनुशीलन और अनुसंधान का परिणाम है। एक महान् प्रयोजन को सामने रखकर विभिन्न दृष्टियों से हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषियों और आचार्यों ने भाषा-तत्त्व का अध्ययन किया था। "कानि पुन: शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि" इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है "रक्षोहागमलघ्वसंदेह: प्रयोजनम्" अर्थात् ज्ञान की रक्षा और संदेहों का निराकरण करके अर्थ की उपलब्धि शब्दों के अध्ययन का उद्देश्य था। अभी हाल में मैंने अमेरिका के एक भाषाविज्ञानी सिमूर चैटमैन का एक निबंध पढ़ा था, जिसमें भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र तथा साहित्यक व्याख्या का सम्बन्ध निरूपित किया गया है। इस विषय का सांगोपांग विवेचन अपने यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में हुआ है। हर्ष है कि आज के नवीन भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अब इन प्राचीन तथ्यों की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। पाणिनि और पतंजलि के ग्रंथ आज भी वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के लिए सर्वोत्तम आदर्श हैं। रूप-विन्यास तथा आकृतिमूलक विश्लेषण को यथावत् विकसित करने के लिए अनुसन्धान के क्षेत्र में उनके तथ्यों और प्रणालियों के गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन की आवश्यकता है।

यह केवल संयोग की बात नहीं है कि आधुनिक अर्थों में भाषाविज्ञान का प्रारंभ १८वीं शताब्दी में तब हुआ जब कि सर विलियम जोन्स तथा कोर्दो आदि पाश्चात्य विद्वानों को संस्कृत का पता चला। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं के शब्दों तथा व्याकरणिक रूपों की समानताओं से प्रभावित होकर इन विद्वानों ने तत्परता के साथ इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ किया। १९वीं शती में अध्ययन और अनुसंधान की इस परम्परा का और भी अधिक विकास हुआ और इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा फारसी, आर्मीनियन, स्लैवॉनिक, गॉथिक, केल्टिक आदि भाषाओं में ऐतिहासिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। इस प्रकार इस युग का भाषाविज्ञान यदि प्रणाली की दृष्टि से तुलना-

---

*दिल्ली विश्वविद्यालय की अनुसंधान गोष्ठी में दिया गया भाषण :

त्मक था तो विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक। फलतः तुलनात्मक भाषाविज्ञान और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर्यायवाची शब्द बन गये। मक्समूलर, ह्विटनी, ब्रुगमैन आदि ने इस प्रकार के अध्ययन से एक आदि मौलिक भाषा की कल्पना की, जिसे भारत-जर्मन या भारत-यूरोपीय नाम दिया गया। इसका बड़े विस्तार से साथ अध्ययन हुआ। बाद में इसी आधार पर संसार की अन्य भाषाओं का भी पारिवारिक वर्गीकरण किया गया। पहले विद्वानों का ध्यान केवल प्राचीन भाषाओं की ओर था, पर बाद में आधुनिक भाषाओं के सम्बन्ध में भी विचार किया जाने लगा। आधुनिक भारतीय भाषाओं का अनुसंधान करनेवाले प्रमुख विद्वानों में बीम्स, हार्नले तथा ग्रियर्सन के नाम उल्लेखनीय हैं। दक्षिण भारत की भाषाओं का भी अध्ययन हुआ, पर अपेक्षाकृत कम। द्रविड़ परिवार की भाषाओं का अध्ययन करने वालों में काल्डवेल का नाम उल्लेख्य है। ग्रियर्सन ने पहले-पहल भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया जो अपने ढंग का अनूठा कार्य था। इन प्रारम्भिक कार्यों के बाद आधुनिक भाषाओं के अधिक गम्भीर विवेचन भी होने लगे। इस दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य फ्रांसीसी विद्वान् यूल ब्लॉख़ का हुआ, जिन्होंने मराठी, भारत-आर्य तथा द्रविड़ का पांडित्यपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया। सर राल्फ़ लिली टर्नर का नाम भी इस संबंध में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने गुजराती तथा नेपाली डिक्शनरी के रूप में आर्य भाषाओं के शब्दों पर तुलनात्मक कार्य किया। आजकल वे आर्यभाषाओं के व्यौत्पत्तिक तुलनात्मक कोश को पूरा करने में लगे हुए हैं। इसी प्रकार आक्सफ़ोर्ड के श्री बरो तथा अमेरिका के एमेनो नामक विद्वान् द्राविड़ भाषा के व्यौत्पत्तिक तुलनात्मक कोश में साथ-साथ जुटे हुए हैं। आशा है कि निकट भविष्य में ये दोनों कोश हमें उपलब्ध हो सकेंगे। भारतीय विद्वानों में इस क्षेत्र में काम करने-वालों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नाम डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का है, जिन्होंने अपने 'ओरिजिन एंड डेवेलपमेंट आव बंगाली लैंग्वेज' में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन को ऐसे व्यापक और विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर दिया कि बाद की कुछ विशिष्ट कृतियों को छोड़कर—जैसे डा० बाबूराम सक्सेना का 'अवधी भाषा का विकास' अथवा डा० धीरेन्द्र वर्मा का ब्रजभाषा संबंधी ग्रंथ—अन्य ग्रंथों में उनका अनु-करण और पिष्टपेषण-मात्र होना स्वाभाविक हो गया।

आधुनिक भाषाविज्ञान के अध्ययन का नया अध्याय प्रारंभ होता है स्विट्ज़रलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् फ़र्दिनांद द सोसुर से, जिनका प्रसिद्ध सैद्धांतिक ग्रंथ १९१६ ई० में प्रकाशित हुआ। इन्होंने भाषा के संबंध में कई मौलिक बातें सामने रक्खीं, जिनसे परवर्त्ती अध्ययन असाधारण रूप से प्रभावित हुआ। इन्होंने भाषा के दो रूपों का निर्देश किया। एक तो वह है जिसको वस्तुतः भाषा नहीं, वाक् या भाषण मात्र कहना चाहिए। उसके लिए फ्रेंच भाषा में उन्होंने 'ल परोल' नाम दिया है। वह व्यक्तिपरक और प्रसंगपरक है। प्रत्येक व्यक्ति के भाषागत व्यवहार में बहुत भेद हैं। एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रसंगों में, भिन्न-भिन्न क्षणों में भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियों, शब्दों और अर्थों का प्रयोग करता है। प्रत्येक बार जब कोई व्यक्ति बोलता है, तब वह नई भाषाई घटनाओं का सृजन करता है। किसी व्यक्ति ने आज जिस ध्वनि का उच्चारण किया, आज जिस शब्द के द्वारा

जिस अर्थ का बोध किया, वही कल ठीक-ठीक वैसा नहीं कर सकता। उसकी कल की भाषा-शैली आज की भाषा-शैली से भिन्न थी और इसी प्रकार आज की भाषा-शैली से आनेवाले कल की भाषा-शैली भिन्न होगी। जहां एक ही व्यक्ति की भाषा के संबंध में इतने विभेद संभव हैं, वहां जब इतने व्यक्तियों की भाषा के संबंध की ओर ध्यान दिया जाता है, तब सहज ही हम उसके गतिशील रूप का अनुमान कर सकते हैं। देश और काल के विस्तार में फैले हुए व्यक्तियों के द्वारा भाषा की जो अगणित धाराएँ प्रवहमान हैं, उनमें क्षण-क्षण परिवर्तनशील गति व्याप्त है। इस प्रवृत्ति के कारण होनेवाले भेद तत्काल भले ही न प्रकट हों, परन्तु दो-तीन पीढ़ियों में अथवा कुछ कोसों की दूरी पर अनायास स्पष्ट हो जाते हैं।

इसके विपरीत भाषा का एक दूसरा पक्ष वह है जो स्थिर कहा जा सकता है। इसके लिए सोसुर ने 'ल एतात द लांग' इस पदावली का व्यवहार किया है; अर्थात् 'किसी विशेष भाषा की एक निश्चित अवस्था'। इसी को उन्होंने 'लांग' अथवा वास्तविक भाषा की संज्ञा दी है। भाषा का यह रूप समाज-परिनिष्ठित है और व्यक्ति-निरपेक्ष। उसमें प्रसंगगत भेदों की उपेक्षा है उसमें कल, आज परसों के भेद के लिए स्थान नहीं है उसमें मेरी भाषा, आपकी भाषा और उनकी भाषा के भेद के लिए भी गुंजाइश नहीं है। वह समाजगत व्यवहार, व्याकरण, कोश और प्रयोग-बल आदि की अनेक व्यवस्थाओं में बँधी हुई है। भाषण या वाक् के रूप में जहाँ भाषा जीववैज्ञानिक तथा वंश-परंपरा-संबंधी प्राकृतिक नियमों से संचालित होती है, वहाँ वास्तविक भाषा के रूप में वह समाज से पोषण प्राप्त करके स्थिर आकार ग्रहण करती है। किसी विशेष समय में किसी भाषा के अंतर्गत जो व्यवस्थाएँ काम करती हैं, उन्हीं के द्वारा वक्ता और श्रोता का संबंध निर्बाध रूप में चलता रहता है।

भाषा के व्यक्तिपरक रूप के कारण उसमें जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनकी दृष्टि से जो अध्ययन किया जाता है, वही कालक्रमिक या ऐतिहासिक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत होता है। उसके व्यक्तिनिरपेक्ष तथा समाजसापेक्ष रूप का ध्यान करके जब किसी निश्चित काल में उसके अंतर्गत काम करती हुई व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है तो उसके द्वारा उसका वह रूप प्रस्तुत होता है जिसको हम सांकालिक अथवा वर्णनात्मक भाषाविज्ञान कह सकते हैं।

सोसुर ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि भाषा ध्वनि या शब्दों का संग्रह-मात्र नहीं है, वरन् वह अनेक तत्त्वों की इकाइयों का एक सुनिश्चित संबंध है। इस संबंध या 'रिलाटा' के कारण ही अनेक इकाइयों के जोड़ने से भाषा एक व्यवस्थित रूप प्राप्त करती है। भाषा की यह अंतरंग व्यवस्था बड़ी महत्त्वपूर्ण है। परिस्थिति और प्रसंग-भेद से एक ही भाषा के कई रूप हो सकते हैं; जैसे—बोली जाने वाली हिन्दी, लिखित हिन्दी और तार की हिन्दी। ये सभी एक-दूसरी से भिन्न हैं, एक नहीं। प्रतीकों आदि की दृष्टि से इनमें बहुत अंतर है, परंतु इनमें व्यवहृत तत्त्वों के पारस्परिक संबंधों या 'रिलाटा' में कोई परिवर्त्तन नहीं; वह एक है, वही भाषा का अंतरंग रूप है।

भाषा में इन इकाइयों का स्थान और पारस्परिक संबंध, य दो बातें बहुत महत्त्व की हैं। ये इकाइयाँ वस्तुतः भावानयन की प्रक्रिया का परिणाम हैं। ध्वनि की दृष्टि से इनका विवेचन करते हुए सोसुर ने स्वनिम (फ़ोनीम) का विचार प्रस्तुत किया, जिसका अध्ययन आज अमेरिका आदि देशों में चरम विकास पर पहुँच रहा है। कोपेनहेगेन के भाषाविदों ने ग्लासोमैटिक्स के रूप में इस प्रकार के विचारों को गणित की तरह अंकों में प्रस्तुत किया है, जो अत्यंत सूक्ष्म है।

परन्तु इस संबंध में यहाँ एक बात विचारणीय है। भाषा को समाजसापेक्ष मानते हुए भी क्या यह उचित है कि परिस्थिति और प्रसंग से उसका सर्वथा विच्छेद करके केवल उसके अंतरंग-तत्त्वों के सम्बन्धों या 'रिलाटा' पर ही निर्भर रहा जाय? भाषा वस्तुत: एक सामाजिक व्यवस्था है। समाज की विभिन्न परिस्थितियों और प्रसंगों में ही उसका व्यवहार होता है। परिस्थितियों के प्रति मनुष्य की जो प्रतिक्रिया होती है, उसी के एक अंग के रूप में भाषा का व्यवहार होता है। फिर जब भाषा का प्रसंग और परिस्थिति से ऐसा अनिवार्य संबंध है, तब उसकी नितांत उपेक्षा क्यों की जाय? इस संबंध में पतंजलि ने नवान्हिक में स्पष्ट निर्देश किया है—

"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः।" उन्होंने भाषा के विवेचन में देश और काल दोनों पक्षों पर पर्याप्त बल दिया है। "अप्रयुक्ते दीर्घसत्रवत्"—इस वाक्य में कालपक्ष का और 'सर्वे देशान्तरे'—इस वाक्य में देशपक्ष का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

इस संबंध में मैं यहाँ 'वाक्यपदीय' का निम्नलिखित कथन भी उद्धृत करना चाहता हूँ—

वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेवकेवलम्॥

(वाक्यपदीय—२-२-३१६)

यहाँ स्पष्ट निर्देश किया गया है कि भाषा के केवल रूप अथवा अंतरंग-व्यवस्था के आधार पर ही उसकी ध्वनि, शब्द और अर्थ का विवेचन नहीं किया जा सकता। इसके लिए प्रसंग, प्रकरण, काल और देश—इन सबकी आवश्यकता है। वस्तुतः लोक, काल और देश की पृष्ठभूमि के बिना न तो भाषा का व्यवहार संभव है और न उसका कोई विवेचन। सोसुर ने रूप पर ही अधिक बल दिया था, पर हमारी भारतीय परम्परा में प्रकरण और संदर्भ को विशेष महत्त्व दिया गया है। मेरी दृष्टि में परिस्थिति और प्रसंग के प्रकाश में ही भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन सार्थक और संभव है।

कोई भी भाषा समाज के बहुविस्तीर्ण और व्यापक क्षेत्र में प्रस्फुटित व्यवहारों का समूह है। उसके इसी पक्ष को ध्यान में रखकर शब्दशास्त्र को अनंत कहा गया है। परिस्थिति और प्रसंग की अनंतता के अनुसार किसी भी भाषा के अनंत रूप सहज ही कल्पित किये जा सकते हैं। उसके इन अनन्त रूपों में से कोई व्यक्ति उसके कुछ रूपों का ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, सभी का नहीं और उन्हीं विशिष्ट रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन

भी संभव है। इसीलिए सीमित-से-सीमित क्षेत्र में ही किसी भाषा का अध्ययन आज के भाषाविज्ञान की अपेक्षा है। इसी दृष्टि से आज जीवित भाषाओं के सांकालिक अध्ययन पर बल दिया जा रहा है। यह पुराने कालक्रमिक अध्ययन से भिन्न है। इसमें प्रकरण और प्रसंग को भुलाया नहीं जा सकता, बल्कि उन्हें सम्यक् रूप से ध्यान में रखकर ही भाषा का अध्ययन किया जा सकता है। इस दृष्टि से भाषाविज्ञान को हम विशेष परिस्थितियों और प्रसंगों के बीच कार्य में संलग्न व्यक्तियों का अध्ययन कह सकते हैं। शरीर-जीवन-धारण की बहुविध क्रियाओं में, विविध व्यापारों में संलग्न व्यक्ति ही भाषा का व्यवहार करता है, इसलिए भाषा की व्यवस्थाएँ, गठन और ढाँचे क्रियाओं और व्यापारों में ही विकासमान होते ह और उन्हीं के बीच उनका अध्ययन किया जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि अध्ययन और अनुसंधान की एक ऐसी परिपाटी स्वीकृत की जाय जिसमें एक समय में एक व्यक्ति का विधिवत् अध्ययन किया जा सके और उसके व्यक्तित्व में अंतर्निहित भाषा की व्यवस्थाओं की खोज की जा सके। यहाँ ध्यान रहे कि व्यक्ति कोई समाज-निरपेक्ष सत्ता नहीं माना जा सकता, वह किसी समाज के प्रतिनिधि के रूप में ही हमारे सामने आ सकता है और इसी रूप में ग्रहण करके हम उसे अपने अध्ययन का विषय बना सकते हैं। इस प्रकार प्रतिनिधि रूप किसी एक व्यक्ति का अध्ययन करके हम उसके समाजगत भाषाई व्यवहारों का वैज्ञानिक अनुशीलन कर सकते हैं।

इस संबंध में एक मनोरंजक वृत्तांत मैं आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। पिछले महायुद्ध के समय ब्रिटिश-सेना के समक्ष यह समस्या उपस्थित हुई कि जापानियों के सामरिक व्योमयानों की गतिविधि की जानकारी कैसे प्राप्त की जाय और उनका कैसे नियंत्रण किया जाय। आकाश में उड़ते हुए विमान-चालकों को जो आदेश दिये जाते थे, उनको समझे बिना यह असंभव था। परंतु ऐसी परिस्थिति में जापानी भाषा का सांगोपांग ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय। यह तो किसी प्रकार संभव था नहीं। इसलिए तत्कालीन सामरिक प्रसंग और परिस्थितियों में प्रयुक्त होनेवाली ध्वनियों का ही अध्ययन प्रारंभ किया गया। युद्ध के क्रियाकलाप में व्यवहृत इन ध्वनियों के रेकर्ड लिये गये, उनका अनुलेखन किया गया और फिर भाषावैज्ञानिक प्रणाली से उनका विश्लेषण किया गया। इस प्रकार परिस्थिति, प्रसंग और व्यवहार से संबंध स्थापित करके गिरा और उसके व्यवहारगत अर्थ की संगति स्थापित की गई। इस प्रणाली से प्राप्त उपलब्धियों के द्वारा लगभग १० हजार व्योमचारी सैनिकों को जापानी भाषा की इतनी शिक्षा स्वल्पकाल में ही दे दी गई, जिससे इस क्षेत्र में सुगमता से अपने मतलब का काम चला लेने के लिए वे भाषा के व्यवहार से अवगत हो गये, भाषा का यह सार्थक और सफल अध्ययन-अनुसंधान मेरी अपनी अध्ययन-संस्था 'स्कूल आफ अफ्रीकन एंड ओरिएंटल स्टडीज़, में ही संपन्न हुआ था। इसलिए इस परिपाटी का मुझे कुछ ज्ञान है और इसीलिए भाषाविज्ञान के इस क्रियात्मक पक्ष की ओर आपका ध्यान मैंने आकर्षित किया है।

क्षेत्रीय कार्य के सिलसिले में जब हमें एक से अधिक व्यक्तियों का अध्ययन करना पड़ता है, तब हमें उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि पर ही उनके सामुदायिक व्यापारों

का भी अध्ययन करना पड़ता है इस प्रकार के अनुसन्धान और अध्ययन का सर्वोत्तम उदाहरण हमें प्रसिद्ध नृवंश-विज्ञानी मैलिनोवस्की के ग्रंथों में मिलता है उसे आदर्श मानकर हम भी अपने यहाँ इस प्रकार के सामाजिक अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं।

वस्तुतः समाज-विज्ञान, नृवंश-विज्ञान और भाषा-विज्ञान में घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध है। भाषा विज्ञान के इसी पक्ष को ध्यान में रखकर हमने हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ की स्नातकोत्तर कक्षाओं में इस विषय के सम्यक् अध्ययन के लिए 'एथ्नोलिंग्विस्टिक्स' के नाम से एक पूर्ण अनिवार्य पत्र का समावेश किया है। भाषा-विज्ञान की इस नई शाखा के लिए नृवंशीय भाषाविज्ञान की संज्ञा प्रयुक्त की जा सकती है। हर्ष है कि "ऐन्थ्रोपोलोजिकल लिंग्विस्टिक्स" के नाम से ही अमेरिका के इंडियाना विश्वविद्यालय से डा० फ्लारेंस एम. वोवेगैलिन के नाम से एक पत्रिका प्रकाशित होने लगी है, जिसका मुख्य ध्येय सांकालिक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में क्रियात्मक नमूने प्रस्तुत करना और संसार भर की भाषाओं का प्रमाणिक संग्रह करना है।

किसी भाषा की शब्दावली उसके व्यवहार-क्षेत्र की संस्कृति का दर्पण है। हमें अपनी भाषा की दृष्टि से जो अर्थभेद आवश्यक प्रतीत होते हैं वे ऐसी अन्य भाषाओं के लिए सर्वथा उपेक्षणीय हो सकते है जिनके अन्तर्गत उनसे भिन्न दूसरे ही प्रकार की संस्कृति प्रतिबिंबित है। उनके बदले ऐसी भाषाओं में भी अर्थभेद के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं, जो हमारी भाषा के लिए बिल्कुल निरर्थक हो सकते हैं। प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी सैपर के प्रभाव मे बेंजामिन ली होर्फ ने इन विचारों को और आगे विकसित किया। परन्तु खेद है कि इनके विचारों के अनुसार भाषा और संस्कृति की सामग्रियों का विश्लेषण का अबतक कुछ विशद कार्य नहीं हो सका है।

वास्तव में भाषाओं का प्रामाणिक संग्रह तथा भाषा-सर्वेक्षण दोनों ऐसे कार्य हैं, जिनके लिए पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित कार्यकर्ता आवश्यक हैं। इसका अभाव भी एक कारण था, जिससे दूसरी पंचवर्षीय योजना में भाषा-सर्वेक्षण का कार्य स्थगित कर देना पड़ा। इस कमी को दूर करने के लिए ही रॉकफेलर फाउन्डेशन की सहायता से डेकन कालेज पूना में एक स्कूल आव लिंग्विस्टिक्स की स्थापना हुई थी, जिसके प्रति-वर्ष दो सत्र पिछले पाँच वर्षों तक होते रहे हैं। इसके प्रथम विजिटिंग प्रोफेसर और संचालक के रूप में मैंने अपने विद्वान् सहकर्मियों के साथ जो कार्यक्रम आयोजित किया था उसका मुख्य लक्ष्य था अपने देश की भाषाओं और बोलियो का संग्रह और अनुसंधान के लिए कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक संख्या में योग्य कार्यकर्त्ता तैयार करना। इस कार्यक्रम की उपयोगिता और सफलता को देखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सुविज्ञ अध्यक्ष डॉ० देशमुख ने अगले वर्ष के सत्र के संचालन के लिए आवश्यक अनुदान देने का वचन दिया है। हमारा विश्वास है कि यदि यह कार्यक्रम पाँच-दस वर्षों तक और चलता रहा तो इस क्षेत्र में कार्यकर्त्ताओं के अभाव की शिकायत नहीं रह जायगी।

भाषाओं के प्रामाणिक संग्रह और वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए ध्वनिविज्ञान की प्रयोगात्मक शिक्षा तथा यान्त्रिक अनुलेखन की व्यवस्था भी आवश्यक है। अपने देश में

इसका प्रबन्ध न होने के कारण इसके लिए अबतक विदेशों में जाना अनिवार्य था। इसके लिए एक प्रयोगशाला डेकन कालेज पूना में कुछ वर्षों से स्थापित थी, परन्तु उसमें कुछ वर्षों से केवल असिलोग्राफ का काम प्रधानत: भौतिक विज्ञान की दृष्टि से होता रहा है। शुद्ध भाषाविज्ञान की दृष्टि से जो ध्वनिविज्ञान-प्रयोगशाला अब हमारे हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ में स्थापित हुई है, वह देश में अपने ढंग की एक मात्र आयोजना है, जिसमें तालुग्राह, स्पन्दग्राह तथा ध्वन्यांकन (रेकर्डिंग) के लिए आवश्यक यंत्रों की व्यवस्था की जा चुकी है। आवश्यक द्रव्य का प्रबंध हो सका तो निकट भविष्य में स्पेक्टोग्राफ और सोनोग्राम की भी व्यवस्था की जा सकेगी। इस आयोजन के चलते अब यह आवश्यक नहीं रहा कि ध्वनिविज्ञान के प्रयोगात्मक काम के लिए किसी को विदेश जाने को मजबूर होना पड़े। इस प्रकार इसके द्वारा निश्चय ही एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक क्षेत्र में काम करने के इच्छुक विद्वानों तथा अनुसंधित्सुओं को मैं इस सुविधा का समुचित लाभ उठाने के लिए आमंत्रित करता हूँ।

इधर भाषाविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र में उसका व्यावहारिक पक्ष भी शनै: शनै: प्रमुखता प्राप्त करता जा रहा है और यह प्रकट होता जा रहा है कि भाषावैज्ञानिक अनुसंधान के आधिविद्य महत्त्व के अतिरिक्त राष्ट्रीय तथा प्रशासकीय नीतियों के निर्धारण और शैक्षणिक समस्याओं के समाधान की दृष्टि से उसका व्यावहारिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। व्यावहारिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा-शिक्षण- पद्धति पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाने लगा है। ब्रिटेन और अमेरिका में इस बात का अध्ययन किया जाने लगा है कि अँगरेजी को विदेशी भाषा के रूप में किस प्रकार अधिक-से-अधिक सुगमता से कम-से-कम समय में पढ़ाया जा सकता है। क्या हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के संबंध में हम भी इस प्रकार का अनुसंधान नहीं कर सकते, जिससे एक प्रदेश के भाषाभाषी दूसरे प्रदेश की भाषा को अथवा हिंदी को कम-से-कम समय में अर्जित कर सकें! इसके लिए एक विशेष दृष्टि से ध्वनियों का, व्याकरणिक नियमों का और वाक्य की गठनों का अध्ययन अपेक्षित है।

भाषावैज्ञानिक अनुसंधान से उपलब्ध प्रणालियों का द्विभाषाभाषियों की दृष्टि से किस प्रकार प्रयोग किया जाय, किसी एक ही भाषा की विभिन्न बोलियों के क्षेत्रों में कैसे उसका उपयोग हो, इत्यादि प्रश्न विचारणीय हैं। पाठ्यपुस्तकों में किस प्रकार की सामग्री रक्खी जाय, एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद की कठिनाइयों को कैसे हल किया जाय, वैज्ञानिक शब्दावली का किस प्रकार निर्माण किया जाय, एक भाषाभाषी को दूसरी भाषा सिखाने के लिए भाषांतरण-व्याकरण की रचना कैसे की जाय, ये सारे विषय व्यावहारिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत ही आते हैं। भाषांतरण व्याकरण में तुलनात्मक प्रणाली से समताओं और विषमताओं का स्पष्टीकरण किया जाता है। हमारे देश में इस समय इस प्रकार के अनुसंधान की कितनी आवश्यकता है, यह सहज ही समझा जा सकता है।

विदेशी भाषाओं के शिक्षण के लिए भी व्यावहारिक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान की आवश्यकता है। अभी पिछले ही साल अमेरिका में राष्ट्रीय संरक्षण-

शिक्षा के लिए एक सार्वजनिक कानून बना है, जिसके अनुसार विभिन्न देशों के क्षेत्रीय अध्ययन के सिलसिले में आधुनिक विदेशी भाषाओं की शिक्षा देने की प्रणालियों का विकास किया जा रहा है। ऐसी ही कुछ व्यवस्था अपने देश में भी होनी चाहिए।

राजनीति तथा पारस्परिक व्यवहारों के क्षेत्र में एक-दूसरे को अपने पक्ष में मिलाने के लिए भाषा का किस प्रकार प्रयोग किया जाय; विवाद के परिणामों पर नियंत्रित शैली का किस प्रकार प्रवर्तन किया जाय; सार्वजनिक भाषण किस प्रकार दिए जायँ; रंगमंच पर विभिन्न जनवर्गों के लिए किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाय—इत्यादि विषय व्यावहारिक भाषाविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधानों के द्वारा ही आज समाधान प्राप्त कर रहे हैं।

अन्य विज्ञानों के समान भाषाविज्ञान के अध्ययन-अनुसंधान का भी एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर है। अंतर्राष्ट्रीय ध्वनिविज्ञान-परिषद् और अंतर्राष्ट्रीय भाषाविज्ञानियों की कांग्रेस उसके इसी पक्ष की परिचायक है। हाल में ही अभी यूनेस्को की ओर से भी एक भाषा-आयोग संगठित हुआ था, जिसमें संसार की भाषाओं के सर्वेक्षण के संबंध में विचार हुआ था। संसार की भाषाओं और बोलियों का पर्याप्त रूप से वर्णन अभी नहीं हुआ है जिनसे उनका सम्यक् अध्ययन हो सके और जो वर्णन उपलब्ध हैं, वे भी इस रूप में नहीं हैं कि उनकी तुलना की जा सके; क्योंकि वे समान परिस्थितियों में और समान समस्याओं के समाधान की दृष्टि से नहीं किये गये हैं। इसीलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि देश-विदेश में प्रचलित भाषाओं और बोलियों का वैज्ञानिक ढंग से अनुसंधान और वर्णन किया जाय। भाषाएँ मानवीय संस्कृतियों की बहुत ही बारीक और संवेदनशील सूचिका हैं। वे उस प्रकाशपूर्ण दर्पण के समान हैं, जिनमें किसी समाज का पूर्ण प्रतिबिंब देखा जा सकता है। इसलिए देश-विदेश के सामाजिक संबंधों को समझने और समझाने की दृष्टि से ही आज भाषाविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान को नियंत्रित करना उचित है। भाषाविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान का लक्ष्य अभेद में भेद स्थापित करना नहीं है, जैसा अभी कुछ ही समय पहले राज्यों के पुनस्संगठन के समय भाषाई विवादों को लेकर उपस्थित हुआ था प्रत्युत उसका आदर्श भेद में अभेद स्थापित करना है। वह एक ओर अतीत और भविष्य को वर्तमान में बाँधने का सूत्र है तो दूसरी ओर देश-देशान्तर के मनुष्यों के सबसे प्रबल संबंध-सूत्र भाषा-बोध की शक्ति को स्फुरित करके स्थायी विश्वशान्ति स्थापित करने का साधन है। भर्तृहरिकी यह घोषणा अक्षरशः सत्य है:—

"शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्यनिबन्धिनी।"

(वाक्यपदीय)

भाषाविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान का यह आदर्श सफल हो।

श्री विक्रमादित्य मिश्र, एम० ए०

लोरिकायन का तुलनात्मक अध्ययन

[बिहारराष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग के द्वारा मेरे निर्देशन और निरीक्षण में कई वर्षों से स्थानीय लोककथाओं और लोकगाथाओं का जो संग्रह-कार्य चल रहा था, उसी के सिलसिले में 'लोरिकायन' की सामग्री विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त की गई थी। विविध विश्वविद्यालयों के अनुसंधित्सु विद्यार्थी हमारी अनुमति से इस संग्रह द्वारा लाभ उठाते रहे हैं, पर इधर इस विशेष कार्य में हमने अपने एक अनुसंधान-सहायक श्री विक्रमादित्य मिश्र, एम० ए० को प्रवृत्त किया था। 'लोरिकायन' के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं भी पहले से ही कुछ उपयोगी सामग्री प्राप्त की थी और सम्प्रति ये 'लोरिकायन' पर शोध-कार्य कर रहे हैं। अब तक की उस सभी उपलब्ध सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन करके इन्होंने यह संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। लोरिकायन बिहार की प्राचीन गाथाओं में से है। उसमें संभवतः लोकनाट्य के भी तत्त्व थे। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने (१३२५ ई०) अपने 'वर्णरत्नाकर' में इसका उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है—'लोरिक नाच्यो।' प्रसिद्ध सूफी कवि मुल्ला दाऊद (१४वीं शताब्दी ई०) की विख्यात कृति 'चंदायन', जिसकी रचना जायसी से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले हुई थी, इसी प्राचीन कथानक पर आधारित है। आगरा-विश्वविद्यालय, हिन्दी विद्यापीठ की ओर से इस महत्त्वपूर्ण लुप्त ग्रन्थ का प्रकाशन शीघ्र ही होनेवाला है। निम्नलिखित विवरण में 'लोरिकायन' के लोकप्रिय गाथागीत पर बहुत रोचक और महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है।]

—**विश्वनाथ प्रसाद**
सम्पादक

लोरिक का ब्याह

लोरिकायन एक वीरगाथात्मक लोकगीत है। यह मुख्यतः बिहार तथा उत्तर-प्रदेश में अनपढ़ या अधपढ़ लोगों द्वारा मौखिक रूप से गाया जाता है। प्रधान रूप से इसे अहीर जाति के लोग गाते हैं। कारण यह कि इस वीरगाथात्मक लोकगीत का नायक, लोरिक जाति का अहीर ही था। उसकी वीरता के आख्यान और गुणवाद में उन्हें स्वभावतः जातीय गौरव और आनन्द का बोध होता है। लोरिक एक सच्चरित्र और

तेजस्वी अवतारी पुरुष था, जिसे देवताओं ने अत्याचारियों का विनाश करने के लिए स्वर्ग से पृथ्वी पर भेजा था। देवी आदिकुमारी का वह परम उपासक था। देवी की सहायता से उसने अनेक अत्याचारियों एव आततायियों का विनाश कर दुःखाक्रान्त मानवता का उद्धार और असंख्य सती-साध्वी अबलाओं के सतीत्व की रक्षा की।

स्थान-भेद से इस वीरगाथात्मक लोकगीत के नाम, कथानक, पात्रों के नाम तथा पारस्परिक संबंध, स्थानों के नाम, घटनाओं की योजना, गीत की लय, तुक, छंदोयोजना आदि में अन्तर पाया जाता है। जहाँ तक इस गाथा के नाम का प्रश्न है, प्रायः समस्त बिहार में इसे लोरिकायन ही कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे दूसरे नाम से भी अभिहित करते हैं, जैसे बिहार के शाहाबाद जिले में तथा उत्तर-प्रदेश के कुछ हिस्सों में इसे 'लोरिकी' कहा जाता है। बंगाल में इसे 'लोरमयनावती' या 'सतीमयनावती' कहते हैं।

सूफी परंपरा के कवि मुल्ला दाऊद (१४वीं शताब्दी ई०) द्वारा लिखे गये 'चंदायन' नामक ग्रंथ की एक पांडुलिपि मिली है, जो लोरिकायन की प्रचलित लोकगाथा के ही एक अंश पर आधृत है। लोरिकायन की कथा में लोरिक द्वारा गउरा के राजा सहदेव की पुत्री चंदा, चनवा, धनचनाइन अथवा चनइनी के अपहरण का वर्णन है। इस गाथा के कई खंड या कांड हैं। गायकों में ऐसी प्रसिद्धि है—'सात कांड रामायन, अनगिनत कांड लोरिकायन', यहाँ 'अनगिनत कांड' इस गाथा की दीर्घकायता का द्योतक है। सचमुच यह गाथा है बहुत लम्बी। बहुत कम ही ऐसे गायक हैं, जो संपूर्ण गाथा गाते हैं। किसी क्षेत्र में इसके कुछ खास अंश गाये जाते हैं और किसी दूसरे में कुछ अन्य अंश। यही कारण है कि इसके खंडों या कांडों की कोई निश्चित गिनती नहीं है। इसके चाहे जितने भी खंड क्यों न हों, इनमें प्रमुख हैं—'संवरू का ब्याह', 'लोरिक का ब्याह' तथा 'हल्दी की लड़ाई'। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग में बिहार के विभिन्न क्षेत्रों से पाण्डुलिपियाँ इस गाथा के कई छोटे-बड़े खंडित तथा पूर्ण पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हुई हैं। इनमें चार ऐसे हैं, जिनमें 'लोरिक का ब्याह' खंड संपूर्ण है। इनमें से दो गया तथा जहानाबाद के मगही क्षेत्र से और दो रामनगर (चम्पारन) तथा शाहाबाद के भोजपुरी क्षेत्र से आये हैं। इन्हीं चारों संग्रहों के आधार पर हम 'लोरिक का ब्याह' खंड पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। आगे सुविधा के लिए गया, जहानाबाद, रामनगर और शाहाबाद के लिए क्रमशः ग० जहा०, राम० तथा शाहा० इन संक्षिप्त नामों का प्रयोग किया जायगा।

गाथा का नाम

चारों ही संग्रह लोरिकायन के नाम से प्रसिद्ध हैं। चारों में ही लोरिक (नायक) के ब्याह का वर्णन है।

कथानक

चारों के कथानक में बहुत-सी समानताएँ तथा भिन्नताएँ पाई जाती हैं। चारों में ही लोरिक को धीर-वीर-तेजस्वी अवतारी पुरुष माना गया है। लेकिन, उसके अवतार का वर्णन सर्वत्र एक-सा नहीं है। राम० प्रति म ब्रह्मा ने देवताओं की सलाह से देवी आदिकुमारी को गाय के दूध में सानकर बनाये हुए बालू के पिंड के साथ मर्त्यलोक में भेजा, जिसे गउरा

के बुढ़कूबे नामक अहीर की बंध्या पत्नी बुढ़खुइलन ने ग्रहण किया। उसी के गर्भ से लोरिक का जन्म हुआ। ग० प्रति में सातों भाई इन्द्र ने देवी आदिकुमारी को इन्द्रपुरी के पोखरे में स्थित जाठ का एक बालक बनाकर प्रदान किया। देवी उस बालक को लेकर मर्त्यलोक पहुँची और जाठ के उसी बालक का अवतार लोरिक के रूप में किठई नामक अहीर की पत्नी खोइलन के गर्भ से हुआ। जहा० प्रति में लोरिक के जन्म से सम्बद्ध वर्णन नहीं आया है। शाहा० प्रति में ब्रह्मा के आदेश से देवी आदिकुमारी मर्त्यलोक आती हैं। वह नेउरापुर, अगोरी, गउरा आदि स्थानों का भ्रमण करती हैं। अत्याचारियों के उत्पीड़न से त्रस्त मानवता को देखकर उनका हृदय विद्रोह कर उठता है। वह पुनः ब्रह्मलोक जाती हैं और ब्रह्मा से प्रश्न करती हैं कि उन्होंने ऐसे अत्याचारियों को मर्त्यलोक में क्यों भेजा है? गउरा में निवास करनेवाली सती-साध्वी स्त्री खुइलन की गोद अबतक क्यों खाली है? ब्रह्मा विचार कर बतलाते हैं कि खुइलन की कोख में संतान लिखी ही नहीं है। फिर भी ब्रह्मा किसी प्रकार उसकी गोद भरते हैं। वे इन्द्रपुरी के धुरंधर नामक टहलू को मर्त्यलोक भेजते हैं। मर्त्यलोक आते समय धुरंधर मँजरी, चनवा तथा जमुनी तीन परियों को और मँगरू नामक घोड़े को माँगता है। उसकी सहायता के लिए देवी आदिकुमारी भी आती हैं। ब्रह्मा देवी को एक पिंड देकर मर्त्यलोक भेजते हैं। देवी द्वारा वह पिंड खुइलन को मिलता है। खुइलन सहर्ष उसे ग्रहण करती है। फलस्वरूप उसे गर्भ रहता है और उससे लोरिक का जन्म होता है। पिंड से लोरिक के जन्म का वर्णन राम० में भी आया है। शाहा० में लोरिक के जन्म के साथ उसके मित्र या गुरु मितइ धोबी के जन्म की घटना भी सम्बद्ध कर दी गई है। खुइलन उस पिंड में से थोड़ा अपनी सहेली को (जाति की धोबिन) दे देती है। खुइलन के ग्रहण करने के पूर्व ही वह उसे ग्रहण कर लेती है। फलस्वरूप उसे पहले गर्भ रह जाता है और खुइलन को बाद में। उसकी सहेली के गर्भ से पहले मितई और बाद में खुइलन के गर्भ से लोरिक का जन्म होता है। मितई लोरिक से उम्र में बड़ा होता है। इन्द्रपुरी का टहलू धुरंधर ही लोरिक के रूप में अवतरित बतलाया गया है।

मित रजाय, मितई, अजई या रजई सभी जगह जाति का धोबी वर्णित है। लोरिक के समान ही वह भी असाधारण शक्ति से युक्त पुरुष है। राम० को छोड़कर सर्वत्र वह लोरिक तथा लोरिक के बड़े भाई सँवरू का गुरु बतलाया गया है। केवल राम० में ही वह लोरिक और सँवरू का मित्र कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका वास्तविक नाम 'मिता' या 'मितई' ही है। 'रजाय', 'रजई' या 'अजई' वस्तुतः रजक (धोबी) के परिवर्त्तित रूप हैं। चूँकि, उसका नाम 'मितई' या 'मिता' था और वह लोरिक का समवयस्क था, इसीलिए शायद कुछ गायकों ने उसे लोरिक का मीत, अर्थात् मित्र मान लिया है। लेकिन, वास्तव में मिता लोरिक का गुरु ही प्रतीत होता है; क्योंकि सभी कथा-रूपों में वह लोरिक को मल्लयुद्ध की शिक्षा देता दिखलाया गया है। हाँ, समवयस्क होने के कारण अखाड़े से बाहर दोनों मित्रवत् व्यवहार अवश्य करते हैं।

लोरिक और सँवरू दोनों सगे भाई नहीं थे, ऐसा उल्लेख सभी कथानकों में पाया जाता है। सँवरू किसी परायी स्त्री (एक ब्राह्मणी) के गर्भ से जारज संतान के रूप उत्पन्न हुए थे—यह शाहा० को छोड़कर शेष सभी जगह वर्णित है। शाहा० में खुइलन

(सँवरू+लोरिक की, लोरिक के जन्म के पहले की, बंध्या माँ) संतान के निमित्त शिव की उपासना करती है। शिव प्रसन्न हो अपने शरीर से मैल छुड़ाकर दो पिंड तैयार करते हैं। दोनों पिंडों के दो बालक बनाकर रास्ते में रख देते हैं। दोनों बालक खुइलन को मिलते हैं। संयोगवश, उनमें से एक पिपरी के दुसाध राजा कोल्हमकरा के घर पलता है और दूसरा खुइलन के घर। एक का नाम सुबाचन तथा दूसरे का नाम सँवरू पड़ता है। (आगे पिपरी की लड़ाई म सुबाचन के ही अस्त्र से सँवरू मारा जाता है; क्योंकि सँवरू की मृत्यु उसी के हाथ लिखी थी।) ग० को छोड़कर शेष सभी प्रतियों में सँवरू लोरिक का बड़ा भाई है। केवल ग० में वह लोरिक के छोटे भाई के रूप में चित्रित है। फलस्वरूप ग० में लोरिकायन का आरंभ लोरिक के ब्याह से होता है, पर अन्यत्र सँवरू के ब्याह से। सँवरू लोरिक का बड़ा भाई है या छोटा, यह एक अलग प्रश्न है, जिस पर अन्यत्र स्वतंत्र रूप से विचार किया जायगा।

माँजर (लोरिक की पत्नी) के जन्म का वर्णन सभी कथा-रूपों में लगभग एक-सा है। माँजर के जन्म की खबर पाकर अगउढ़ या अगोरी का राजा मलागित अथवा जोधीपामर माँगर राउत (माँजर के पिता) के घर जाता है और भविष्य में माँजर के साथ भोग-विलास करने की नीयत से उसे अपने घर लाना चाहता है, किन्तु माता-पिता के अनुनय के फलस्वरूप वह माँजर के गले में चिह्नस्वरूप धागा बाँधकर चला आता है, ताकि सयानी होने पर वह उसे अपनी वासना-तृप्ति का साधन बना सके। केवल ग० में वह धागा गले में न बाँधकर ललाट पर बाँधता है। राम० में मँजरी (माँजर) के लिए वर खोजने शिवचन हजाम के साथ माँगर राउत स्वयं जाते हैं, लेकिन ग० में ब्राह्मण और हजाम जाते हैं। शाहा० में ब्राह्मण तथा हजाम के साथ माँजर के मामा भी जाते हैं। जहा० वाले संग्रह का आरंभ मंडप-छाजन से हुआ है। अतः उसम यह प्रसंग नहीं आया है। लोरिक को दूल्हे के वेश में देखकर गउरा के राजा सहदेव की बेटी धनचनाइन या चनवा का मोहित होना सर्वत्र मिलता है। जहा० में तो यहाँ तक वर्णन आया है कि वह लोरिक को देखकर इतना अधिक आकृष्ट होती है कि उसकी पालकी में जाकर बैठ जाती है। लोरिक उसे समझा-बुझाकर तथा भविष्य में उसके साथ शादी करने का वचन देकर उसे लौटा देता है। शाहा० में वह अपने कोठे से लोरिक को दूल्हे के वेश में देखकर मूच्छित हो गिर जाती है। होश आने पर अपने माता-पिता के समक्ष लोरिक के साथ शादी करने का प्रस्ताव रखती है। राजा सहदेव उसके इस प्रस्ताव से बहुत क्रुद्ध होता है, लेकिन लोरिक के विना चनवा प्राण त्याग देगी, यह जानकर वह अपने पुत्र महादेव को भेजता है कि वह बरात को वापस बुला लावे। पर बरात वापस नहीं लौटती है। अतः महादेव सभी बरातियों को लौट जाने का हुक्म देता है। सभी बराती उसके डर से लौट जाते हैं। केवल लोरिक, सँवरू आदि चार-पाँच व्यक्ति ही भदोखा तक जाते हैं। भदोखा के राजा से लड़ाई के बाद बरात पुनः सजती है और पूरे धूम-धाम के साथ अगउढ़ पहुँचती है। रास्ते में भदोखा के राजा के साथ लड़ाई का प्रसंग सर्वत्र आया है। भदोखा के राजा का नाम राजा भदोखरा या धोखा-भदोखा ग०, जहा० तथा राम० में है। केवल शाहा० में उसका नाम राजा चित्रसेन है तथा स्थान

का नाम कोठवा-भदोखवा। कोठवा-भदोखव या भदोखा से जितने भी बराती जाते हैं, सभी नौजवान हैं, जिनकी मूछों की रेखाएँ अभी पूर्णत: स्पष्ट भी नहीं हुई हैं, ऐसा वर्णन सर्वत्र है। बरात अगउढ़ या अगोरी पहुँचने पर प्रत्येक संग्रह में थोड़ी भिन्नताओं के साथ माँगर राउत द्वारा कई विकट प्रश्न उपस्थित किये जाते हैं, जिनका समाधान वर पक्षवाले बड़ी चतुराई से कर डालते हैं। कुछ प्रश्न: जैसे, चलनी से पानी भरना, पड़उस (गेहूँ के दाने की महीन भूसी) या बन (राख ?) अथवा जौ की कुटँउसी की रस्सी बाँटना, गउरा से इनार लाना, प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक-एक मन आटा, एक-एक खस्सी भोजन के निमित्त भेजना इत्यादि। शाहा० में भोजन की सामग्री के साथ शराब भी भेजी गई है। शाहा० को छोड़ शराब भेजने का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता, लेकिन सभी कथा-रूपों में लोरिक, उसके पिता तथा उसके ससुर द्वारा अन्य प्रसंगों में शराब पीने का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है। अगोरी के राजा द्वारा लोरिक को विवाह-मंडप में ही मरवा डालने के प्रयास का उल्लेख सभी कथा-रूपों में है। लोरिक को मारने के लिए जानेवाला व्यक्ति सर्वत्र स्त्री के वेश में मंडप में प्रवेश करता है; क्योंकि सिन्दूरदान के समय बाहर के किसी भी पुरुष के लिए मंडप में प्रवेश करने का निषेध है। दरवाजे पर स्वयं सँवरू तथा पीछे की राह पर मितरजाय पहरा दे रहे हैं। मारनेवाला व्यक्ति अपने को दुलहन की बहन बताकर सँवरू से बहुत अनुनय-विनय करता है और मंडप में प्रवेश कर जाता है। जहा० में तो वह सँवरू को धोखा देकर अन्दर घुस जाता है। लोरिक को मार सकने में वह सफल नहीं होता, उलटे लोरिक द्वारा मार दिया जाता है। जहा० को छोड़ शेष तीनों में उसका नाम ढढमनिका या ढढ़िया है। जहा० में 'सनिका'-'मनिका' दो भाई मारने जाते हैं। एक वहीं मारा जाता है और दूसरा बाद में।

लोरिक को मरवा डालने के अपने प्रथम प्रयास में विफल होने के बाद अगोरी या अगउढ़ का राजा, माँगर राउत (लोरिक के ससुर) की गायें घिरवा लेता है। यह खबर पाते ही लोरिक कोहबर-गृह से निकलकर रातों-रात गौओं को छुड़ाने जाता है। प्रत्येक संग्रह में गाय का चरवाहा उसकी शक्ति की परीक्षा लेता है। बरात की विदाई के समय छप्पन हजार गायों को दहेज देने के तरीके का वर्णन सर्वत्र एक-सा है। चौदह कोस की लंबाई में एक पतली सड़क पर गायें खड़ी कर दी जाती हैं। माँगर राउत हुक्म देता है कि सँवरू अपना सेल्ह या झटहा चलावें। जितनी दूर पर झटहा जाकर गिरेगा, उतनी दूर की गायें उन्हें मिल जायँगी। अन्य संग्रह में तो स्वयं सँवरू अपना सेल्ह या झटहा चलाते हैं, किन्तु राम० में सँवरू का पिता बुढ़कूबे एक ताड़ का पेड़ उखाड़कर फेंकता है, जो चौदह कोस कौन कहे, अठारह कोस पर जाकर गिरता है। एक सुप्रसिद्ध भैंस का दहेज पाना सर्वत्र वर्णित है, जो सात भार दूध देती थी। राम० और शाहा० में उसका नाम 'बिहारी' तथा ग० में उसका नाम 'सिहरी' (बिहारी की बेटी) है। जहा० में वह मुन्हा के नाम से प्रसिद्ध है। बरात लौटते समय सोनपी, सोनफी या सोनभदर (शोणभद्र) नदी के किनारे चौसा के मैदान में युद्ध का वर्णन सर्वत्र मिलता है। सर्वत्र चौसा का मैदान चौदह कोस का बतलाया गया है। अगोरी या अगउढ़ का राजा एक मदमस्त हाथी लोरिक को मारने के लिए भेजता है। ग० और राम० में उस

हाथी का नाम 'भौंरानल' है। अन्यत्र उसके नाम का उल्लेख नहीं है। अगउढ़ के राजा के भांजे निर्मल द्वारा लोरिक के साथ चौसा के मैदान में युद्ध का वर्णन सर्वत्र मिलता है। चौसा के मैदान में लोरिक की विजय का वर्णन सभी कथा-रूपों में है। राम० तथा शाहा० में अगउढ़ के राजा का नाम 'मलागित' है और ग० एवं जहा० में 'जोधी पामर'। कहीं तो वह जाति का दुसाध है और कहीं चमार। कहीं तो वह लोरिक द्वारा मार दिया गया है और कहीं लोरिक उसके कान, नाक, हाथ आदि काटकर उसे छोड़ देता है।

इस प्रकार, कथानक में बहुत-सी समानताएँ और भिन्नताएँ मिलती हैं, जिनका संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। चाहे जितनी भी भिन्नताएँ क्यों न हों, कथा की आत्मा सर्वत्र एक समान है। कथानक में भिन्नताओं का प्रधान कारण है इस गाथा के लिखित रूप का अभाव। केवल लोक-कंठ में जीवित कथा-वस्तु में तो स्थान-भेद के कारण भिन्नताएँ होंगी ही। तत्कालीन सामन्तशाही शासन-व्यवस्था के विरुद्ध लोरिक की विद्रोह-भावना सभी कहीं एक-सी वर्णित है। लोरिक अपने उद्देश्य की पूर्ति में सर्वत्र एक-सा सफल दिखलाया गया है। उसके जीवन की सबसे बड़ी 'ट्रेजडी' यह है कि जिस राजनीतिक व्यवस्था के प्रति वह विद्रोह करता है, एक दिन वह स्वयं उसका शिकार बन जाता है। वह स्वयं एक शासक बन बैठता है। अपने जीवन-काल में उसने पीठ कहीं भी नहीं दिखाई। पर अपने जीवन के अंतिम काल में देवी बिहिया के कोपवश वह कोढ़ी बन जाता है। अपनी इस स्थिति को वह सहन नहीं कर पाता। लज्जा और आत्मग्लानि से उसका सिर झुक जाता है। अपने जीवन का शेष भाग वह काशी में बिताता है और वहीं उसका देहान्त हो जाता है। ये सारी घटनाएँ उक्त प्रत्येक संग्रह में एक-सी वर्णित हैं।

प्रमुख पात्रों के नाम

गया	जहानाबाद	रामनगर	शाहाबाद
कुबई	कुबई	बुढ़कूबे	कुबइया बूढ़ा, कुबेया
खोइलन	खुलनी, खोइलन	बुढ़खुइलन	खोइलन
मितवा धोबी	मिता	रजई धोबी	मित रजाय
समरू	समरू	सँवरू	सँवरू
लोरिक	लोरिक	लोरिक	लोरिक
महर माँगर	माहर माँगर	माँगर राउत	महरा
गांगी हजाम	गंगुआ	शिवचन	……
धुर नेन्हुआ	नेन्हुआ	नान्हू	नन्हुआ
जोधी पामर	जोधी पमार	मलागित	मलगिता
धनचनाइन	धनिचनवा	चनवा	चनवा
माँजर	मजरी	मँजरी	मोजरी
……	सनिका-मनिका	ढढ़िया	ढढ़िया, ढढमनिका

प्रमुख स्थानों के नाम

गया	जहानाबाद	रामनगर	शाहाबाद
गउरा गुजरात	गउरा	गउर गुजरात	गउरा गुजरात
भदोखा	भदोखा	भदोखा	कोठा भदोखा
अगउढ़	अगोढ़ी	अगोरी	अगोरी
चउँसा	चउँसा	चउसा	चउसा
बनखँरिका	बनखरिका	बनबबुरी	सिरिसपुर
नदी सोनफी	नदी सोनफी	नदी सोनभदर	नदी सोनपी

लय (गाने का ढंग)

रामनगर को छोड़कर शेष तीनों स्थानों में इसे रेघाकर गाने की प्रथा प्रचलित है। प्रत्येक पद के अंत में गायक बहुत देर तक यानी लम्बे आलाप के साथ रेघाता रहता है। गया और जहानाबाद में विशेष रूप से प्रत्येक पद के अन्तवाले शब्दों के (कभी-कभी बीच के शब्दों के भी) अक्षरों का अलग-अलग उच्चारण किया जाता है। मात्राओं की पूर्त्ति के लिए बहुधा शब्दों के बीच में 'हे', 'हो' आदि शब्द आलाप के रूप में जोड़ दिये जाते हैं। जैसे—

(क) अइसहीं लिखऽ मइया देबी जी,
'हि रि द वा' के गुन 'हे' बाद।
(ख) बइठल रहीहें गे मइया,
सजन भाई बरि 'हे' आत।

यहाँ दोनों पदों के अन्तवाले शब्दों 'गुनबाद' और 'बरिआत' के बीच में 'हे' जोड़ दिया गया है तथा 'हिरिदवा' शब्द के प्रत्येक अक्षर अलग-अलग उच्चरित हैं। जहानाबाद में शब्दों के बीच में 'हे' तथा 'हो' की जगह 'रे' जोड़ा जाता है तथा पदों के अंत में 'ए राम' अथवा 'हो राम' की तुक मिलाई जाती है। जैसे—

(क) मार हइ तलवा समरू बाबू ओजनिए 'दम रे साय'।
फानियो में गेलयिन समरू बाबू जमुनिया के रे मकान ॥
(ख) चार ना रे पटिया राजा के बउलिया खोनल 'ए राम'।
(ग) पाँचे ना बपूतवा चढ़ गेलन नइया पर 'हो राम'।

यहाँ प्रथम पद के अन्तवाले शब्द 'दमसाय' के बीच में 'रे' तथा द्वितीय और तृतीय पद के अन्त में 'ए राम' तथा 'हो राम' शब्द आये हैं। कभी-कभी गायक 'हो राम' के बदले 'हे राम' भी गाता है। पदान्तवाले शब्दों के बीच में 'रे' जोड़ने की थोड़ी-बहुत प्रवृत्ति शाहाबाद में भी लक्षित होती है। रामनगर को छोड़कर शेष तीनों स्थानों में पदों के अंत में तुक मिलाने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक लक्षित होती है। यह प्रवृत्ति रामनगर में बहुत ही कम दीखती है।

ऐसा लगता है कि रामनगर को छोड़कर शेष तीन जगहों में इस गाथा को एक ही लय में गाया जाता है। रामनगर में ऐसा नहीं पाया जाता। वहाँ गाने के क्रम में गायक अपनी लय भी बदलता रहता है। कभी तो वह खूब रेघाकर गाता है और कभी कवित्त-जैसा कहता जाता है। इस प्रकार वह बीच-बीच में लय बदलता रहता है। इस प्रक्रिया में गायक को थोड़ा आराम मिलता है और आद्योपांत एक ही राग के कारण उसका तथा श्रोता का जी ऊबने नहीं पाता। प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' भी इसी प्रकार गाया जाता है। संभवतः उत्तर-बिहार में इस गाथा पर आल्हा का प्रभाव लक्षित होता है। दरभंगा जिले के रोसड़ा-क्षेत्र से भी एक छोटा-सा संग्रह आया है, जिसमें आल्हा की ही पद्धति लक्षित होती है।

जितने भी गायकों से यह लोकगाथा मुझे सुनने को मिली है, उनके विषय में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है कि प्रत्येक गायक को कथानक और घटनाएँ याद रहती हैं। गाते समय वह स्वयं अपनी ओर से पदों की योजना करता और गाता जाता है। पदों की योजना का भी एक खास ढंग है, जिसे वह परंपरा से सीखता आया है। लेकिन, कभी-कभी रोचकता बढ़ाने या घटना को अधिक मार्मिक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए वह अपनी ओर से भी कुछ जोड़-घटाव तथा तुक आदि की योजना कर लेता है। यही कारण है कि इस गाथा में बहुत-से अंधविश्वासों, चमत्कारपूर्ण घटनाओं, जादू-टोना आदि का समावेश हो गया है और उक्त गाथा आवश्यकता से अधिक बड़ी हो गई है। जहाँ कहीं भी लोरिक की असाधारण वीरता एवं पौरुष का वर्णन आता है, गायक देवी आदिकुमारी को या किसी दूसरी बाहरी शक्ति को उसकी सहायता में ला खड़ा करते हैं और इस प्रकार उसकी सारी वीरता और पौरुष को दैवी रूप दे दिया जाता है। वह नियति अथवा देवी द्वारा प्रेरित दिखलाया गया है। इन अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं के समावेश के बावजूद कथानक का प्रकृत रूप ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण है, केवल वर्णन-विस्तार के लिए उसमें बीच-बीच में प्रक्षिप्त अंश जुड़ते गये हैं।

पंक्ति-साम्य

(१)

गया — बामन पट्टी गउरा वसअ हल,
तिरपन लगअ हलअ बजार।

जहानाबाद—..............................

रामनगर — छप्पन टोला बसे गढ़ गउरा,
तिरपन तीन गो लागे हो बजार।

शाहाबाद —बारह सौ गौरा छप्पन गलिया में लागल ना बाजार।
बारह सौ गौरा में बसल बाड़े कानू रे कलवार॥
चौदह गौरवा में बसल बाड़े खाली मोगल पैठान।
सोरह सौ गौरवा में बसल बाड़े खाली छतरी चउहान॥

(२)

गया —— हथवा के छोपिया से भागहिओ, हमरा के तूँ लेबहुअ पकर ।
तब हम जानबो हो मरदा कि गइया के तूँ लयबअ छोड़ाय ।

जहानाबाद—चटिया न मारी के हो भाजी हइ पाछे रुखवा हो राम ।
हमरा न लेबहू लोरिका पकड़ि भीअ ए राम ।
तब ही ना त जानबइ हो लोरिका लइब गइअ न छोड़ाय ।

रामनगर —तब चाटो दिया के भागबऽ,
जो कठा भर पर छू लेबऽ हमरा के
तब जानब जे बयना लेबऽ छोड़ाय ।

शाहाबाद — आताना जे बतिया नन्हुआ सुनत बा अवरू ना गारी देत बा
हमारा नीयन मरदा के सरऊ ओहिजा लागल ना पानाह
....
आवऽ चाटी बाजा के धलऽ तब हम जानब जे गइया छोड़इब हमार ।

(३)

गया —— जहाँ तक बीगतन अहिरा लइनिया में,
पीछे से सेल्हबा उठाय ।
जहाँ जाके सेल्हबा गिरतइअ,
उहईं तक मिलतइन दहेज ।
उहईं तक गइया उनका के
देमइन हम दान ।

जहानाबाद—बीगऽ ना त सेल्हबा हो समरू एजनिए ना घुमाय,
जहाँ ना त सेलहबा हो बबुआ ना गिरी तोहार,
जहाँ लागी गइया हो समरू देब हिंग रे राय ।

रामनगर —चल के सामध गइअन के पीछे से,
झटहा घलीहें चलाय ।
जेतना दूर पर झटहा गिर जाई,
ओही जुग से बयना दोब के दीह बराय ।

शाहाबाद —बीगऽ झटहवा बबुआ तू गइया में घुमाय,
जतना दूर में झटहवा जइहन में तोहार,
ओतना जे दूरवा के गइया भइँसिया होई तोहार ।

(४)

गया — चउदह दूनी अठाइस कोस समरू के
सेल्हबा गिरल मयदान ।
ठाढ़ा हो के समरुआ बोलहेअ
गंगुआ केअ ललकार ।
....

चउदह आउर कोसवा में राजा मोर
भरतिया-गइया करहुन हो राम ।

जहानाबाद—बीग हलन ना सेल्हबा हो समरू ओजनिए भी ए राम
चउदह ले ना कोसवा पर समरू के गिरे सेल्हबा भी ए राम

रामनगर —अइसन झटहा फेंकले तउल के
अठारह कोस पर झटहा गिरल जाय।
बोले बुढ़कूबे तब देलें जबाब,
ए सामध अभी चार कोस तक
बयना हम के दीं ना बराय ।

शाहाबाद —इहे सुमिर के सँवरू झटहा सरगवा में बीगे घुमाय,
बझावा के भेसवा ले दुरुगा सरगवा में मड़राय,
धर के न चिगुरा से झटहा येह पार से ओह पार दे गिराय

(५)

गया — ....

जहानाबाद—जवनि मरदवा हो हमरा से ना हो डेराय,
ओकरा से हम त अपने ना हो डेराय ।
जवनि मरदवा हो मयदनवा से ना भगि रे जाय,
ओकरा ना त मारे में लिखहइ कोटिनवा अप रे राध ।

रामनगर —तीन किरियवा हमरा गउरा के
भइया हमर देहले बाड़ें धराय ।
ना जूझल क्षत्री के छोड़े के
ना भगले के करे के पछेड़
ना पहिले आपन करे के अवार ।

शाहाबाद —..................................

संख्या का प्रयोग

सभी जगहों के संग्रह में कुछ खास संख्याओं के ही प्रयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है। कुछ खास संख्याएँ ही प्रयोग के लिए रूढ़ हो गई हैं। इनके प्रयोग के पीछे संभवतः प्रचुरता के प्रदर्शन की ही भावना काम करती है। महर माँगर तथा बुढ़कूबे दोनों ही को छप्पन-छप्पन हजार गायें हैं। लोरिक की शादी में बरातियों की संख्या छप्पन हजार है। जहाँ भी युद्ध का वर्णन आया है, फौज की संख्या छप्पन हजार ही वर्णित है। जहाँ भी युद्ध होता है, सात रात, सात दिन से कम नहीं। देवी आदिकुमारी, सात बहन हैं मँजरी भी कुल सात बहन है। सात सौ बाजा, सात सौ झंडी, सात मटकी दूध इत्यादि-इत्यादि। जहाँ बरात जनवासे लगी है, वह मैदान चौदह कोस का है, दहेज देने के लिए माँगर राउत की गाएँ चौदह कोस की लम्बाई में खड़ी की जाती हैं। चौसा का मैदान भी चौदह कोस का ही है। इसी प्रकार पाँच, तीन सौ साठ, सोलह सौ अस्सी आदि संख्याओं का प्रयोग सब संग्रह में समान रूप से पाया जाता है।

चरित्र-चित्रण

लोरिक—लोरिक इस वीरगाथात्मक लोकगीत का प्रधान नायक है। वह असाधारण शक्ति से युक्त एक अवतारी पुरुष है। उसकी उत्पत्ति स्वयं स्वर्ग के देवताओं की प्रेरणा से होती है। मर्त्यलोक में उसकी रक्षा एवं सहायता के निमित्त स्वर्ग से देवी आदिकुमारी उसके साथ आती हैं। उसकी ओजस्विता एवं तेजस्विता उसके बचपन से ही लक्षित होने लगती हैं। बचपन में ही वह रजई धोबी का अस्सी मन का मुगदर उठाकर नदी में फेंक देता है। उसकी बहादुरी को देख रजई बहुत प्रसन्न होता है। रजई उसे अपने शिष्य के रूप में अपनाता है और मल्लयुद्ध की शिक्षा दे उसे पारंगत बना देता है। देवी आदिकुमारी की सहायता से वह बड़े-बड़े अत्याचारियों का विनाशकर दुःखाक्रान्त मानवता तथा सती-साध्वी अबलाओं की रक्षा करता है। उसकी ओजस्विता को देख बड़े-बड़े वीरों की हिम्मत डोल जाती है। बहादुर तो वह इतना बड़ा है कि किसी भी व्यक्ति पर वह पहले अपनी ओर से वार नहीं करता। उसकी वीरता का परिचय स्वयं उसके ही शब्दों में देखिए—

तीन किरियवा हमारा गउरा के,
भइया हमर देहले बाड़ें धराय।
ना जूझल क्षत्री के छोड़े के,
ना भगले के करे के पछेड़;
ना पहिले आपन करे के अवार।

चरित्र का वह बिलकुल पक्का है। परायी स्त्री की ओर नजर उठाकर देखना तक वह पाप समझता है।

लोरिक का चरित्र जितना उज्ज्वल राम० और शाहा० में चित्रित है, उतना ग० तथा जहा० में नहीं। मगही क्षेत्र के इन दोनों संग्रहों में लोरिक के चरित्र का स्तर अपेक्षाकृत कुछ गिरता-सा दीख पड़ता है। लोरिक का यह आदर्श कि वह

भागे हुए योद्धा का पीछा नहीं करता, वहाँ नहीं दिखाई पड़ता। भागकर अपनी पत्नी की शरण में छिपे हुए राजा जोधी को भी वह नहीं छोड़ता। उसके हाथ, नाक, कान आदि काट लेता है। अपनी पत्नी के कहने पर वह यदुनन्दन नामक, उसकी सखी की हँसुली (एक जेवर) छीन लेता है। भोजपुरी क्षेत्र के दोनों संग्रहों में उसका चरित्र ऐसा नहीं दिखलाया गया है।

सँवरू—सँवरू कूबे या कुबई का अपना पुत्र नहीं है। वह एक जारज संतान है। कूबे और उनकी पत्नी केवल उसके पालने-पोसनेवाले हैं। वह अत्यन्त विनम्र स्वभाव का सीधा-सादा आदमी है। वह बुढ़कूबे और खुइलन को अपने ही माता-पिता के समान मानता है। उसका काम है केवल गायें चराना और भगवद्भजन करना। वह वेश-भूषा से जितना ही सीधा-सादा है, बुद्धि का उतना ही चतुर। वीरता, धीरता और गंभीरता तो उसमें कूट-कूटकर भरी हुई हैं। उसकी शक्ति का परिचय यथा-अवसर हमें सर्वत्र मिलता है। अपनी शक्ति का अनावश्यक प्रदर्शन वह कहीं भी नहीं करता। सर्वत्र धैर्य और गंभीरता से काम लेता है।

स्वभाव से वह सोलह आने अहीर है। बरात लौटते समय सब लोग अपनी-अपनी मनचाही चीजें दहेज माँगते हैं। सँवरू को और कुछ नहीं, केवल गायें चाहिए। गौओं को मिलते ही वह उन्हें लेकर घर की ओर चल देता है। परन्तु सँवरू का ऐसा चरित्र मगही क्षेत्रवाले संग्रहों में नहीं मिलता। उसका चरित्र वहाँ उग्र एवं उद्धत दिखलाया गया है। वह वीर है, किन्तु धीर और गंभीर नहीं। उच्छृङ्खलता और प्रदर्शन की भावना है, सौम्यता और सरलता नहीं।

मांजर—मांजर सभी जगह प्रधान नायिका के रूप में चित्रित है। वह एक असाधारण नारी है। मर्त्यलोक में आने के पूर्व वह स्वर्गलोक की परी रह चुकी है। उसके मनोमोहक नृत्य से प्रसन्न होकर ब्रह्मा उसे मर्त्यलोक में मानवता के उद्धार के लिए भेजते हैं। उसके जन्मते ही अँधेरे घर में उजाला हो जाता है। देवताओं से उसे असाधारण शक्ति प्राप्त है। वह भूत एवं भविष्य की सारी बातें जान जाती है। अपने पति के ऊपर आनेवाली प्रत्येक आपत्ति की सूचना वह पहले ही दे देती है। सर्वत्र वह एक कुशल गृहिणी के रूप में चित्रित है।

मगही क्षेत्रवाले संग्रहों में मांजर का चरित्र अपेक्षाकृत कुछ मन्द जान पड़ता है। विदाई के समय वह अपने माता-पिता की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखे बिना ही हठकर बहुत-सी चीजें दहेज में माँग लेती है। उसकी माँ उससे बहुत अनुनय-विनय करती है, लेकिन वह कुछ भी नहीं सुनती। चौसा के मैदान तक उसके डोला के साथ जानेवाली सहेलियाँ जब लौटने लगती हैं। तब वह उनसे भी मुँह खोलकर छोटे-छोटे आभूषणादि माँगती है। यदुनन्दन सखी की सुन्दर हँसुली पर भी वह दाँत गड़ा देती है। यदुनन्दन उसे अपनी हँसुली नहीं देना चाहती। वह भाग निकलती है। मांजर के इशारे पर लोरिक उसे पकड़कर उसकी हंसुली छीन लेता है और मांजर को दे देता है। इस प्रकार उसका चरित्र आदर्श से कुछ नीचे उतर आता है।

मलागित या जोधी पामर—खल चरित्रों में सबसे प्रमुख स्थान अगउढ़ या अगोरी के राजा मलागित का है। वह नीच-जन्मा, दुष्ट, दुराचारी एवं कामुक व्यक्ति है। दिन-रात विलासिता में रत रहता है। उसके महल में तीन सौ साठ रानियाँ हैं। उसके राज्य में किसी भी व्यक्ति के यहाँ जब कोई सुन्दर बालिका जन्म लेती है, मलागित उसे जबरदस्ती अपने यहाँ लाता है और सयानी होने पर उसके साथ भोग-विलास करता है। माँगर राउत की छह कन्याओं के साथ वह ऐसा ही करता है। सातवीं पुत्री माँजर के जन्म और उसके सौन्दर्य की खबर पाते ही वह उसे भी लाने जाता है। माँजर के माता-पिता के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह उसे इस शर्त्त पर छोड़ देता है कि सयानी होने पर वह उसकी शादी के बाद उसके दूल्हे को मारकर उसे अपने महल में ले जायगा। कारण यह कि माँगर राउत और उसकी पत्नी को अबतक ऐसा मौका ही नहीं मिला है कि वे कन्यादान का पुण्य अर्जित कर सकें।

माँजर की शादी के समय विवाह-मंडप में ही वह उसके भावी पति (लोरिक) को मरवाने की साजिश करता है। लेकिन वह असफल रहता है। अगोरी से माँजर का डोला चलते देख वह विकल हो उठता है। वह अपने मंत्रियों के सम्मुख अपनी उद्विग्नता प्रकट करते हुए कहता है—

सब धन तेजल जा हे मंतरी,
मँजरिया तेजल ना जा हे राम।
....
यहे जिआ लगअ हे कि फटतइ धरतिया,
आउर हम जइअइ समाय।

मँजरी को प्राप्त करने के लिए वह अनेक प्रयास करता है, किन्तु अन्त तक असफल ही रहता है। लड़ाई में लोरिक द्वारा वह मार दिया जाता है। मलागित का चरित्र सभी कथानकों में एक-सा है।

अन्य चरित्र—इन प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटे-बड़े चरित्र हैं। इन सभी का चरित्र सभी संग्रहों में लगभग एक समान है। जो थोड़ी-बहुत भिन्नताएँ हैं, उनका कारण स्थान-भेद ही कहा जायगा।

श्री अगरचन्द नाहटा

राजस्थान में प्रचलित कवि सूरदास के पद

हिन्दी साहित्य में महाकवि सूरदास का बहुत ही उल्लेखनीय स्थान है। उन्होंने ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति संबंधी जो प्रचुर परिमाण में पद बनाये हैं उनका प्रचार बहुत दूर-दूर तक हुआ। राजस्थान तो ब्रज प्रदेश से संलग्न ही है। वल्लभ सम्प्रदाय तथा कृष्ण भक्ति का प्रचार भी गत तीन शताब्दियों में यहाँ उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। कई राजा-महाराजा कृष्ण भक्ति के रंग में रंग गये, तो प्रजा में भी उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। श्रीकृष्ण का जीवन भी विविधतामय है और जन-साधारण को आकर्षित करने का उसमें सहज प्रेरणा बल है, इसलिये मीरा और चन्द्रसखी के कृष्ण भक्ति के पदों के साथ-साथ सूरदास के पदों का भी जन-साधारण में अच्छा प्रचार रहा है। किसी भी कवि के लिये यह बहुत ही गौरव की बात है कि उसकी रचनाएँ केवल पोथियों में लिखी हुई व इने-गिने व्यक्तियों के मंनोरंजन की सामग्री न रह कर उसकी रचनाएँ जन-जन के मुख पर चढ़ जायँ, उनके हृदय का हार बन जायँ और जन-साधारण के जीवन को प्रभावित कर सकें। संत कवि कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदि ऐसे ही कुछ कवि हैं जिनकी पदावली और दोहे, चौपाई आदि बहुत व्यापक प्रदेश में और लाखों व्यक्तियों के कंठ में निवास कर चुकी हैं।

लोकप्रिय रचनाओं में प्रायः ऐसा होता ही है कि कवि की मूल रचनाओं की भाषा में परिवर्तन हो जाता है, उनकी कुछ कड़ियाँ भुला दी जाती हैं, कुछ पंक्तियाँ नई जुड़ जाती हैं। यावत्प्रसिद्ध कवियों की छाप के कुछ नये पद आदि भी रचे जाकर उनके नाम से प्रचारित हो जाते हैं। कवि सूरदास भी लोकप्रिय कवियों में से हैं। इसलिये उनके पदों में भी काफी परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं उनकी छाप के नये पदों का प्रचार होता रहा है। कवि ने कुल कितने पद बनाये थे। इसके विषय में मत-भेद है फिर भी यह तो निश्चित है कि प्राचीनतम सूरपदावली की जितनी भी प्रतियाँ मिलती हैं उनमें पदों की संख्या हजार के भीतर ही है पर पीछे की प्रतियों में पाँच-सात हजार यावत १२ हजार तक पद भी लिखे मिलते हैं, इससे यह तो स्पष्ट है कि सूरदास के पदों में पिछले कवियों के उनके नाम के बनाये हुए पद भी घुल-मिल गये हैं। अतः अब मूल पदों व उनके पाठ के संबंध में निर्णय करना एक कठिन समस्या होगई है।

प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों के आधार से सूरपदावली का सम्पादन करने पर अवश्य ही अंशतः इस समस्या का समाधान हो सकेगा। पर बहुत से पद ऐसे भी हैं जो सम्भव है उस समय लिपिबद्ध नहीं किये गये। पर मंदिरों व कीर्तनों में वे परम्परागत गाये जाते रहे हैं। अतः उनको एक एक हम सूरदास के बनाये हुए नहीं हैं, ऐसा नहीं कह सकते; क्योंकि सूरदास कोई कागज पर लिख कर तो पद बनाते नहीं थे। वे तो मंदिर आदि में जब जो भाव हृदय में उठते गाते समय वे पद्यबद्ध हो गये। इसलिये सुनने वालों ने कुछ पद लिख लिये और कुछ सम्भव है मौखिक रूप से ही गाये जाते रहे। भाषा और भाव भी सब समय किसी कवि के एक ही समान नहीं रहते। विचारों की परिपक्वता, भाषा की प्रौढ़ता, भावों की उदात्तता भी क्रमशः बढ़ती रहती है। फलतः एक ही कवि या लेखक की प्राथमिक, मध्यवर्ती और परपक्व आयु की रचनाओं में अन्तर नजर आता है। इसी तरह भावों का वेग भी सब समय एक जैसा नहीं रहता। कोई रचना बिना प्रयास के भी बड़ी सुन्दर बन जाती है और कोई रचना प्रयास करने पर भी मनोनुकूल नहीं बनती पर, इन सब बातों का अनुभव प्रत्येक लेखक व कवि करता ही है। अतः परिस्थिति योग्यता, रुचि, भाव आदि की तरतमता से एक ही व्यक्ति की विविध रचनाओं में होना स्वाभाविक है। फिर भी हर एक व्यक्ति की भाषा और शैली प्रायः एक ढाँचे में ढल सी जाती है और उसी विशेषता पर सूक्ष्म विचार करके, नकली और असली रचनाओं की परीक्षा और पृथक् करण किया जाता है। सूरदास के पदों का सम्पादन करते समय यह सब बातें ध्यान में रखना आवश्यक है।

मेरे अवलोकन में अब तक सूर-पदावली की जितनी भी प्रतियाँ आई हैं, उनमें सबसे पुरानी प्रति जयपुर के पोथीखाने की है। १६३ पत्रों* की वह प्रति संवत् १६३६ में रामदास की लिखी हुई है। इस प्रति का अधिक विवरण प्रयत्न करने पर अभी तक प्राप्त न कर सका क्योंकि वह पोथीखाने की एक शो-केस में रखी हुई है और उस प्रदर्शन मंजूषिका पर सील, मोहर व ताला लगा हुआ है। जयपुर महाराजा की विशेष अनुमति के बिना उस प्रति को शो-केस से बाहर निकालना व दिखाना सम्भव नहीं। प्रयत्न चालू है। यदि उसे देखने की सुविधा प्राप्त हो सकी तो उसमें कितने व कौन-कौन से पद हैं, इसका पूरा विवरण प्रकाशित किया जायगा।

उसके बाद की संवत् १६८१, १६६५, १६६८, की तीन प्रतियाँ बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी में हैं, जिनमें क्रमशः ४६३, ४७० और ६१५ पद हैं। इसी बीच की संवत् १६६७ की लिखी एक प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में है जिसमें ८१२ पद हैं। इसी प्रकार राम चरित्र पदावली की एक अपूर्ण प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी में है अन्य अनेक प्रतियों के संबंध में भी मैं अपने ब्रजभारती में प्रकाशित संस्कृत लेख में प्रकाश डाल चुका हूँ। श्री जवाहरलाल जी चतुर्वेदी ने सूरसागर की बहुत सी प्रतियों का विवरण पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ में प्रकाशित "सूरसागर का विकास और उसके रूप" लेख में दिया

---

*प्रति पृष्ठ पंक्ति १२ प्रति पंक्ति अक्षर १८।२०। इस प्रति के जो पृष्ठ शो-केस में खुले हुए प्रदर्शित हैं उनमें ना०प्र०स०प्र० संस्करण के पद नं० ३३५६। ४१८४ संख्या लाल स्याही से लिखी गई है। अपूर्ण पद प्रकाशित में नहीं मिला।

है। उनके अनुसार चतुर्वेदी जी के पास संवत् १६४४ की एक प्रति है और उसी को ही उन्होंने सबसे प्राचीन माना है। जब कि मेरी खोज के अनुसार जयपुर के पोथी-खाने की प्रति उससे और ५ वर्ष पुरानी है। चतुर्वेदी जी ने संवत् १६५८ की नाथद्वारा, संवत् १६७० की कोटा, संवत् १६७५ की कूचामन, १६७८ की झालरा पाटन, संवत् १६८१ की बूँदी, संवत् १६८२ की शेरगढ़, इतनी १७वीं शताब्दी की प्रतियों का उल्लेख किया है।

सूरपदावली के सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करने के लिए ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा प्रयत्नशील है। इसलिये उसके संबंध में अभी कुछ न लिखकर राजस्थान में गाये जाने वाले सूरदास के कतिपय पदों को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। राजस्थान में प्रचलित होने के कारण इनमें राजस्थानी भाषा का प्रभाव मिलना स्वाभाविक है।

जैन कवियों ने प्रसिद्ध लोक गीतों और भजनों की देर या चाल पर अपनी स्तवन, ..जाय, ढ़ाल आदि रचनाएँ बनाई हैं और उन ढ़ालों या गीतों के प्रारम्भ में कौन सी रचना लोक गीत या भजन की टेक तर्ज या राग पर मेरी यह रचना बनाई गई है वे किस राग किस में गाई जानी चाहिये? इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने उस लोक गीत या भजन भी प्रारम्भिक पंक्ति भी उद्धृत कर दी है। उनके उद्धृत ब्रजभाषा के अनेक पदों की प्रारम्भिक पंक्तियाँ "जैन गर्जर कवियो भाग ३ में प्रकाशित देशीग्रानी अनुक्रमणिका" में अकारदि क्रम से छपी है। पर उनमें सूरदास के बनाये हुये पद कौन से कौन से हैं? इसका निर्णय तो सूरपदावली में विशेष रमे हुए अभ्यासी लोग ही कर सकते हैं क्योंकि केवल प्रारम्भिक पंक्ति से वह किस कवि की रचित पद की है। यह निर्णय सहज ही नहीं किया जा सकता। फिर भी उनमें से एक पंक्ति सूरदास के पद की होना मुझे विदित हुआ है, वह यह है:—

"अंबर देहो मुरारी, हमारो अंबर दे हो मुरारी" इस पंक्ति को गुर्जरी या राम-कली राग में गाये जाने के उल्लेख के साथ-साथ जैन कवि आनंद घन जी ने कुंथुनाथ स्तवन, सुमति स्तवन, जिन विजय रचित और उदयसागर कृत कल्याणसागर रास की ढ़ाल में यह पंक्ति उद्धृत की हुई मिलती है। अर्थात्-इन तीन कवियों ने अपने स्तवन व ढाल इस पंक्ति से प्रारम्भ होने वाले सूरदास के पद की राग में बनाये हैं। इनमें आनंद घन, बहुत प्रसिद्ध जैन योगी संवत् १७०० के आसपास मेड़ता में हो गये हैं और दूसरे दो जैन कवि गुजरात के हैं और उनका समय भी १८वीं का उतरार्द्ध और १९वीं का प्रारम्भ है। इस पंक्ति वाला वह पद्य नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित सूर सागर के पदांक १४०६ में इस प्रकार प्रकाशित मिलता है:—

राग राम-कली

हमारे अंबर देहो मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माझ उघारी।
तट पर बिना वसन क्यौं आवे, लाज लगति है भारी।
चौली हार तुमहीं को दीन्हौं, चीर, हमहिं द्यौ डारी।

तुम यह बात अचंभौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जु, सीत गई तनु मारी।

राजस्थान और गुजरात में सूरदास का यह पद एक लोक गीत या भजन के रूप में संवत् १७०० से पहले प्रचारित हो चुका था और उसकी लोकप्रियता के कारण ही जैन कवियों ने भी उसकी चाल या तर्ज में अपनी उपर्युक्त रचनाएँ गाये जाने का निर्देश किया है।

सूरदास के ३-४ ऐसे अन्य पद भी पुरानी "देशीयों की सूची" की प्रतियों में मिले हैं, जिनका प्रयोग तो अभी तक जैन रचनाओं में नहीं मिला पर अन्य लोक गीतों के साथ लिखे होने के कारण वे पद भी लोक भजन के रूप में अवश्य प्रचलित रहे होंगे।

(१)

मेरो अब कैसे निकसन ह्वै दईया, होरी खेलत कांनईया ।।
साहुरै जाऊँ तो मेरी सास लरै, पीहर ह्वै मेरी अति माई या ।१। होरी खेलत…
इत डर उत डर भूलि गई, मन मोहन के सँग ताथईया ।२। होरी खेलत…
विंद्रावन की कुंज गलीन में, बन बन सब सखीयन गईयां ।३। होरी खेलत…
मैं दधि बेचन जाति विंद्रावन, लूट लीयो दहीया महीया ।४। होरी खेलत…
मोर मुकुट पीतांबर सोहैं, कानै कुंडल भुकि रहीया ।५। होरी खेलत…
सूरदास प्रभु तुमरे मिलन कूं, मेरो चित्त चईया ।६। होरी खेलत…

(२)

बोई है फुलवार, आली नदी रे किनारे रे,
श्याम सामरे होरी खेलें, पिचकारन की मारे रे ।१। आली...
चउवारे चंदन और अरगजा, केसर री पिचकार रे ।२। आली…
सूरदास प्रभु तुमरै मिलन कूं, तुम जीते हम हार रे ।३। आली…

तीसरा पद यद्यपि सूरसागर में (२७२४) छपा है पर उसमें काफी पाठ-भेद है। और देशियों की सूचो में लिखा हुआ वह पद प्रकाशित पद से काफी छोटा भी है। इसलिए उस पद को भी नीचे दिया जा रहा है:—

अब के जो पीउ पांउरी छतियाँ मांय छिपांउरे।
नेना माझह ल्यू झोरी बांधु कंथा पहरु टूंका मांग खुलायुरै ।।
जोगना होय कर जोग बनाऊं अंग बभूत लगाउं रे ।।१।। अब के…
रैणा दा रुठणा डुलणा पाउं पाईयां लाग मना युं रे।
सूरदास प्रभु तुमरे मिलन को, सुमरि २ गुण गाऊं रे ।।२।। अब के…

इस पद की प्रथम पंक्ति जन कवि लाभ वर्द्धन रचित धर्म बुद्धि चौपाई की सातवीं ढाल की देशी के रूप में उद्धृत है। यह रास संवत् १७४२ में सरसा में बनाया गया है। अतः सूरदास का यह पद संवत् १७४२ के पहले राजस्थान में लोक भजन के रूप में काफी प्रसिद्ध हो गया है।

जैन कवियों की रचनाओं में और भी ब्रज भाषा के पदों की पंक्तियाँ उन रचनाओं के प्रारम्भ में उद्धृत मिली हैं पर अभी उनका निर्णय नहीं हो पाया कि वे किस कवि की कौन सी रचनाओं की पंक्तियाँ हैं। मालूम देता है कि उनमें से कुछ पद तो शायद मौखिक रूप से ही प्रचलित होते रहे हैं। वे या तो ब्रज प्रदेश के लोक गीतों या भजनों में कुछ मिल जायंगे, कुछ सम्भव है अब भुला दिए गये हों। कुछ खोजने पर उनके रचियताओं के नामों का भी पता चल जायगा। अतः उन पदों की पंक्तियों को ब्रजप्रदेश के विद्वानों के समक्ष फिर कभी रखूँगा।

अभी-अभी मैंने बीकानेर में लोक मुख से गाये जाने वाले सूरदास के कुछ भजनों का संग्रह करवाया तो सोलह भजनों में से केवल ४ पद ही सूर सागर में प्रकाशित मिले और उनमें भी काफी पाठ-भेद है फिर भी यहाँ उन ४ पदों को छोड़कर बाकी के १२ पद दिए जा रहे हैं।

सूरदास के लोक प्रसिद्ध भजन

(१)

चलौ ब्रिखभान दुलारी, स्याम बुलावै कुंजन में। टेर।
बीती रैन स्याम भयै ठाढै जी, कुंज भवन वृज नारी।१। चलौ...
अलिबाहन की माला पहरो जी, सब आभूषण धारी।२। चलौ...
दधि सुत रिपु की गति चल राधै जी, बैग चलौनी पगधारी।३। चलौ...
पसु पति तिलक तास रिपु पकड़ो जी, चहत रसिक विहारी।४। चलौ...
मान पियारी भान न कीजै जी, सूर स्याम बलिहारी।५। चलौ...

× × × ×

(२)

सुदामै जी ने देखत राम हंसे। टेर।
फाटा कपड़ा देह अति दुरबल, डोलत पांव धंसै।१। सुदामै...
तुम से ब्राह्मण हम से सेवक, नैड़ा क्यूं न वसै।२। सुदामै...
तीन लोक देवण कूं लागे, दीना नाथ हंसै।३। सुदामै...
सूरदास प्रभु तुमरे भजन कूं, कीज्यो मितर इसै।४। सुदामै...

× × × ×

(३)

नर देह वणीं किण काम नी । टेर ।
सत संगत हरि भजन न कीनौ, टेक पकड़ी नईं राम नी रै ।१। नर…
हरि मंदिर में पांव नईं दीनो, कथा सुणीं नईं राम नीं रै ।२। नर…
सील संतोक दया धरम नईं, चिन्त्या लगी धणीं दामनी रै ।३। नर…
निस दिन फिरै बकत झख मारत, जैसे कुतिया गली नीं रै ।४। नर…
आ देही नर तेरे कांम नई आवै, कौड़ी बटै न छदामनी रै ।५। नर…
सूरदास प्रभु देही गाड़ी, सुण सुण बात गुलाम नीं रै ।६। नर…

× × × ×

(४)

तैंतो हरि कौ नाम नहीं गायो रे मना, तनैं केई बिरियां समझायौ । टेर ।
भज्यो नईं भगवान भली बिध सैं, तैंतों पर दारा चित लायौ ।
पर निंदा पर तिरसना तिसूं दिन, करत परम विस खायौ ।।१।। तैंतौ…
अपनी कौम को उदर भर्यौ तैं, हरिजन कोई न जी भायौ…
जम तेरे को आंण पकड़ियौ, आड़ो कोई थन आयौ ।।२।। तैंतौ…
नैंण थके सरवण थके, सीस जो कांपण लाग्यौ ।
ले लकड़ो तू चालण लाग्यो, त्रिसणा सुन तूं धायौ ।।३।। तैंतौ…
हरि को सिंवरण कवु नईं कीनौ, अैलौई जलम गमायौ ।
सूरदास हरि भजन बिना, उन ऊधें मुख लटकायौ ।।४।। तैंतौ…

× × × ×

(५)

हमारे धन राम नाम निज खेती । टेर ।
मनसा माली सुरत बैलिया, ग्यान ध्यान कर जोती ।
राम किसन दोय बीज बौ आया, निपजै नव निध सेती ।१। हमारे…
धू पैलाद कंवर नाम दें, आण करी है खेती ।
काम किरोध रोकिलो बै गयौ, तातैं पड़ गई छोती ।२। हमारे…
समदर मंथ्यौ मैंमा पखांणी, सेसनाग कियो नेती ।
सूरदास इक राम भरोसै, जाय मिलूं हर सेती ।३। हमारे…

× × × ×

(६)

करमन की रेखा न्यारी विधना टारी नाय टरै ।टेर।
गुरु वशिष्ट से महा मुनि ग्यानी, लिख लिख लग्न धरै ।
सियाजी को हरण पिताजी को मरणो, बन बन राम फिरै ।।१।। कर…
लख घोड़ा लख पालखी रे, सिर पर छतर फिरै ।।
हरिचंद सतवादी राजा, नीच घर नीर भरै ।।२।। कर…
पांचू पांडू अधिक सनेही, जिन में विखौ परै ।।
कीचक बन में आण संतावै, हरि बांकी साच करै ।।३।। कर…
कित फंदा कित पारधी रे, मिरगा डार चरै ।।
कै धरती को पड़ग्यौ टोटो, फंदै में आंण पडै ।।४।। कर…
राजा दशरथ के ताल में रे, सरवन नीर भरै ।
बांण लग्यो राजा दशरथ को, हरि जी ने याद करै ।।५।। कर…
तीन लोक भावी के बस में, भावी बस न परै ।
सूरदास होगी सो होगी, विरथा सोच करै ।।६।। कर…

× × × ×

(७)

ओ मन मोहन घनस्याम ब्रिज मंडल क्यों छोड़ गयै । टेर ।
तेरे बिन ब्रिज मंडल सूना, सूना यमुना तीर ।
गायों ने चरणाबी छोड़ा, नैन बहावै नीर ।१। ओ……
मात यशोदा बिलखत छोडी, रोवै कृष्ण कन्हैया ।
माखन रोटी किसै खिलाऊं, किसकी लेऊं बलैयां ।२। ओ……
जब से गये मोहन तुम मथुरा, सुध नहीं लीन हमारी ।
ऐसी कौन सी भूल है हम में, हमारी सुधी बिसारी ।३। ओ०……
मैंना तेरी रो रो कहती, आजा कृष्ण कन्हैया ।
कोयल कूक कूक कर कहती, एकर दरस दिखा जा ।४। ओ०……
आज्या दरस दिखाज्या मोहन, विनती करूं कर जोर ।
सूरदास के एक तुम्ही हो, नटवर नंद किशोर ।।५।।ओ०……

× × × ×

(८)

यो तो दिन सदा न रहैगो, मत कर मान गुमान । टेर ।
इक दिन राजा हरिचन्द गृह, संपति मेरु समान ।
इक दिन जाय श्वपच घर सेवत, अंबर हरत मसान ।१। यो......

इक दिन दुल्हा बनत बराती, चहुँ दिस मंगल गान ।
इक दिन मृत्यु होत पल छिन में, कर लम्बे पग तान ।२। यो......

इक दिन राम सहित जानकी, बिचरत पुष्प विमांन ।
इक दिन पंचवटी में अकेली, रुदन करत उद्यान ।
इक दिन पांडू राज सिंहासन, अनुचर श्री भगवान ।
इक दिन द्रोपद करुणा कर रोई, चीर दु:साशन तान ।।४। यो......

प्रगटत है पूरबली करणी, तन मन सोच अज्ञान ।
सूरदास गुण कहां लग बरणं, विधि के अंक प्रमाण ।५। यो......

× × × ×

(९)

हरि जी ने जाचण जावो रे पिया थांरो भायलो गोपाल । टेर ।

ओरा के तो अन्न धन लिछमी, थे क्यों फिरो रे कंगाल ।
जाय मिलो थे किसन चंद से, पल में करदे निहाल ।१। पीया......

तूं त्रिया है चतुर सुरंगी, जानत नई विचार ।
म्हारे करम में दालद लिख्यो, कई करै रे जदु राय ।२। पीया......

सर्व सोने की बणी द्वारिका, छत्तरी खम्मों दाय ।
नारायण ने थे जाय केई ज्यो, भावज रो बुरो हवाल ।३। पीया......

तंदुल ले चल्यो सुदामा, मन में भयों बेहाल ।
कंई देस्या भायला ने, नई नई तो रिसाल ।४। पीया......

द्वारावती में पहुँच सुदामा, भेट भई नंद लाल ।
छप्पन कोट जादवों के मन में, कहां से आयो रे कंगाल ।५। पीया......

भुजा पसार मिले कृष्णजी, राधा रुखमण नार ।
सूरदास प्रभु सकल सम्पदा, छिन्न में देई तत्काल ।६। पीया......

(१०)

मेरे तो भांवै हरि बिन बसे रे उजाड़ ।टेर।
एक समय मोतियन के धोखे, हंसला चुगे रे जुवार ।१। मेरे……
सूख गयों सरवर उड़ ग्यों पंछी, पड रही निमाणी गार ।२। मेरे……
आप ही जाय प्रभु द्वारका में बस गये, आडी दरा गये कार ।३। मेरे……
सूरदास प्रभु कब हो मिलोगे, लम्बी भुजा रे पसार । मेरे……

× × × ×

(११)

कहो कोई परदेसी की बात ।टेर।
मिन्दर अर्ध भाग कर कह गए, केहरी भख यूं ही जात ।
अजिया भक्षण स्वार्थ नाहीं, कैसे दिवस बितात ।१। कहो…
मघ पंचक ले गयौ सांवरौ, तासं जिया अकुलात ।
शशि रिपु बरस भानु रिपु युगवर, हर रिपु किनो घात ।२। कहो…
कर पर कीर कीर पर पंकज, पंकज पै दोय पात ।
एक अचम्भो सुन्यो सखी री, दधि सुत में जल जात ।३। कहो…
ग्रह नछत्र वेद अरध करि, सो ही बनत अब खात ।
सूरदास प्रभु विरह में व्याकुल, कर मिंजत पछतात ।४। कहो…

× × × ×

(१२)

देखोरे अल मस्ता जोगी द्वारे थारे आयो है ।टेर।
केलाशां सूं चल्यो डगम्बर अंग भभूत रमाया है ।
सिंगी सेली नाद पांवडी, नंद घर अलख जगाये है ।१। देखो…
ले भिच्छा नंद राणी निकली, मोतियन थाल भरायो है ।
ले भिच्छा घर जाओ जोगी, मेरो बालो देख डरायो है ।२। देखो…
ना चहिये तेरी धन अरु दौलत, ना चहिये तेरी माया है ।
तेरे लाल का मुख दिखलादे, शिव जोगी दरसण आया है ।३। देखो…
ले बालक नंद राणी निकली, कर अंचल की छाया है ।
पांचवार परकमा दिनी, सिंगी नाद बजाया है ।४। देखो…
देय आशीश चले शिव शंकर, कैलाशा नें ध्याया है ।
सूरदास प्रभु कहे कर जोड़यां, जुग जीवो तेरा जाया है ।५। देखो…

उपर्युक्त पदों में से सम्भव है कुछ पद खोजने पर प्रकाशित सूर सागर के संस्करण में मिल जायं। पर मैंने नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित सूर सागर के अंत में जो "प्रतीकानुक्रमणिका" में पदों की प्रारम्भिक पंक्तियों की सूची छपी है उसमें ही उपर्युक्त पद नहीं मिलने से उन्हें अप्रकाशित समझ कर यहां दिये हैं। प्रारम्भिक पंक्तियों में शब्दों व मात्राओं के अन्तर होने से सम्भव है मैं सूची में उन्हें पकड़ नहीं पाया हूं, फिर भी इनमें कुछ पद तो नए अवश्य मिलेगें और कुछ के पाठ में जो लोक मुख पर रहने से अन्तर आया है उसकी जानकारी इनसे मिलेगी। भाषा और शैली को देखते हुए इनमें से कुछ पद महाकवि सूरदास के नहीं लगते। इसके दो ही कारण हो सकते हैं: या तो वे पद किसी अन्य सूरदास के रचित हों या उनको गाने वालों ने उसमें बहुत अधिक परिवर्तन कर कर दिया हो।

इनके अतिरिक्त राजस्थान में और भी सूरदास के बहुत से पद भक्त जनों के मुख पर मिलेंगे। सरदार शहर के श्री शोभा लाल जम्मड़ ने चार वर्ष पूर्व "सत्संग भजन मालिका" नामक छोटी सी पुस्तक निकाली। उसमें भी सूरदास के ३ पद ऐसे मिले हैं जो प्रकाशित सूर सागर में देखने में नहीं आये। उन पदों को भी नीचे दिया जा रहा है:—

(१)

दीनन दुख हरन देव, सन्तन सुखकारी।
अजामील गीध व्याध, इनमें कहो कौन साध,
पंछी हूं पद पढ़ात, गनिका – सी तारी ॥१॥
ध्रुव के सिर छत्र देत, प्रह्लाद को उबार लेत,
भगत हेत बाँध्यों सेत, लंकपुरी जा ी ॥२॥
तंदुल देत रीझ जात, साग पात सों अघात,
गिनत नहीं जूँठे फल, खाटे मीठे खारी ॥३॥
गज को जब ग्राह ग्रस्यो, दुस्सासन चीर खस्यो,
सभा बीच कृष्ण कृष्ण, द्रोपदी पुकारी ॥४॥
इतने में हरि आइ गये, बसनन आरूढ़ भये,
सूरदास द्वार ठाढ़ो, आँधरो भिखारी ॥५॥

× × × ×

(२)

नाथ मोहि अब की बेर उबारो।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारो।
करमहीन में जन्म को आँधो, मो पर किरपा धारो ॥१॥
तीन लोक के तुम प्रतिपालक, में तो दास तिहारो।

तारी जाति कुजाति भीलनी, मो ते कौन नकारो ।।२।।
पतितन में इक नायक कहिये, नीचन में सरदारो ।
कोटि पापी इक पासंग मेरे, अजामिल कौन बिचारो ।।३।।
धरमराज नाम सुनि मेरो, नरक दियो हठ तारो ।
मोको ठौर नहीं अब कतहू, अपनो बिरद सम्हारो ।।४।।
छुद्र पतित तुम तारे रमापति, अब न करो जिय गारो ।
सूरदास साचो तब माने, जब हो मम निस्तारो ।।५।।

× × × ×

(३)

रे पुतनाने विष दे अमृत पायो ।
जो कछु दैयत सों फल पैयत, नाहक वेदन गायो ।।१।।
सहस यज्ञ राजा बलि कीन्हे, बाँधि पताल पठायो ।
लक्ष गऊ राजा नृग दीनी, गिरगिट रूप करायो ।।२।।
रंक जन्म के मित्र सुदामा, कंचन धाम बनायो ।
सूरदास तेरी अद्भुत लीला, वेद नेति कहि गायो ।।३।।

× × × ×

श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ने २५४ भजनों का एक संग्रह श्री प्राचीन नारायण भजनमाला के नाम के प्रकाशित किया है जिसकी सोलह हजार प्रतियाँ पाँच बार में प्रकाशित हो चुकी हैं। उसमें भी सूरदास के १७ पद प्रकाशित हुये हैं जिनमें से प्रकाशित सूर सागर में २ ही पद और काफी पाठ भेद सहित छपे मिले और २ पद मैंने जो अभी बीकानेर में संग्रह करवाये उनमें मिले। बाकी १३ पद इस ग्रंथ में भी नये से लगते हैं। स्वर्गीय लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ने उन्हें मौखिक रूप से संग्रह किये होंगे और लाडणू-मारवाड़ में भक्त जनों द्वारा वे गाये जाते रहे हैं। उन पदों को भी नीचे दे दिया जा रहा है :—

देखो री माई प्रकट कली में जग स्यारण मेला पुस्कर का। टेर।
नाग पहाड़ में तप सी तापे ध्यान धरे शिव शंकर का।
पारवती शिव की अरधंगी नाम लेत श्री पत का ।।१।।
तेंतीस कोटी देवी देवता आये देव उठणी ग्यारस का।
घाट घाट पर दीपक माला, दरसण कर बूढ़ा पुष्कर का ।।२।।
जहाँ वाराहजी राजकरत है, ऊँचा मन्दिर है उसका।
सावत्री परबत पर बैठी, दर्शन नीचे ब्रह्मा वर का ।।३।।

देस देस का आया जातरी, नर नारी सब घर घर का ।
'सूरदास' प्रभु तुमारे सरण में, पाप कटे पहले भव का ।।४।।

× × × ×

मानो वचन वचन हमारो, राजा इक मानो वचन हमारो । टेर ।
गढ़ गिरनार आबु हस्तिनापुर, पूरब देश सितारों ।
पाँच गाँव पांडव ने दीजै, और सब राज तिहारो ।।१।।
मांग्यो मिले न सुई आंगन, मुख रण - संग्राम बिचारो ।
क्षत्री बंस को यो ही धरम है, कोई जीतो कोई हारो ।।२।।
युद्ध में सार नहीं छै राजा, बोदी बात बिचारी ।
शीश पड़े धरणी जब धुजै, खांड़ी चलत दुधारी ।।३।।
राज-रीति में तुम क्या जानो, गऊ चरावन हारो ।
बिना बुलावे थे मति आज्यो, करज्यो मति विस्तारो ।।४।।
मानत नाहीं अन्ध ही को अन्धो, कुटुम्ब सँहारन हारो ।
'सूरदास' प्रभु भरी सभा में, नृपति नहीं यो नारो ।।५।।

× × × ×

राग केदारो

कर मना राम भजन से हेत ।
राम नाम की बाड़ करले, उबरेलो थारो खेत । टेर ।
राम नाम पांच मृगा खेत खायो, चेत सके तो चेत ।
तत्व वस्तु सब चूंट खाई, लूणोगा कांई रेत ।।१।।
राम नाम तन सुवो मन पींजरो रे, बंधीयो मोहके हेत ।
मञ्जारी रूप काल डोले पाव पलक मांहि लेत ।।२।।
राम राम कर विचार विकार पर हरो उतरो सायर सेत ।
'सूर' हरी को भजन करले संत पुकारी हो देत ।।३।।

× × × ×

गिर न पड़े गिरिवर नख धारो । टेर ।
मात यशोदा सोच करे छै मेरो कन्हैया बारो ।
इन्द्र कोप कियो बृज ऊपर वर्षायो मूसल धारो ।।१।।
कान्ह कंवर माता से बोले मन में धीरज धारो ।
एक गिरवर की कौन चलाई कोड गिरी नख धारो ।।२।।
रात दिवस जल बरसन लाग्यो कीच भई नहिं गारो ।
'सूरदास' प्रभु तुमरे शरणे जीत गयो (गढ़) गोकुल वारो ।।३।।

× × × ×

राग सोरठा चाल दूसरी

किस बिध राजीराम में तो कांई जाणु,
किस बिध राजीराम में तो कांई जाणु ।टेर।
नारद कहे मैं चारो जीते, माया, मोह, मद, काम ।१।
गैले में एक नगर रचायो, बिसर गयो तप धाम ।२।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, कौन करे परवान ।३।
'सूरदास' प्रभु तुमरी माया से, राखी जो कृपा निधान ।४।

× × × ×

राग बीकानेरी पणिहारी

छैल छबीलो म्हारों नंद जी को लालो है ।
म्हारे मन बस रह्यो गिरधारी ।। टेर ।।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल की छवि है न्यारी ।
नन्द धरा आनन्द भयो है, मंगल गावे सखीयाँ सारी ।।१।।
कंसराय भेजी समझा कै, नार पूतना हुँसीयारी ।
स्तन पीकर प्राण हर्यों है, स्वर्ग पठा दी सुर नारी ।।२।।
ग्वाल बाल संग गेंद रमत है, तट जमुना बिच जाय डारी ।
कालीदह में नाग राज नात्थो, देखन आवे नर नारी ।।३।।
लेकर चीर कदंब पर चढ़ गये, ठण्ड लगत मुझको भारी ।
चीर हमारो देवो नी सांवरा, लाज लगत मुझको थारी ।।४।।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, दधि की मथनिया फोर डारी ।
जाय पुकारूं कंसराय ने, लूट लेवे गोकुल सारी ।।५।।
वृन्दावन में धेनु चरावे, मारग रोक्यो गिरधारी ।
जमुना के नीरां-तीरां ठाडोरे, कन्हैयो बंशी बजावे हद भारी ।।६।।
इन्द्र कोप कियो बृज उपर, बर्ष रह्यो मूसलधारी ।
बांये नख पर गिरवर धार्यो, बृज की लाज रखी सारी ।
वृन्दावन में रास रच्यो है, सहस्र गोप्यां बिच गिरधारी ।
'सूरदास' प्रभु दोऊ कर जोड़े, चरण कमल पर बलिहारी ।।८।।

× × × ×

राग प्रभाती ।

मन्दिर देख डरे हो सुदामा, मन्दिर देख डरे हो ।टेर।
कहां गई मेरी राम झुपड़िया, कहां को नरपति आय उतरे हो ।
कंचन महल चुनाय दिया छिन में, झूंपा को अलग धरे हो ॥१॥
इधर उधर कोई जोवत पांड़े, मन में सोच करे हो करे हो ।
ठाड़ी झरोखा परम सुन्दरी, आवो नी कंत घरे हो घरे हो ॥२॥
पहली पोल गज हस्ति ठाड़े, दुजे में तुरन्त खड़े हो खड़े हो ।
तीजो पोल विश्वकर्मा ठाड़े, खंभा रतन जड़े हो जड़े हो ॥३॥
चार पदारथ स्वा है भवन में, दीनानाथ करे हो करे हो ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हारे भजन से, दुख दारिद्र हरे हो हरे हो ॥४॥

× × × ×

राज जैजैवंति ।

राधा कृष्ण क्यूं नहिं बोलो पीछे पछतावोगे ।टेर।
ज्योंने तुमको जनम दियो है वाको नाम क्यों नहीं लियो ।
ऐसी नर देह बन्दा फिर नहीं पावोगे ॥१॥
त्रिया और कुटुम्ब की खातर पच पच के कमावोगे ।
माया तेरे संग नहीं चाले भरम गमावोगे ॥२॥
आवेंगें यम के दूत पकड़ ले जावेंगे ।
पूंछेगा हिसाब प्यारे क्या बतलावोगे ॥३॥
सूर के किशोर स्वामी आवागमन मिटाओगे ।
हरि के भजन से बन्दा पार हो जावोगे ॥४॥

× × × ×

राग श्री बद्री नाथ जी की स्तुति ।
मत करो संथारी रे ।टेर।

जो तैंने गर्भ में कोल किया था वो क्यों याद बिसारी रे ॥१॥
माता पिता सब स्वार्थ चावे, है नहीं थांरी नारी रे ॥२॥
जब तूं तन से वृद्धा होगा, लोग हंसे दे तारी रे ॥३॥
जम का दूत जब पकड़ले जावे, मार लगावे खारी रे ॥४॥
'सूरदास' हरि भजले प्राणी, पीछे लगे नहीं कारी रे ॥५॥

× × × ×

राग चरचरी ।

वसुधा काहू की न भई ।

चित्रकेतु प्रियव्रत से राजा उनके संग न गई ।।टेर।।
सतयुग में हिरणाकुश राजा सुवर्ण पृथ्वी सही ।
रामनाम की भेट दुहाई अपनी टेक दई ।।१।।
त्रेता में रावण भयो राजा सुवर्ण लंक सही ।
एक लख पुत्र सवालख नातीं काहु न लकड़ी दई ।।२।।
द्वापर में दुर्योधन राजा पांडव राज सही ।
बारह जोजन छत्र फिरत है मटिया गीद्ध खई ।।३।।
द्वापर अंत कृष्ण भये ब्रज में कंस को राज सही ।
मार्‌यो कंस कृष्ण भये राजा गोपियन मुक्ति दई ।।४।।
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग युग युग होत गई ।
'सूरदास' सभी नर झूठा अपनी अपनी कही ।।५।।

× × × ×

राग बसन्त ।

बंशीवारा सांवरा थाने कांई ओलमो द्यूं, मूरलीवाला सांवरा० ।टेर।
रात डली में सी पड़े रे दिन में तावड़ क्यूं ।।१।।
बलिराजा घर जाचण आयो लांवो बंध्यो क्यूं ।।१।।
रावण मार विभीषण तार्‌यो ऐसो अनबी क्यूं ।।३।।
पांचूं पांडु अधिक सनेही बन में बिचर्‌या क्यूं ।।४।।
'सूरदास' यूं देत ओलया मने बिसर्‌यो क्यूं ।।५।।

× × × ×

अब तो देखो सांचो कलयुग आयो ।टेर।
पुत्र पिता को कह्‌यो न माने करेला अपणो मन पायो ।।१।।
नारी निज पति नहीं माने निरखेली पुरुष परायो ।।२।।
सन्यासी धन संचन लागा हरि सुमरण छिटकायो ।।३।।
राजा न्याव धर्म नहीं बुझे ब्राह्मण फिरे भटकायो ।।४।।
वसुधा पे वर्षा अल्प होत है सब जग पाप ही छायो ।।५।।
देखो जमुना मथुरा नगरी कालन्दी नीर सुखायो ।।६।।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे भजन बिन मोकूं क्यों तो जीवायो ।।७।।

× × × ×

बेड़ि आई भगवान समेवो दाता बेड़ी आई भगवान ।टेर।
पुत्र पिता को कह्यो न माने त्रिया की सुनि कान ॥१॥
नारी निज पति नहीं माने लेवे पति की स्यान ॥२॥
चेलो गुरु आज्ञा नहीं माने ल्यावे नई नई तान ॥३॥
'सूरदास' प्रभु तुम्हारे भजन में राखो जी कृपानिधान ॥४॥

कुछ फुटकर पद हस्तलिखित प्रतियों में लिखे मिलते हैं। उनसे भी मिलान करके देखा तो प्रकाशित संस्करण से पाठ में काफी अंतर है और कुछ अप्रकाशित भी है। आवश्यकता है लिखित एवं मौखिक पदों की गहरी छानबीन की। किसी भी प्रसिद्धि-प्राप्त कवि की रचना में पाठ-भेद मिलना तो स्वभाविक है पर अन्य कवियों के पद भी उनके नाम से प्रचारित हो जाते हैं। कुछ व्यक्ति रचना में अपना नाम नहीं देकर किसी लोकादर प्राप्त कवि की छाप दे देते हैं जिसमें शीघ्र ही उनके पद का प्रचार हो जाय।

माताप्रसाद गुप्त

लोरकहा और मैनासत

दाऊद की 'लोरकहा' (चंदायन) की अभी कुछ पूर्व तक जो प्रतियाँ उपलब्ध थीं, उनमें कथा—नायक लोरिक की विवाहिता पत्नी मैना के सत (सतीत्व-परीक्षा) का कोई प्रसंग नहीं मिला था; किंतु अब उसकी एक प्रति प्राप्त हुई है—जो भोपाल की है और इस समय जिसका एक अंश बंबई के प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम में पहुँच गया है—जिसमें मैना-सत का भी प्रसंग आता है। इधर श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने साधन के 'मैना-सत' का एक संस्करण प्रकाशित किया है; उसी से ज्ञात होता है कि लोरकहा (चंदायन) की उक्त प्रिंस आव्वेल्स म्यूजियम वाली प्रति में मैना-सत प्रसंग मिलता है और इस प्रसंग के छंद साधन के नाम से प्रसिद्ध 'मैना-सत' नामक रचना में भी मिलते हैं। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने 'मैना-सत' के अपने संस्करण के लिए उक्त प्रति की एक प्रारंभिक देवनागरी वाचना का, जो डा० मोतीचंद्र तथा श्री परमेश्वरी लाल गुप्त ने तैयार की थी, उपयोग किया है।

दोनों में कुछ छंद समान रूप से पाए जाते हैं। इस वस्तुस्थिति से दो महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने उठ खड़े होते हैं: एक तो यह कि 'लोरकहा' और 'मैना-सत' में समान रूप से मिलने वाले ये छंद मूलतः किस रचना के हैं और प्राप्त पाठों में से किसमें इनका प्राचीनतम रूप हमें उपलब्ध होता है; दूसरा यह कि मूलतः यह छंद 'लोरकहा' के रचयिता दाऊद के हैं अथवा 'मैना-सत' के रचयिता साधन के हैं। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर दोनों रचनाओं के प्रामाणिक पाठ-निर्धारण के लिए आवश्यक है, इसलिए नीचे इन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है। 'मैना-सत' के दो पाठ पहले से प्राप्त थे: एक, जो स्वतंत्र रचना के रूप में पहले से ज्ञात था, और दूसरा, जिसकी सूचना पहले-पहल साढ़े चार वर्ष पूर्व मैंने दी, जो चतुर्भुज दास निगम की 'मधु मालती' के कुछ पाठों में अंतर्भुक्त मिलता है।[1] इधर इन दोनों पाठों का प्रकाशन भी हो गया

१. दे० लेखक द्वारा लिखित: 'साधन का मैना-सत', अवंतिका, जुलाई, १९५४, पृ० ७८–८१।

है : स्वतंत्र पाठ श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित होकर आगरा विश्वविद्यालय हिंदी विद्यापीठ की ग्रंथ-वीथिका में १९५७ में प्रकाशित हुआ है,[२] और 'मधुमालती' में अन्तर्भुक्त पाठ श्री हरिहरनिवास द्विवेदी द्वारा संपादित होकर उसके एक अन्य संस्करण में प्रकाशित हुआ है। 'लोरकहा' में मिलने वाले तीसरे और नव प्राप्त पाठ के संबंध में आवश्यक सूचना श्री द्विवेदी के उक्त संस्करण में मिल जाती है; इसलिए इन तीनों पाठों की सहायता से ऊपर उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देने का एक प्रारंभिक प्रयास नीचे किया जा रहा है, अंतिम रूप से इन प्रश्नों का उत्तर देना आशा है कि पीछे कभी संभव होगा।[३]

उपर्युक्त प्रथम प्रश्न के प्रसंग में नीचे 'मैना-सत' के स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) तथा उसके 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं। 'लोरकहा' की उक्त बम्बई की प्रति में रचना का केवल कुछ अंश ही मिलता है, जैसा श्री द्विवेदी ने सूचित किया है[४], इसलिए जो पंक्तियाँ उस पाठ में भी मिलती बताई गई हैं, नीचे उनके सामने तारक चिह्न मात्र बना दिया गया है।

स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण)	'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण)
*(१) पिय दुख मोहि परउ है आई। अस दुख सवतनि परि जो धाई॥ (पृ० १११)	(१) नहीं है।
*(२) महरे की धी चांद गुवारी। लै गई मांग सिंदूर उतारी॥ (पृ० १११)	(२) मेरो पिया है सायर पारू। लै गयो सब सिनगार उतारू॥ (पृ० १७८)
*(३) करहि न वैर (बैरी) चांद जो कीन्हा। बारी बैसि मोहि दुखु दीन्हा॥ (पृ० १११)	(३) बैरी न करै सोइ पिय कीन्हा। बाली बैस मोहि दुख दीन्हा॥ (पृ० १७८)
(४) काकर मालनि करउ सिंगारा। मोहि परिहरि गयौ कंतु पियारा॥ (पृ० १११)	(४) कहा कर मालिन करहुं सिंगारा। मोहि परिहरि गयौ कंत पियारा॥ (पृ० १७८)

---

२. हिंदी विद्यापीठ ग्रंथ वीथिका (१९५७) पृ० १०५–१२६।

३. प्रस्तुत लेखक 'मैना-सत' का समस्त संपादन-सामग्री को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है, और यदि वह प्राप्त हो गई तो रचना का एक आलोचनात्मक पाठ वह प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेगा।

४. हरिहर निवास द्विवेदी : 'साधन कृत मैना-सत' पृ० ३८। उन्होंने लिखा है कि इस प्रति में कुल ६८ कडवक प्राप्त हुए हैं, जिनमें से पाँच 'मैना-सत' के हैं। इधर डॉ० मोती चन्द्र ने 'लोरकहा' वाले अंश की उनके तथा श्री परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा की हुई प्रथम वाचना की एक प्रति मुझे भेजी है, जिसमें ६४ कडवक हैं।

(५) फिर (फिरा?) भाग अदिन भया
मीत कि बरी होइ।
बांके दीहा जो करहिं
ऐसा करै न कोइ॥
(पृ० १११)

(५) फिरे भाग ओछे दिना
मीत जु बैरी होय।
करैं जु बांके दीहडा
ऐसी करै न कोय॥
(पृ० १७८)

(६) आनि संवति तो ऊपरा
तोरी करसि न कानि।
तिह लग जोवन खोवसी
काहे होहि अयान॥
(पृ० ११४)

(६) सुरत केहरि तो ऊपरैं
तैं मोहि कहै निदान।
जह लग जोबन बिहसी
कह्यौ हमारौ मान॥
(पृ० १८७)

(७) जिह राता मोरा पिउ
हौं चेरी ता सौति की।
बार न बांधौं जीउ
साधन सीस कि राखीयै॥
(पृ० ११४)

(७) पेम पियारौ सोइ
जिन चौरी मो कर ग्रह्यो।
अवर न दूजा कोइ
मालिन सूं मैना कह्यो॥
(पृ० १८३)

(८) करवत सीस देइ जौ लोरा।
तबहूं अंगु न डोलै मोरा॥
(पृ० ११४)

(८) करवत सीस देइ जो लोरा।
तो ही अंग अंग नहीं मोरा॥
(पृ० १८८ पाद०)

(९) तुहि देषत और हि लेगावा (गवा?)।
छोड़िसि तोहि निरापनुभावा (भवा?)॥
(पृ० ११५)

(९) नहीं है।

(१०) ऊडि गयौ तासौं कस नेहू।
तह करे का जिउ देहूं॥
(पृ० ११५)

(१०) छांडि गयौ सो कौन सनेही।
तिहि काजैं काहे जिव देही॥
(पृ० १८९)

(११) जियरा मोर चांद लै धरा।
जिय बिनु सब धरु माटी परा॥
(पृ० ११५)

(११) जियरा मेरौ सायर पारै।
बिना जिया माटी भुइ झारै॥
(पृ० १९०)

(१२) रितु जानौ लोरक सगि मानौ।
पिय बिनु जगतु धुंधु करि जानौं॥
(पृ० ११५)

(१२) रितु मानू लालन घर आवै।
नहि तर मैना प्रान गमावै॥
(पृ० १९०)

(१३) काच सूत जस टूटिहै
तैसें ठसकीइसि (ठसकाइसि) लोर।
अगहन छेलु दिषाउ तुहि
बिलसु कहा सुनु मोर॥
(पृ० ११६)

(१३) काच सूत जस टूटि है
तस ठस काइसि तोर।
अगहन छैल मिलाहुं तोहि
कहा सुनै जो मोर॥
(पृ० १९१)

(१४) साधन जौ सिरु जाइ सत न छांडुं आपुना। लीजै दीजै भाइ सत अके सत कि आगरे॥ (पृ० ११६)	(१४) साधन जो सिरु जाइ सत न छांडू आपनो। पापहिं देहु बहाइ सत की कानी आगरी॥ (पृ० १६१)
(१५) जो मालनि लोरहि अस भावा। ना मुहि रोसु न परिहसु आवा॥ (पृ० ११६)	(१५-१६) हूं मालिनि अपनौ सिर हारूं। कुण मानस(माष)सों जीव बिटारूं॥ (पृ० १६१)
(१६) जिह पिय सों अपुना सिरु हारा। कौन माषु सो जियरा मारा॥ (पृ० ११६)	
(१७) राजु देइ तौ कवन बड़ाई। भीष मगावत का घटि जाई॥ (पृ० ११६)	(१७) नहीं है।
(१८) पोस मास का करहि मोरा। था(या?)तनि जिउ हरि लै गउ लोरा॥ (पृ० ११७)	(१८) पौस मास का करिहै मेरौ। दूती लछन मै देखूं तेरौ॥ (पृ० १६३)
(१९) साधन चढया बसंत विरहनि विरह चवग्गुया। परतीय लुबधा कंत मरनैघ जियना(जियनैतैंमरना)भला। (पृ० १२२)	(१९) साधन चढ्यौ बसंतु बिरहिन बिरहा चौगुना। पर घर(नारि)बिलमो कंत जिवना सूं मरना भला॥ (पृ० १६६)
(२०) मालति भंवरा जोगु भंवरा कंवलहि बेधिया। साधन पूरौ सोग जो गुवरौ(गुवरोरा) सरवरि करै॥ (पृ० १२३)	(२०) मालति भयौ वियोगु भंवरा कमलहि बंधिया। साधन पूरौ सोगु गुबरीरा सरभर करै॥ (पृ० १६५)
(२१) माजरि मासु चढ़ा बैसाखू। मदन भुयंग रह्या चढ़ि तातू॥ (पृ० १२३)	(२१) मैना मास चढौ बैसाखू। मदन भुयंग जतन करि राखू॥ (पृ० १६८)

ऊपर के उद्धरणों में कोष्टकों में पाठांतर बिना प्रश्न-चिह्न के और संभव वास्तविक पाठ प्रश्न-चिह्न के साथ दिए गए हैं। स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) के पाठांतर उसके संपादित संस्करण में ही दिए हुए हैं, 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) के पाठांतर उसके संपादित संस्करण में नहीं दिए गए हैं, इसलिए उन्हें उक्त संपादन के लिए

प्रयुक्त एक—नागौर की—प्रति[5] से दिया जा रहा है जिसका पाठ प्रस्तुत लेखक ने आठ वर्ष पूर्व 'मधुमालती' के संपादन के लिए प्राप्त किया था।

ऊपर दिए गए उद्धरणों को देखने पर ज्ञात होगा कि स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) में मैना, जिसका एक नाम माजरि (मांजरि) भी है [उद्धरण २१], की एक सौत है [उद्धरण १, २, ३, ६, १९, २०], जो उसके पति को भगा ले गई है [उद्धरण २], अथवा जिसके साथ उसका पति भाग गया है [उद्धरण ९]। सौत के साथ पति के उढरने (भागने) के कारण वह यह अनुभव करती है कि पति ने उसके साथ अन्याय किया है [उद्धरण ४, ५, ६, ९, १०, १३, १८], किंतु उसे इसके कारण कोई माख (मलाल) नहीं है [उद्धरण १५], और उसका पति जिस स्त्री पर अनुरक्त है, उसकी वह चेरी होकर रहेगी [उद्धरण ७, १७], इतना ही नहीं उसका पति यदि उसका सिर चाहेगा तो उसके देने में भी उसे कोई आपत्ति न होगी [उद्धरण ७, ८, १२, १४, १५, १६, २०]; उसकी इस सौत का नाम चाँद है [उद्धरण २, ४, ११], जो गुवारी (ग्वालिन) है [उद्धरण २], और महर की कन्या है [उद्धरण ९]; मैना के इस उढरे (अन्य स्त्री के साथ भागे) पति का नाम लोर या लोरक है [उद्धरण ८, १२, १३, १५, १८]।

'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में भी ऊपर आई हुई प्रायः समस्त बातें मिलती हैं: उसमें भी मैना की एक सौत है [उद्धरण १९, २०], जिसके साथ उसका पति भाग गया है अथवा रहने लगा है [उद्धरण १९, २०], जिसने मैना का शृंगार (सुहाग) छीन लिया है [उद्धरण २] और जो उसे छोड़कर चला गया है [उद्धरण ३, ४, ५, ९], किंतु इस अन्याय के लिए मैना के मन में कोई माख (मलाल) नहीं है [उद्धरण १५-१६] और यदि मैना का पति उससे उसका सिर भी चाहे तो उसे देने में उसको आपत्ति न होगी [उद्धरण ७]; मैना के इस पति का नाम लोर है [उद्धरण २१]।

'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) की जो बातें नहीं आती हैं, वे हैं मैना का एक अन्य नाम मांजरि होना, उसकी सौत का नाम चाँद होना, और इस चाँद का गुवारी (ग्वालिन) तथा महर की कन्या होना। इन विवरणों को सचेष्ट रूप में हटाने का प्रयास 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में स्पष्ट दिखाई देता है, क्योंकि इन विवरणों की पंक्तियों का जो पाठ उसमें मिलता है, वह अधिकांश में अर्थहीन अथवा दोषपूर्ण है। उदाहरणार्थ, उद्धरण २, जोकि निम्नलिखित है :—

मेरो पिया है सायर पारू। लै गयौ सब सिनगार उतारू।

प्रथम और द्वितीय चरणों में कोई संबंध नहीं है: दोनों में संबंध-निर्वाह कराने के लिए 'पिया' कर्त्ता के लिए 'जो' सर्वनाम का 'है' क्रिया के पूर्व आना आवश्यक था।

'उतारू' (उतारु) संज्ञा रूप तो असंभव ही है, पूर्वकालिक क्रिया रूप 'उतारि' ही सार्थक और संगत होता, किंतु तब 'पारू' (पारु) के साथ तुक न मिल सकता।

---

५. हरिहर निवास द्विवेदी : साधन कृत 'मैना-सत' पृ० ७।

इसी प्रकार, उद्धरण ११ जोकि निम्नलिखित है:—

जियरा मेरो सायर पारै। विना जिया माटी मुइ झारै।

'झारै' (=झाड़ती है) सर्वथा असंगत है: 'माटी' (मिट्टी) 'भुइ' (भूमि) को नहीं झाड़ सकती है; और न झाड़ने का कोई प्रसंग यहाँ है। इस पाठ के संपादक श्री द्विवेदी ने 'झारै' का अर्थ 'सूखना' (=सूखती है) दिया है, किंतु इस अर्थ में 'झारना' का प्रयोग कहीं नहीं मिलता है।

'पारै' भी चिंत्य है। आशय कदाचित् 'पार ही' से है किन्तु 'ही' की कोई आवश्यकता प्रसंग में नहीं है। 'पारना' से भी 'पारै' (=सकता है) रूप बनने के कारण अर्थ-भ्रम की सम्भावना प्रकट है।

फिर उद्धारण २ तथा ११ में जो पुनरुक्ति है, वह भी चिन्त्य है: एक में आता है 'मेरो पिया है सायर पारू', तो दूसरे में आता है 'जियरा मेरो सायर पारै'।

पाठ-भेद के उपर्युक्त प्रायः समस्त स्थलों पर स्वतन्त्र पाठ (नाहटा संस्करण) की सहज संगति है, यह दिखाना अनावश्यक होगा। अतः यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्र पाठ (नाहटा संस्करण) 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) की अपेक्षा मूल के कहीं अधिक निकट है। यदि थोड़ी देर के लिए यह न भी माना जावे कि 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में मांजरि, चाँद, गुवार जाति और महर के विवरण निकालने का सचेष्ट प्रयास हुआ है, तो भी परिणामों में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है, और यह भली भाँति प्रमाणित हो जाता है कि दोनों पाठों में मैना की उसी कथा का एक विस्तार आता है जो 'लोर कहा' में पाई जाती है। नायक के 'लोर' नाम के स्थान पर 'मधुमालती' पाठ की एक प्रति में उसके सम्पादक श्री द्विवेदी को 'लालन' नाम मिला, इसलिए उन्होंने 'लालन' को ही स्वीकार किया है।[६] किन्तु उसी पाठ की शेष दूसरी प्रति में सर्वत्र 'लोर' या 'लोरिक' नाम आता है, और स्वतन्त्र पाठ की समस्त प्रतियों में भी—जो आधी दर्जन से अधिक प्राप्त हुई हैं—सर्वत्र यही मिलता है, ऐसी दशा में 'लोर' या 'लोरिक' के स्थान पर 'लालन' नाम को स्वीकार करने का पर्याप्त कारण नहीं दिखाई पड़ता है।

भाषा-रूप की दृष्टि से भी यही बात प्रमाणित होती है: स्वतन्त्र पाठ की जो प्रतियाँ श्री नाहटा को मिली हैं वे सब की सब पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी क्षेत्रों की हैं, और इन बोलियों का कुछ प्रभाव उक्त प्रतियों के भाषा रूप पर दिखाई पड़ता है, फिर भी रचना की भाषा का मूल अवधी रूप प्रत्यक्ष है, और जहाँ जरा भी उस अवधी रूप को समझने में प्रतिलिपिकारों ने भूल की है, अर्थ का अनर्थ हो गया है। उदाहरणार्थ:—

उद्धरण ६ मूल अवधी रूप में कुछ इस प्रकार रहा होगा:—

आनि सवति तो (तोरे?) 'ऊपर' तोरी 'करेसि' न कानि।
तिहिं 'लगि', जोवन 'खोवसि' काहे 'होइ' अयानि॥

६. हरिहर निवास द्विवेदी 'साधन कृत मैना सत', पृष्ठ १०।

स्वतन्त्र पाठ (नाहटा संस्करण) में 'ऊपर' के स्थान पर 'ऊपरा' 'लगि' के स्थान पर 'लग' और 'होइ' के स्थान पर 'होहिं' होने तक तो कुछ गनीमत थी, किन्तु 'करेसि' (=उसने किया) के स्थान पर करसि' (=तू करती है) और इसी प्रकार 'खोवसि' (=तू खोती है) के स्थान पर 'खोवसी' (=तू खोवेगी: राजस्थानी) असंगत हो गए।

उद्धरण ९ मूल अवधी रूप में कुछ इस प्रकार रहा होगा:—

तुहि देखत औरहि लै 'गवा'। छाडिसि तोहि निरापुन 'भवा।

'गवा' (=गया) तथा 'भवा' (=हुआ) के स्थान पर 'गावा' (=गाया), और 'भावा' (=अच्छा लगा) सर्वथा अर्थहीन और असंगत हो गए।

'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) का भाषा-भेद तो स्वभावत: इस कारण है कि 'मैना-सत' को 'मधुमालती' में मिलाना था जो कि एक भिन्न बोली की रचना थी। किन्तु अवधी के अवशेष उस पाठ में भी सुरक्षित हैं। उदाहरणार्थ—कीन्हा [उद्ध० ३], दीन्हा [उद्ध० ३], पियारा [उद्ध० ४], लोरा [उद्ध० ८], मोरा [उद्ध० ८], जियरा [उद्ध० ११], जिया [उद्ध० ११], तोर [उद्ध० १३], और मोर [उद्ध० १३], जो 'मधुमालती' की भाषा में क्रमश: पियारो, कीन्हो, दीन्हो, लोरो, मेरो, जियरो, जियो, तेरो तथा मेरो होते, जिस प्रकार वे शेष सारी रचना में और इस प्रसंग में भी अन्यत्र मिलते हैं; यथा मेरो या मेरौ [उद्ध० २, ११, १८,], गयौ [उद्ध० २, १०], कह्यौ या कह्यो [उद्ध० ६,७], हमारौ [उद्ध० ६], पियारौ [उद्ध० ७], रह्यो [उद्ध० ७], आपनौ या अपनौ [उद्ध० १४ १५-१६], तेरौ [उद्ध० १८], चढ्यौ या चढ़ौ [उद्ध० १९, २१], बिलमो [उद्ध० १९], भयौ [उद्ध० २०] और पूरौ [उद्ध० २०]।

'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) का कथा-भेद भी उपर्युक्त परिणाम की पुष्टि करता है। उसके प्रारम्भ में आता है कि मैना और उसका पति वरनापुरी के निवासी हैं, वे महाजन (व्यापारी-वैश्य) हैं। एक समय वहाँ के समस्त महाजन मिलकर सागर से हीरा भरने के लिए परदीप को जाने लगते हैं तो मैना का पति भी उससे उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट करता है। मैना कहती है कि घर में भांडार भरा हुआ है, और उस (मैना) की अवस्था भी थोड़ी है, छोटा-बड़ा [उसके आगे-पीछे] दूसरा कोई है नहीं, इसलिए उसे परदेश न जाना चाहिए। [किन्तु वह फिर मान जाती है और] कहती है कि जब तक वह लौटेगा नहीं, वह उदास रहेगी। पति एक वर्ष में लौटने का वचन देता है और उससे मन्दिर में 'मौजाँ' करने और [भावी मौजों की] 'मोटी' आशा बाँध रखने का आग्रह कर चला जाता है।

पति के विदेश जाने पर मैना उदास रहने लगी है; पर पुरुष पर वह दृष्टि नहीं डालती है और अपने सत के साथ वह मन्दिर (भवन) में अकेली रहती है। किन्तु उस समय उस नगर का जो महाराजा है, और गंगा पार पूर्व के देश का है, उसका एक कुमार दुर्बुद्धि है। वह अहेर (आखेट) के लिए चढ़ चलता है। मैना अपने मन्दिर में बैठी हुई है जब कुमार की दृष्टि उस पर पड़ती है। वह उस पर लुब्ध हो जाता है और वह

ऐसे किसी मित्र की चिन्ता में पड़ जाता है जो उससे उसका मिलन करा सके। किन्तु उसका एक साथी कहता है कि यह स्त्री अपने हृदय में सत धारण किए हुए है, और इससे मिलन केवल किसी दूती के प्रयासों से संभव हो सकता है। पूछने पर वह साथी यह भी बताता है कि रतना मालिन इस प्रकार के कार्य में सब से चढ़ी-बढ़ी है। यह जानकर वह कुमार जिसका नाम सतन (सातन) है, रतना को बुला कर इस कार्य के लिए नियुक्त करता है।

इस के अनंतर रतना के मैना के पास जाने और बारह महीनों तक उसे निरन्तर सत से विचलित करने की चेष्टा की कथा आती है जो स्वतन्त्र पाठ (नाहटा संस्करण) और 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में सर्वथा एक-सी है। बारह महीने बीत जाने के बाद 'मधुमालती' पाठ में मैना के पति के परदीप से लौटने की भी कथा आती है, जो इस प्रकार है:—

ज्येष्ठ समाप्त होता है तो मैना के पति के क़ासिद आते हैं; वे उसकी दूकान का पता लगाते-लगाते मैना के पास पहुँचते हैं। उनसे मैना को ज्ञात होता है कि खेपिये (सौदा लादने वाले) परदीप से वापस आ रहे हैं और वे उसके पति के भेजे हुए हैं: वे उसका परवाना लाए हैं। यह सुनकर मैना अपने गुमाश्तों को बुलाती है। वे मजलिस में परवाना बाँच कर सुनाते हैं। उस में लिखा हुआ है कि उसका पति अब सोधरथ से वरनापुरी चल पड़ा है। यह समाचार पाने पर मैना शृंगार करने लगती है और उत्सव होने लगता है। इतने में दूसरे क़ासिद आते हैं, जो बताते हैं कि समस्त महाजन हीरा माणिक लुटाते हुए सूरत नगरी में डेरा कर रहे हैं और उसका पति भी बैल सजा कर चढ़ चला है, जिस से नदी-नीर में पावक खलबला उठी है। [तदनन्तर ज्ञात होता है कि] अब वह हालोल कलोल में पहुँच गया है, जो गढ़ गुजरात में गिरनार की छाया में है। फिर समाचार मिलता है कि उसका पति मालागर आ गया है, उसने महिभोज में डेरा किया है और अब गुजरात छोड़ कर वह वरनापुर के मार्ग में चल पड़ा है। फिर यह कि नर्मदा के घाट पर वह उतरा है, और कामापुरी में मुकाम किया है और अन्त में वरनापुरी में मुकाम कर उसने चम्पा बाग में डेरा किया है। फिर दम्पति का मिलन होता है।

दूती को मैना इस पाठ में पति के इस पुनर्मिलन के अनंतर निकलवाती है। उसकी दुर्गति की कथा दोनों पाठों में एक-सी है।

यहाँ दो-एक बातें उल्लेखनीय हैं: (१) मैना के पति के लौटने का विवरण 'मधुमालती' पाठ के सम्पादक द्वारा प्रयुक्त उसकी दो प्रतियों में से भी एक में ही मिलता है।[७] (२) यह कुल अंश केवल ४८ पंक्तियों का है, किन्तु इस में फारसी शब्दों की ऐसी भरमार है कि शेष पूरी रचना में उसका दशमांश न मिलेगा: यथा—परवाना, गुमाश्ता मजलस, मुकाम, सिरोपाव, कासद, साहूकार, लसकर, कूच, डेरा, मजल, बाग, सुरतान। उसका पति जो ऊपर दिए हुए इस पाठ के प्रारम्भ के अंश में 'महाजन' है, 'खेपिया' (सौदा लादने वाला) और फिर 'साहूकार' हो गया है; 'महाजन' शब्द का प्रयोग इस

---

७. हरिहर निवास द्विवेदी: 'साधन कृत मैनासत', पृ० २०२।

अंश में उसके लिए एक बार भी नहीं होता है। अतः यह प्रकट है कि कथा का यह अंश उस में सब से पीछे किया हुआ प्रक्षेप है।

प्रारंभ की जो कथा 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में मिलती है, वह भी प्रक्षेप मात्र है, जो इससे प्रकट है कि इसमें ऊपर के उद्धरणों में आई हुई न मैना की सौत है, और न उसको लेकर भागने की कोई कथा है, न यह है कि मैना के पति ने उसका श्रृंगार (सुहाग) छीन लिया है और उसको छोड़ कर गया है, अथवा उसने किसी प्रकार का अन्याय मैना के साथ किया है, जिसके लिए उसे किसी प्रकार की शिकायत हो सकती है, और न यह है कि वह मैना से किसी प्रकार के त्याग की अपेक्षा करता है, जिसको दृष्टि में रखते हुए मैना पति को अपना सिर भी देने के लिए तत्परता दिखा सकती है। इस कथांश में तो उसका पति जाति का महाजन (व्यापारी) है ही, और अन्य व्यापारी परदेश जा रहे हैं, इसलिए उनके साथ वह भी धनार्जन के लिए जा रहा है। फिर वह मैना से पूछ कर जाता है, यों ही उसे छोड़कर नहीं भागता है, और उससे मंदिर में 'मौजाँ' करने और [भावी मौजों की] मोटी आशा बाँध रखने का आग्रह करता हुआ जाता है।

इस प्रकार के कोई अन्तर्विरोध स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) में नहीं मिलते हैं। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र पाठ में इस प्रकार का कोई कथारंभ भी नहीं मिलता है। उसमें तो कथा ही यहाँ से प्रारंभ होती है कि सातन कुमार ने [पति द्वारा प्राय: परित्यक्ता] मैना को वश में करने के लिए रतना मालिन को दूती बना कर उसके पास भेजा। ऊपर दिए हुए उद्धरणों में आए हुए तत्त्वों के साथ इस प्रकार का प्रारंभ ही यह स्पष्ट संकेत करता है कि स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) वास्तव में स्वतंत्र रचना नहीं है, वरन् वह लोर और चांद की प्रेम कथा का एक परवर्ती विस्तार मात्र है, जो पहले उसी में किया गया था और पीछे उससे अलग भी कर लिया गया, और इसी समय उसके प्रारंभ में वंदनादि की कुछ पंक्तियाँ भी रख दी गईं।

उपर्युक्त परिणामों की पुष्टि 'मैना-सत' की छंद-व्यवस्था से भी होती है। 'लोरचंदा' पाठ में 'मैना-सत' प्रसंग के जो कडवक हैं, उनमें चौपाई की प्रति पाँच अर्द्धालियों पर एक दोहा और एक सोरठा हैं। स्वतंत्र पाठ (नाहटा संकरण) की एक प्रति में इसका प्राय: पूर्णरूपेण निर्वाह हुआ है, और शेष प्रतियों में भी बहुत कम उल्लंघन हुआ है; 'मधुमालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में यह व्यवस्था सर्वथा समाप्त हो गई है, और सच पूछिए तो उसमें कोई दूसरी छंद-व्यवस्था भी नहीं है।

परिणामत: यह प्रकट है कि 'मैनासत' पहले 'लोर कहा' के एक प्रसंग के रूप में रचा गया था, जिसका प्राचीनतम रूप उसके 'लोरकहा' पाठ में मिलता है, उसके बाद किसी समय इस प्रसंग को अलग कर स्वतंत्र रचना के रूप में प्रकाशित किया गया, और कदाचित् इसी समय उसमें वंदनादि की पंक्तियाँ भी रख दी गईं। पीछे इस स्वतंत्र पाठ में बरनापुरी के महाजन की परदेश-यात्रा की कल्पना की गई, जो कि 'मधुमालती' पाठ की कुछ प्रतियों में ही मिलती है, और इसके भी पीछे उसके

परदीप यात्रा से वापस लौटने की कल्पना की गई जो कि अभी तक भी 'मधुमालती' पाठ की केवल एक प्रति में मिलती है ।

दूसरे प्रश्न का उत्तर सुगम है । 'लोरकहा' का रचयिता 'दाऊद' है जिस की छाप उसमें स्पष्ट रूप से आई है; 'साधन' की छाप 'लोरकहा' में एक स्थान पर भी नहीं मिलती है, केवल उसके 'मैनासत' प्रसंग के कडवकों में 'साधन' की छाप मिलती है, 'मैना सत' के स्वतंत्र पाठ (नाहटा संस्करण) और उसके 'मधु मालती' पाठ (द्विवेदी संस्करण) में 'साधन' की छाप मिलती है और कोई दूसरी छाप नहीं मिलती है, इसलिए 'मैना सत' का रचयिता निश्चय ही साधन है ।

यहाँ यह शंका उठाई जा सकती है कि दाऊद की रचना में साधन कैसे पहुँच गए । किन्तु यह उस युग की एक सामान्य प्रवृत्ति थी कि पूर्ववर्ती रचनाओं में पीछे आने वाले कवि अपनी छाप देकर परिवर्धन-संशोधन करते थे; उदाहरणार्थ पूर्व प्राप्त आनंदधर के 'माधवानलाख्यान'[८] तथा कल्लोल (?) के 'ढोलामारू'[९] काव्य में कुशल लाभ ने चउपइयाँ मिलाईं, चतुर्भुज दास निगम की 'मधुमालती' में माधव शर्मा ने स्वरचित अंश मिलाए,[१०] नारायण दास की 'छिताई वार्ता' में पहले रत्न- रंग और पीछे देवचंद ने परिवर्धन किया ।[११] दौलत काजी तथा आलाओल का बंगला काव्य 'लोर-चंद्रानी' तथा गवासी की दखिनी मसनवी 'किस्सा मैना संतवती' 'लोरकहा' के साधन के द्वारा परिवर्धित-संशोधित इसी पाठ पर आधारित हैं । 'लोर कहा' पाठ में साधन ने और कितना परिवर्धन-संशोधन किया, अभी नहीं कहा जा सकता है । किन्तु बंबई वाली प्रतिके अतिरिक्त 'लोरकहा' की कदाचित् सभी प्रतियाँ साधन के इस परिवर्धन-संशोधन से मुक्त हैं, यह प्रसन्नता की बात है ।

---

८. दे० 'माधवानल काम कंदला प्रबंध' (गायकवाड ओरिएंटल सीरीज़) बड़ौदा ।

९. दे० 'ढोला मारूरा दूहा', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१०. प्रस्तुत लेखक लिखित 'चतुर्भुज दास की मधुमालती का रचना काल', कल्पना, सितम्बर, १९५४, पृ० १९ ।

११. प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित 'छिताई वार्ता' (ना० प्र० स०), प्रस्तावना ।

श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव

श्रीधर का 'पारीछत-रायसा'

दतिया-नरेश महाराज पारीछत महाराजा शत्रुजीत के सुपुत्र थे। महाराज पारीछत ने सन् १८०१ में गद्दी पर आसीन होकर मराठों से राज्य के भू-भाग को वापिस पाने का एक शक्तिशाली प्रयास किया। भाँडेर को वापिस लेने में वे सफल भी हुए।

उन्होंने चिरगाँव के पास वेत्रवती पर एक बड़ा बाँध बनवाया, जो आज भी 'पारीछा बाँध' के नाम से प्रसिद्ध है। इस बाँध से दतिया राज्य के तत्कालीन विस्तार का अनुमान किया जा सकता है।

सन् १८०४ में महाराज पारीछत को यह सूचना मिली कि बुन्देलखंड के ए-जी-जी कैप्टेन बेली निकट ही दौरा कर रहे हैं। अतः राजा पारीछत ने नदीगाँव जाकर उनसे भेंट की, और १५ मार्च, १८०४ को कुंजनघाट नामक स्थान पर दतिया राज्य और ब्रिटिश सरकार के बीच सन्धि स्थापित हुई। ध्यान रहे, बुंदेलों और अंग्रेजों का यह प्रथम सम्पर्क था।

३१ जुलाई, १८१८ को कालिंजर में राजा पारीछत की ओर से उनके वकील राव शिवप्रसाद और ब्रिटिश सरकार की ओर से जान वाकिफ़ साहब के बीच एक दूसरा संधि-पत्र लिखा गया जिसके अनुसार शान्ति-स्थापना के लिये किये गये दतिया के प्रयत्न सराहनीय थे। पुरस्कार-स्वरूप सिन्ध के पूर्व में 'चौरासी इलाका' नामक प्रदेश जिसमें इन्दरगढ़ भी सम्मिलित है, दतिया राज्य को प्राप्त हुआ। इस प्रकार 'सहायक सन्धि' के उपर्युक्त दो संधि-पत्रों ने दतिया राज्य के क्षेत्रफल को ९११ वर्ग मील में सीमित कर दिया।

राजा पारीछत का समय अंग्रेजों से सम्पर्क का समय था। उन्होंने भरतपुर के घेरे और पिंडारियों के युद्ध में ब्रिटिश सरकार की अच्छी सहायता की। सन् १८१८ में लार्ड हैस्टिंग्स दतिया आये, और १८२४ में राजा पारीछत ने लार्ड एम्हर्स्ट से कानपुर में भेंट की। सन १८२५ में लार्ड कौम्बरमेर के सम्मान में दतिया में एक वृहत् दरबार का आयोजन किया गया। सन १८२९ में राजा पारीछत कैथा में विलियम बैंन्टिक के दरबार में सम्मिलित हुए।

दिसम्बर, १८३५ में कर्नल स्लीमान ने दतिया की यात्रा की। उन्होंने राज्य का सुन्दर वर्णन किया है। राजा पारीछत उस समय ६५ वर्ष के थे, और उनकी एक टाँग में बारह वर्ष से गठिया ने आधिपत्य जमा रखा था, तथापि वे स्वस्थ और प्रसन्नचित्त देखे गये थे। कर्नल स्लीमान ने किले में फलों से लदे हुए उद्यान और एक तोप की विशेष सराहना की है। इन्हीं राजा पारीछत के समय में नगर का परकोटा बनवाया गया।

राजा पारीछत का देहान्त सन १८३६ में सत्तर वर्ष की अवस्था में हुआ।

पारीछत की प्रशंसा में पद्माकर का एक छन्द देखने योग्य है :—

"जप तप कै चुको सु लै चुको सकल सिद्धि,
　　दै चुको चुनौती चित्त-चिन्तन के नाम कों।
कहै 'पदमाकर' महेश मुख जोय चुको,
　　ढोय चुको सुखद सुमेर अभिराम कों।।

भूपमनि पारीछत राउरो सुजस गाय,
　　ल्याय चुको इंदिरा उमँगि निज धाम कों।
ध्याय चुको धनद कमाय चुको कामतरु,
　　पाय चुको पारस रिझाय चुको राम कों।।"

ऐसे प्रतापी नरेश के विषय में हमें दो रासो-ग्रंथ प्राप्त हुए हैं—इनमें से एक तो बाघाइट कौ रायसौ' के नाम से कुछ छोटा ही है, और दूसरा यह 'पारीछत-रायसा', श्रीधर कवि की रचना है। 'बाघाइट का रायसा' कुछ थोड़ीसी गद्य की बानगी के कारण महत्त्वपूर्ण है। हम इस रासो को "विन्ध्य-शिक्षा", रीवा में प्रकाशित कर चुके हैं।

श्रीधर के इस 'पारीछत-रायसा' में नरेश के सम्पूर्ण शासन-काल का चित्र तो नहीं है—उनके शासन-काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना बाघाइट का घेरा—कुछ विस्तार से वर्णित हुई है। बिजौर-बाघाट का ऐतिहासिक महत्व विद्वानों की शोध का विषय होना चाहिये। यहाँ पर द्रोणाचार्य की गुफाएँ बताई जाती हैं।

बुन्देलखंड के इतिहास में रासो द्वारा उल्लिखित बाघाइट के घेरे का भी अपना महत्त्व है। ओड़छा राजवंश से एक शाखा के रूप में जन्म पाने वाला दतिया राज्य सदैव मित्रवत् व्यवहार करता रहा, किन्तु यह प्रथम अवसर था, जब दतिया और ओड़छा के दो राज्य एक जागीरदार की थोड़ी-सी हठ के कारण परस्पर टक्कर लेने को बाध्य हुए।

शोध के विद्यार्थियों के लाभार्थ हम यह रासो भी अपने मूल रूप में सम्पादित कर रहे हैं—इस आशा से कि यह आगे कभी विस्तृत चर्चा के लिये पथ प्रशस्त करे।

पारीछत-रायसा

श्री गणेशाय नमः

अथ श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राव राजा पारीछत को राईसो लिष्यते ।

छप्पय

लंबोदर गज वदन कोकनद चरन विराजय ।
गवर नंद सुषकंद करन जन को सुष साजय ।।
एक दंत ससि भाल नमो निस्चर कुल घालक ।
संकट हरन हमेस सरन श्रीधर कवि पालक ।।
नमो देव गन नाथ तुव नाम लेत नासै विपति ।
महराज परीछत की, सुजस वरन कहो दीजे सुमति ।।१।।

दोहा

श्री गनेस गंगा गिरा गिरिजा पति धर ध्यान ।
पारीछत महराज को श्रीधर सुजस बषान ।।२।।
बाघाइट गंध्रप बसत नगर वेरछावार ।
हौनहार जो होत है घेरौ कुमति अपार ।।३।।
पाती लिषी पमार ने दीनी धावन हाथ ।
देहु दिमान गनेस कर सुन लैहै नर नाथ ।।४।।
पाती वह महइंद्र को लै गनेस सुनवाइ ।
धरा तरीचर की सुग्रब लीजै सकल छिड़ाइ ।।५।।

छप्पय

सुन सलाह महइंद्र बात तुम नै कह भाखिय, ।
सत्रुजीत महाराज राज संग्या यह राखिय ।।
प्रथम लिषौ गंध्रप पास मध्यनषां आयौ ।
कीनौ नहिं मंजूर महा बुधवंत कहायौ ।।
सो विचार दूजौ समझ कुंवर गम्हीरन मन धरिय ।
कीजै सलाह तुम चार मत जो उत्तम सोई करिय ।।६।।

सोरठा

सुन महेन्द्र के बैन धंधेरौ बोलौ सुफिर ।
देउ पमारन सैन आप न रहिये बाहिर ।।७।।

दोहा

मैं लिष हौं सब ठौर कौं करै पमारन साथ ।
हौं कुठार अठजार तैं करौं दाव नर नाथ ।।८।।

छप्पय

सुन गनेश के बैन कहत महिइंद्र सुनौ अब ।
दतिया पति महराज करी मम पुस्त सर्दा सब ।।
नृप उदोत के संग राम नृप कीन निकाई ।
दष्षिन सैन समूह मार तेगन विचलाई ।।
हटे सिंघ नृप कौ सुफिर सत्रु जीत गढ़ लै दियव ।
रज राज-तिलक महराज ने हमकौ यह उनही कियव ।।६।।

दोहा

सुन गनेस बोलौ सुफिर; नृपति मान यह बात ।
जो करनी उनने करी, निबही तिनके सात ।।१०।।

दोहा

सुन दिमान महिइंद्र यह उत्तम मत है नांह ।
जो मति आंगे वरपरै, तैसी करौ सलाह ।।११।।

छप्पय

कहत फेर नरनाथ साथ भष्षन षां दीनौ ।
बुधबल धरा छिडाहि जेर भ्याइद कह कीनौ ।।
आंन फेर मम अवनिराज की रिंघ चलाई ।
गंध्रप सिंघ सलाह मनै ताके नहिं आइ ।।
गढ़ छिड़ाइ गम्हीर बहु दंड अदंडन पै लियौ ।
बुधवंत मंत्र जालिम प्रबल जहँ सलाह चित ना दियौ ।।१२।।

दोहा

यह कह कै विक्रम नृपति, रहे फेर धर मौन ।
धँधेरी बोलौ वचन, अब दतिया मैं कौन ।।१३।।

छंद

यही बात नरनाथ सुनिकै अनैसी ।
भई वीर धँधेर तुव बुध्घ कैसी ।।
महाबीर बीरादि दतिया नरिंदं ।
धरै हिद भुज भार सत्रु जीतनंदं ।।
अगंवांन अंमान दिमांन जाकै, ।
मुषंमंत्र सिकदार धनंसिघ ताकै ।।
सकल सूर सामंत बलवंत सौहै ।

जुरै सम्ह समुहाइ सो सूर को है ।।
महां दष्षिनी दलन कौं दपट मारै ।
वही सिंघ सरतान श्रौनित्त धारै ।।
सहस साठ असवार सैं तीन तोपैं ।
प्यादेइकं लष्ष चहुं वोर कोपैं ।।
भये संग भाऊ पमारं रुजट्ठं ।
भयौ जुझ्झरन सेन जुरकै सुठट्ठं ।।
नवं मास गढ़ कंन्हरं जंग मांचौ ।
तहां हरषि हर सिंघ संकर सुनाचौ ।।
गढं मध्यि राजं परीछत सोहै ।
धरै वांन दलपत्ति की सीस जोहै ।।
करी इंग लायै च पाती पठाई ।
सुकरंम जितवार के पास आई ।।
धरा लाभ कूरंम गढ़ त सुकड्डौ ।
महाराज के सुभट मन मोद बड्डौ ।।
सहस आठ सेना सुकुटवाइ अंबू ।
गयौ भाज कै इंगला फ़ौज संबू ।।
जयं यत्र पारीछतं भूप पाई ।
सुकीरत्त जिनकी सकल भुंम छाई ।।
सुई राज पारीछतं सूर सोहै ।
सु तुम कहत धंधेर दतिया सु कोहै ।।१४।।

दोहा

तब गनेस यह बात सुन करी अरज करजोर ।
महाराज अब देषिये मेरी मत की तौर ।।१५।।
हौनहार बस हो गए विक्रम नृप बुधवंत ।
जो करतव्य लिषौ विधि तेसेहु ठहरौ मंत ।।१६।।
लिषे गडोइन को करे धामन दीनें हाथ ।
गंध्रप को लिष भेज यह हम करहै सब साथ ।।१७।।
गंध्रप सिंघ पमार कै वसी कुमति उर आइ ।
गांउ एक महाराज कौ दीनौ आग लगाइ ।।१८।।
गई तरीचर षवर यह पुतरी वेरौ जार ।
लल्ला दौवा नृपत को लिषी अरज तिहि वार ।।१९।।
पहर तीन मैं आइ चर नगर दलीप सुथान ।
पारीछत पंचम दिपति जहां भानुकुल मान ।।२०।।
जो अरजी नृप कर दई जोरे चर कर दोइ ।
लल्ला दौवा अरज कर मरजी हरबर होइ ।।२१।।

सुनत षबर मन क्रुद्ध कर फरक उठे भुज दंड ।
महावीर बुंदेल बर सार धार बलवंड ।।२२।।

सोरठा

विहँस कहौ नरनाह सकल हजूरी बोल कै ।
भई समर की चाह गंध्रप कौ किहि के कहै ।।२३।।

दोहा

कलमदान मंगवाइ कै, रुक्का दसकत षास ।
लिष भेजौ महराज नैं, श्री दिमान के पास ।।२४।।

सोरठा

करी पगारन घूम पुतरी षेरौ जार दिय ।
गंध्रप के मन ऊंम यह सलाह कछु और है ।।२५।।
उत्तिम होइ सलाह देस काल सब समझ कै ।
सो लिषियौ ठहराइ तुम त्रिकाल दरसी सुबुध ।।२६।।

छप्पय

लै कागद चर चलव गयव पंचम अमान पर ।
कंन्हरगड् सुभथांन जांन पहुँचौ सुनै-न हर ।।
दीनौ रुक्का षास धराथंभन दिमान कर ।
सुनत षबर सिकदार तहाँ आए पारासर ।।
बोले दिमान सिकदार सौ श्री हजूर लिषयौ जही ।
गंध्रप पमार सह पाइ कछु धरा तरीचर की दही ।।२७।।

पंचम प्रवल दिमांन फेर बोली वर वानी ।
जो गंध्रप मन बसी बात सो सब हम जानी ।।
खबर देर मत करहु तुरत सु नकीब बुलावहु ।
लिखे बरन कर देउ सकल समुहाइन ल्यावहु ।।
अर्जी हजूर कौ बरन दै मुष अरजी एसौ कहिय ।
आपुन सेन बुलवाइबौ हम हरवर आवत सहिय ।।२८।।

कवित्त

बरन सुनाई धरा जारी तरीचर की, गंध्रप पमार कछु भरै अभिमान के ।
सकल गडोई सूर सामिल भये हैं आइ माड़ै जंग पंचम सौ करत बषान के ।।
सुनकै षबर वीर बलकन लागौ अंग स्वाँस पंन सदांहू रषैया है प्रमान के ।
पंचम प्रचंड रोस झलकन लागौ नैन फरकन लागे भुजदंड ये अमान के ।।२९।।

दोहा

कह दिमान सिकदार सौं करत कहा अब देर ।
बोल तबै बनलिख नै मुनसी लीनैं टेर ।।३०।।

सोरठा

दीनै कागद हाथ, लै धामन चहु दिसि गये ।
कही चरन यह गाथ, श्री दिवान बोले तुमै ।।३१।।

करी चलन की साज, कूरम कुल जिन वार सुव ।
आवत हैं महराज, चरन आइ विनती करी ।।३२।।

छप्पय

करी अरज सिकदार, सुनहु पंचम दिवान अवि ।
सुभट सूर सामंत देहु मम सैन संग सवि ।।
पकर लैउ गंधर्प जाइ बाघाइट जारहु ।
सकल गयोड़ोन दंड धरा सब की सुउजारहु ।।
आन फेर नरनाथ की करहु सत्रु सब काल वस ।
महराज हुकुम आपुन हुकुम कर दीजै मंडौ सुजस ।।३३।।

सोंरठा

सुन दिवान यह बात, कहत फेर सिकदार सौं ।
में दैहौं दल सात, नृपति पास चलिये सु अब ।।३४।।

छंद भुजंगी

तबै बोल सिकदार लल्लू सुलीनौ ।
तिआरी करौ फौज में हुक्म दीनौ ।।
गयौ है नकीबं जहाँ सूर भारे ।
सकल सूर सामंत तुम होउ त्यारे ।।
भयें त्यार तत्काल सब वीर मनके ।
सदां काज धारे रहे स्वामिपन के ।।
पहर जिरह वष्तरनि अरु जिरह जूती ।
जिरह पोस चिल्ता सुझिल्में अकूती ।।
लसैं बांह दस्तान मस्तान भारे ।
इकै चार आंनी सुपहिरैं निहारें ।।
इकै जोग पोसं सिरं टोप दीनै ।
हकै बाघनष घंसो पहिर लीनै ।।
इकै बांध पेटी सुहाली सुफैटं ।
सदा सत्रु के प्रान कौ लेत ऐंठं ।।
घूघई दीय नाक चूना सू एकं ।
लसै षलन के दलन कौ मेकं ।।
विविध आउघं सूरवानै सजे हैं ।
महा भीम रूपं रनं जे जगे हैं ।।

पहिर सूथना डल्लरी डार कांधे ।
कसै कंमरं ग्रस्स वडमोलबांधे ।।
ग्रलेंमानि ग्रंगरेज सैभं सुषासं ।
मगरबी जुनव्वी लसै एक पासं ।।
वरद वांन गुजरांत है गौर साही ।
दुधारे सरस वन्दरी गुप्त गाही ।।
सिरोही सु ऊना षुरासांन हू के ।
जुरत जंगषल षोम को कर दू टूके ।।
घनं सूर साही इकै वीर वांधै ।
लिए वाँध कट्टार धर सैल्ह कांधैं ।।
इकै जमधरं षंजरं हथ्थ नेजे ।
सदा सत्रु के प्रान को करहि वेजे ।।
इकै गुर्ज कूर सादमां नक्क हथ्थं ।
चड़े वीर हय राज पैरन समथ्थं ।।
कटं वंध पटुका तुनीरं सुधारै ।
करै सिंघनी सो-भ सांगे सम्हारै ।।
इही भांत महराज के सूर सज्जे ।
मनो भींम भारथ्थ पारथ्थ गज्जै ।।३५।।

सोरठा

चडे सूर हय राज ऐराकी ग्ररबी कछी ।
ताजा तुरकी साज जे लीनै वड्मोल के ।।३६।।
महा जंत्र विकराल लीनै संग ग्रमान नै ।
ग्ररि दल गंजन काल सालत जे सत्रन सदा ।।३७।।
पैदर पथिक ग्रनेक कर तुपके कुलहा दियै ।
कीनै नटवर मेक पहरैं काछा जांघिया ।।३८।।

दोहा

सुतरनाल सुतरन धरी जंजालै धर कन्ध ।
वानदार बानन लियै चले सुवानै बंध ।।३९।।

सोरठा

सजे मस्त गजराज पीलवान ग्रति विविध विधि ।
जरकस झूलन साज ग्रंमारी रतनन जटित ।।४०।।

दोहा

सिरी चोर गज ढालपै कंचन फूल ग्रनूप ।
रवि ससि सन गुर सो भजै उपमा लगत ग्रनूप ।।४१।।

घंटघोर धुनि ह्वै रही, सुन्दर सीसन धार ।
मानौ छन मिल बैठ कै विज्जुल करत विहार ।।४२।।
मलै वारियुनि षेत के अरु सेलानी जान ।
घना सिरी धरि नेत सिर घर कछार के मान ।।४३।।

सोरठा

एकै आछी वार एकै गाहीषेत कै ।
श्री धर कहै विचार एकै टियुरा टामकै ।।४४।।

कवित्त

बद्दल तें जोर केठे मुष तै निनाद घोर चाहत करै जे दिग दतन टक्करै ।
उदित उमंग अंग जंग मैं अभंग रहे आन पीलवान को न मानै लोह लक्करै ।।
'श्रीधर' भनत पील पंचम परीछत के देव कै चलावत इरापत पै छक्करै ।
सद्द मदमत्त जोम जकरै जंजीरन सौं पक्करै विमान व्योम अक्करैं न धक्करैं ।।४५।।
जकरे जंजीरन सौ टक्कर टिकैत लौह लक्करैं न मानें वीर महा अनियारे हैं ।
भारे अढगढन पछारे अधि ऊरध लौ कलके पगारे दिगं दंत जो भरे हैं ।।
'श्रीधर' भनत हेम-साजन सम्हारे चुर्येमद के पनारे है सदमत वारे हैं ।
कज्जल ते कारे मेरु मंदर लौ डील बारे धीरनंद पंचम अमान के दतारे हैं ।।४६।।

सोरठा

पंचम प्रबल अमान मौती गज मगवाइ कै ।
चढ़ौ वीर बलवान साषन साष जुझार अति ।।४७।।
पारासर सिकदार चढ़ौ वीर सुषपालकी ।
छुट्टन मुनसी त्यार फी हय राज चढ़ि ।।४८।।
बाजत तबल निसान सहनाइन धुनि ह्वै रही ।
मनौ चढौ मघवान दलन भारथ हर धरन ।।४९।।
सैंजै वीर बुन्देल अति रेटा वारे सबै ।
मलियापुर रन झेल सजे धँधेरे वीर बल ।।५०।।

छंद त्रभंगी

सज्जे पमारं सँगु आवारं अनी अन्यारं बीर बली ।
सज्जे पडहारं सूर जुझारं धर भुज भारं रन अदली ।।
सैंगरवडजोटं लरैं अगोठं जै अरकोटं कूद चढ़ै ।
किसुनातिल वीरं जुघ्घ गभीरं बढमुष नीरं सौ मढै ।।
पन्नी बढ़ जंगी सूर अभंगी समसर संगीकौन केरे ।
हैं खरस सिपाही तीनों भाई स्वामित चाई चित्त धरै ।।
बुन्देल अमानं प्रबल दिमानं ज्यों हनुमानं स्वामिपनैं ।
चढ्ढौ गजराजं ज्यों सुर राजं संग समाजं सूर घनैं ।।५१।।

दोहा

सजै वीर बुन्देल वर सरस सल्हैयावार ।
हीरा सिंघ सजो प्रबल जालिम धार पमार ।।५२।।
सजै टढ़ैया सुरसव पाइक सज्ज गभीर ।
नागिल नौतेले, सजैं दौग्रा सज रन धीर ।।५३।।
गोर इँदुरषी के सजे एरमजमहां वार ।
फत्तेपुर के सुभट सब सज ग्राये ग्रलगार ।।५४।।
साज सुभट वंकट चले श्री दिमान के संग ।
कन्हरगढ़ ते कूच कर धीर नंद बजरंग ।।५५।।

कवित्त

कंपत धरन चल दलन के पातन लौ चंपत फनाली फन होत पसेमान हैं ।
कूरम कराहै कोल डाढ़ भार डोर देत दिग्गज चिकारैं करै दसहू दिसान है ।।
धूर पुर ग्रंबर पहारन की चूर होत सूरज की जोत लगै चंद के समान है ।
कासी सुर पंचम ग्रमान स्वाम् कारज को साज दल चलौ वीर प्रबल दिमान है ।।५६।।

दोहा

ग्ररजी ग्राइ दिमांन की चरन दई प्रतिहार ।
वांच ग्ररज मनमें विहँस यौं बोलौ नरनाथ ।।५७।।
लल्ला सो नृप हुकुम करि लिषी करो सब ठौर ।
जे चाकर सरकार में ते ग्रावैं सब ग्रोर ।।५८।।
तब लल्ला गंनेस नै धाउन लीनै टेर ।
दिये लिष सब ठौर को करौ न मग में देर ।।५९।।
धाउन लै चहु दिस गये ग्राये सुभट समूह ।
दतिया पति के दल जुरत भई षलन कै कूह ।।६०।।

छप्पय

बुंदेले विरदेत ग्राइ बड़ौनीय वारे ।
विजै बहादुर संग सकल बांधव ग्रनियारे ।।
सिंघ दिमान दलीप नंद भोपाल सिंघ तहं ।
चित्तर सिंघ दिमान कुँवर विसुन तलसत जहं ।।
ग्रसवार साठ ठाकुर सबै तुपक पंचसै उन्नकर ।
मेले जु पठाई ग्राइकै नृपत हुकुम सब सीस धर ।।६१।।

दोहा

जिगनै ग्ररु नौनेर के ग्रवर उदुगुवां दार ।
भाऊ की फौजैं लगीं ग्रटके तहां पमार ।।६२।।
नगद उदुगुवां सो लरत भाऊ दल चतुरंग ।
हुकुम मुसाहब को भयौ गऐ सु भाऊ संग ।।६३।।

सोरठा

कछू सैन कर साथ तोप एक तापै करी ।
हुकुम दियौ नरनाथ भाऊ की करीयौ तरफ ।।६४।।

दोहा

या विधि सकल पमार ते रहै आपनै ठौर ।
भाऊ तरफ मुसाव कौ नृपति पठाये और ।।६५।।
ककरवडीतै राउजू लै दूलाजू संग ।
तुपक दार सै तीन लै सौ सवार अनभंग ।।६६।।

छंद भुजंगी

बुँदेला वली वीर व्यौना सु वारे ।
सवै आइयौ सज्ज सूरं अनियारे ।।
सजे सूर वीरं पिरौनै घनी के ।
महा जंग जोधा बड़े जै मनी के ।।
सजौ प्रवल पंमार परवत्त सिंघं ।
विलारीधनी जो अनी कौसौसिंघं ।।
सजै वीर पंमार सुवरा सु वारे ।
सदा साष साषांन तैजे अनियारे ।।
महावीर वंक जुघ्घं रिघं ।
अरज्जुन रूपं अरज्जुन सिंघं ।।
तिनं नंदवर वंध सब सूर सज्जे ।
सदा भीम रूपं रनं मांझ गज्जे ।।
हरी सिंघ मदनेस नरमस्त दोऊ ।
सजे है सलईया घनी वीर सोऊ ।।
बुडेरे घनी सजे है जिवारं ।
सजौ वीर अनुरुध्ध वंका अलां ।।
सजे है तिवारी घवारी सुगोलं ।
सवै स्वांम काजी अनी जे अमोलं ।।
सजे चाहुंवानं हुयै संग लीजै ।
सजे सावथं सिंघ सौ अर्दली जे ।।
विरुद् बाँकुरा वीर बाके सुवंगरा ।
मनी सीस बांधैं अनी होत अंगरा ।।६७।।

छंद

कैरुआ वार पंमार आइ, ते दऐ पठाई पै मिलाइ,
पंमार उगौरहवार वीर, तिनके जु सजे सब सुभट धीर ।
धंधर कुमरांबार सेर रन मांझ सत्रु कौ करहिं जेर ।।

जँह डाभरौन कहिए जुथांन सब सजे तिहईयाबल दिमान ।
चौका सु आर घंघेर वीर ते जंग रंग मैं अल गम्हीर ।।
सज्जे सुविल्हारीपतिय मार बुंदेल सजे बकुआंसुवार ।
साजौ सु बुदेला चंद्रहंस जे देव करन कुल हंस बंस ।।
सोवाल बंसवै अति प्रचंड दष्षिनी दलन सौ रार मंड ।
जूझौ धंधेर म्याजू प्रचंड हीरा सिंघ रन सत्रु षंड ।।
रघुनाथ राउ दल झरौ सार तह आपुन गिर रन वे सम्हार ।
तरवार तुपक सँ तीजु षाइ सामुहें घात्रइ सांथिन उठाइ ।।
साजँ मडरहा अति प्रचंड रन मांझ षलन कौं करत षंड ।
सैयद सजे सफजंग जोर सबसेख सजे जे रन अमीर ।।
साजे पठान रुहलान मीर किसुनातिल पाइक सज गम्हीर ।
पिपरैआ करछुल और गोल श्रीधर दुबंध लोधा अमोल ।।६८।।

दोहा

चार हजार चमू सरस मेल ताल की पार ।
कहौं कहा तिन की सिपित महां जंग जितवार ।।६९।।
इन्दर गड मुक्कांम कर सिंघ अमान दिमान ।
राजघ्घर जहं सिंघ जू मुजरा कीनौ आन ।।७०।।
आपुन गड़ भीतर रहे बाहिर चूम मिलाइ ।
राजध्धर सौ हुकुम कर सूरन त्यार कराइ ।।७१।।
होत भोर पंचम प्रबल पहुंचे नग्र दलीप ।
सुनत षबर हरबर लिये आगे होइ महीप ।।७२।।
महाराज गऐ राजगड़ गऐ सुकिले दिमांन ।
सुरइन को फौजै पठै तिहि ठा परे मिलान ।।७३।।
पहर तीसरे आईयौ फूलबाग नरनाह ।
श्री दिमान सिकदार सब बैठे करत सलाह ।।७४।।
उठी मसलहत राजगढ़ आपुन गयौ नरिंद ।
नृपगन मैं ऐसें दिपैं ज्यौ उडुगन में इंदु ।।७५।।
झांसी तैं नाना चले भाऊने पठवाइ ।
प्रतीहार नृप सों कही ताहि लियौ बुलवाइ ।।७६।।

सोरठा

कीनी नजर निगाह दस्त जोर विनती करी ।
भाऊ क सलाह महांराज कह भेजियौ ।।७७।।

दोहा

हुकुम दियौ नरनाथ ने तुम डेरन कौ जाउ ।
पहर तीसरे समझबी, जो भाऊ ठहराउ ।।७८।।

छप्पय

पहर तीसरे महाराज किल्ले को आये ।
श्री दिमान सिकदार तुरत नाना बुलवाये ।।
फूल बाग में बैठि करत मसलत चित चाही ।
नाना वह मत कहो जौन भाऊ ठहराई ।।
सब सेना त्यार कराइके डेरा करहु उनाउ बति ।
अति अधि बीच आइ लै टाइ हम यह सला कीजे नृपति ।।७९।।

दोहा

दंड पमारन लेइगे फौज आप लौटाय ।
नातर फौज समेत हम सामिल ह्वै है आय ।।८०।।

छंद भुजंगी

तबै क्रुद्ध अमान दिमान भाषै ।
कही बात तुमने सुनिह कौन साषै ।।
कितकि जोर पंमार पंनाह केती ।
रनं मांझ मन संक आवै न ऐती ।।
कुल छत्री या धर्म सुनिये कहे जू ।
रनै रांवने राम सम्है दहेजू ।।
करो कौरवा पांडवा जुध्ध भारो ।
जस हेत कोउ सूर टरहे न टारो ।।
धरो भार भुज दंड कासी कुडारं ।
पड्त भाट पर भुम लौ डा सुडारं ।।
भगवान वंसं विरदं पगारं ।
करी पीरी डालं सदां जैतवारं ।।
कहत आप दल वौलते लौट आवै ।
कुल छत्रीया धर्म मति जौन भावै ।।८१।।

दोहा

दस्त जोर नाना कहै सुन दिमान महराज ।
आप नृपति रहिये यहां दल पठवैये साज ।।८२।।

छप्पय

जलग एक चर आइ हाथ जोरै नृपाल ढिग ।
पठवाई महइंद फौज टैहरी नैसौरिग ।।
गढ़ कुढार कछु मैल अड़जाइ मिलाई ।
सकल गडोइन भीर सिमिट वाधाइट आई ।।
सुन के नृपाल बोले बिहस कछु अटक नहिं मन धरी ।
हमरै विचार कछू और है बै जैठे उत्तम करी ।।८४।।

दोहा

महेइंद्र सौं जौ कछ मनकर माने द्रोह ।
तो बाघाइट समर मैं हमरी फतै न होइ ॥८४॥
महेइंद्र महराज की मन क्रम भक्ति विचार ।
गंध्रप की भुजंबध कै बाघाइट कर छार ॥८५॥
घामन कहत नरिंद सौं महइंद दल जोर ।
बिहंस वदन नृप ने लषौ दछ्छ भुजा द्रग कोर ॥८६॥

कवित्त

साज चतुरंग जंग रंग को परीछत जू दछ्छिन भुजान ग्रोर हेरै द्रग कोर है ।
कंपत धरन डगमगत है हमसान दिग्गज चिकोरै भो अतंक लंक सोर है ॥
सबल भुग्राल ते 'निवल बालाबाल संग पाए बाल बनन भगानै जात भोर है' ।
षलन के षौम जौभ छीकै पर तपाइ ग्रचल चलाइ मान होत वरजोर हैं ॥८७॥

दोहा

श्री दिमान सो नृपत ने कहौ मंत्र को सार ।
भाऊ करी सलाह सो सोई मग पग धार ॥८८॥
होत सलाह न वरपरै मंत्र न चित ठहराइ ।
को समर्थ दलजोग है सो बाघाइट जाइ ॥८९॥

छंद तोटक

बुधवंत जो इमि होइ, त्रैकाल जानै सोइ ।
ग्रति तेज तउन प्रकास, मतवंत वंदउ जास ॥
ग्रनुथांन जिमि ग्रति गौर, रन मांझ भीम वतौर ।
हरचंद सत्त वषांन, सह सीसु विक्रम मान ॥
कहि जौग गौरिष रूप, सनकादि ध्यांन ग्रनूप ।
विग्यान कौ सुकदेव, ग्ररु भोग क्रस्न कहेव ॥
ग्रतिदान वान करन्न, भारथ्थ भीम वरन्न ।
जो स्वांमिपन बजरंग, सो जाइ दल के संग ॥
जो राजनीति विचार, जानै क्रिया ग्राचार ।
ग्रति साम दाम प्रवीन, ग्ररु दंड भेद न दीन ॥
वाँके जुगढ बाघाट, गंध्रप चमू जहँ ठाट ।
ग्रति ऊँच गिरवर लान, तापै जुदुर्ग वषांन ॥
चहुँ ग्रोर ग्रंगन कोट, लागे न तोपन चोट ।
सरिता कड़ी इक ग्रोर, जहँ पसर को नहिं जोर ॥
तापै सुप्रबल पमार, कुल धरै विक्रम भार ।
सूबा ग्रनेकन ग्राइ, तिननै न कछु वकराइ ॥

तापे गड़ोई सर्वं, सामिल भए धर गर्वं ।
सब पुस्त करै गनेस, कछु जान भेद नरेस ।।
जौ मत ठयौ कछु और, सोकरी मिल सब गौर ।
जो होइ बुभ बल सूर, रज राष आवै नूर ।।
जाके करौ दलसंग, जो जंग रंग अपंग ।
महेइंद्र भाऊ भूप, तापै न ठानै धूम ।।
बाघाट घेरहि जाइ, फिर देइ आग लगाइ ।
नृप आन फेरे जाइ, गंध्रप न देइ भगाइ ।।
जह सुनी भूप सलाह, तब्र करी मन में चाह ।
दाउजूय कौ पठवाइ सब सन देउ लगाइ ।।९०।।

दोहा

नृप दिमान सों यों कही यह लाइक है एक ।
पठवइऐ अब दाऊ जू करहै काम विसेक ।।९१।।
बंदोबस्त सब भांति कौ करहै समय विचार ।
अब विसेष जानी सु हम बाघाइट भई छार ।।९२।।
बड़े करी पसर यँरा पर बगमेल ।
बाल वेस घालौ तहां इन दिमान ने सेल ।।९३।।

छंद त्रोटक

फिर बोल वीर दिमान, वे स्वमि-काम सुजान ।
अमरासु अंग मन धार, अरि दलन को विच लाइ ।।
वरछी तहां इक घाल, यह करी वैसह बाल ।
मनियांन बड़े हजूर, तिन समभ कहि मल सूर ।।
ते करे दल मुषत्यार, यह जान सूर जुभार ।
इक तोप तावै कीन, तिनकौ महमसदीन ।।
फिर गयौ गढ् वषतेस, हम कही प्रबल नरेस ।
सिमराधनी मन ऐंठ, गढ़ में सुवे फिर बैठ ।।
तुम करहु उनको जैर, गठलेउ आपन फेर ।
तहं गये वीर दिमान, मन स्वांम कारज जान ।।९४।।

दोहा

दिये वरोदा ते तबै, सउवषत कौ काढ़ ।
आन फेर महाराज को, सुजस श्रवन में वाढ़ ।।९५।।

छंद तोटक

फिर के बड़े महराज, दलसंग दीयौ साज ।
तुम देलुआ को टार दो हरै टौर बहौर ।।

रघुनाथ रा दल ग्राम, सौ बेरछा लग धाम ।
तहं छिको प्रबल बुंदेल, ग्ररि का चमू भुज झेल ।।
कछु दिवस जहां लराइ, कढ़ कन्हरंग गढ़ जाइ ।
जहं ग्रापु हते महीप, तहं गे दिमान दलीप ।।
सोइ इंगला दल पेल, लीमै जु भुज बल झेल ।
नव मास जंग सुजौर, ग्रति परै तोपन झोर ।।
तुपकै सुवानन मार, तिनकी कछू ना समार ।
तहं लरौ स्वामित काज, थिरदेव करनी लाज ।।
सो देष कछुक ग्रगार, नृप नाथ चित्त विचार ।
मम वस्त भयौ या डौर, यह नयौ ग्रायो ठौर ।।
ह्वां राषिये बुधवंत, सो सूर ज्यों हनवंत ।
तब चित्त भूपत ग्रांन, यहि ठौर जोग दिमान ।।
यह हुकुम दिय महराज, तुम सादह्वाँ वां कौ काज ।
गढ़ तै रहौ हुसग्रार, यह जान मत कौ सार ।।
सोऊ दिमान दलीप, तजबीज भली महीप ।
यह कह दिमान ग्रमांन, वे सर्व भति मै जांन ।।९६।।

दोहा

यह कह न्रपति बुलाइयौ श्री दलपदिमान ।
स्वांमि काम कौ ज्यौ सदां रघुपति कै हनुमानं ।।९७।।
कहै दिमान दिमांन सौ सैन संग लै जाउ ।
सुम साइत कौ साध कै डेरा करौ उनाउ ।।९८।।
दियौ हुकुम महाराज ने करौ बघाइट छार ।
कुटुम सहित सब कुट्टियौ गंध्रप सिंघ पमार ।।९९।।
कर सलाम करजोर कर कहत दिमान दलीप ।
कछू ग्ररज मैं करत हौ सुनि लीजै सुमहीप ।।१००।।

छप्पय

बोलब तबहि दिमान हुकुम सोई ग्रब करहौ ।
लूट लेउ बाघाट बाँधि गंध्रप कौ धरहौ ।।
जो पनाह उन करह ताहि रन माझ विहंडौ ।
लैहु गढ़ोइन दंड सत्रु सब एक न छंडौ ।।
महराज प्रताप प्रचंड सौ ग्रत्र कौन सामे धरहि ।
मन कर्म धर्म स्वांमित भगति तौ एसब सांची परहि ।।१०१।।

सोरठा

वेदन कौ मत सार, तिनके मन मैं बसत है ।
सदा क्रिया ग्राचार, ग्रति पुनीत पंडित प्रबल ।।१०२।।

ते लीनै न्रप टेर, बुध्धसिंघ चारी करा ।
करत कहा अब देर, करहु जथा विधि वेद मग ॥१०३॥

दोहा

श्री दिमान यै दुजन पै करवायौ संकल्प ।
सुजस हेत ग्रह जोग तै दांन दियौ बहु अर्प ॥१०४॥

छप्पय

देव कर्न कुल करन अरन षंडन बलबंडन ।
सुजं भूर भुव भरन आन स्वांमित महि मंडन ॥
प्रबल वीर बुंदेल नृपति दीनै करयांनहि ।
ज्यौं लंका रघुराज पठै दीनौ हनुमानहि ॥
इमि चलत वीर भगवंत सुय करसलांम कर कदम छिय ।
जितवार जंग भुजदंड बल विमल वदन रन मोद जिय ॥१०५॥

दोहा

तब दिमान ने टैर कर, राउसाव दर आउ ।
ममहित जैयै डेउड़ी भुजरा कदम छिआउ ॥१०६॥
रावसाव गए डेउड़ी मुजरा अरज कराइ ।
महरानी हीराकुँवर दीनै पान पठाइ ॥१०७॥

दोहा

कर सलाम महाराज कौ दरवाजै में आइ ।
अवर वीर जै संग के मुजरा करियौ धाइ ॥१०८॥

छंद मोतीदांम

चलौ तब वीर दिमान दलीप, धरै भुज दंडन भार महीप ।
कहौ सुतहाँ गड़राज दुआर, तुरंग भगाइ भयौ असवार ॥
करी जब चंदर हंसलांम, भयौ सगबंधव स्वांमित कांम ।
बजी नवबद्द भई घनघोर, लजें षल षेम सुनें बह सोर ॥
तबै जू बुंदेलह बाहिर आइ, चमू चतुरंग सुत्यार कराइ ।
सजे जंह सूर भए सब संग, चले जनु अंगद औ बजरंग ॥१०९॥

दोहा

ढांकन जूत अचगरौ प्रथी सिंघ कौ नंद ।
चले लस्कनावार है, तास सुभट वरबंद ॥११०॥

कुंडरिया

वंका सूर समर्थ है, बावरषां रन मस्त ।
करी अर्ज महाराज सौ जोरे दौनौं हस्त ॥

जोरे दोनौ हस्त संग जैहौ दिमान के ।
नृपति हुकुम नहिं दियौ जान अतिमत प्रभान के ।।
सेष अलेषन एक सजे सब सुभट निसंका ।
पठयौ दल के संग नंद अबदुल्ला बंका ।।१११।।

दोहा

श्री दिमान भगवंत सुय हुकुम सीस पै मान ।
तिहि छिन नग्र दलीप तै कीनौ प्रथम पयान ।।११२।।
दल सिगार पर दलदलन षलषंडन बलबंड ।
स्वामि काम रातौ सदा देवकरन कुलमंड ।।११३।।
सिंह दिमान दलीप जब पहुँचौ जाहि उनाउ ।
तट पहूज डेरा पैरे तहाँ ब्रह्म सुर ठांउ ।।११४।।

छंद नराच

जहां दिमान मेलयौ मुकांम सो करै तबै ।
लसै उदंड सूरजे प्रचंड संग ते सबै ।।
कहूँ हिरन्न रोजयौ वराह भार लेत है ।
कहूँ षरान स्वार देष स्वांन छोड़ देत हैं ।।
दरबार बैठवै कहूं सुभट्ट भट्ट आवहीं ।
नकीब नाउ बोल कै सलांम सो करावही
कहूं बंदूष घालकै निसांन सो उड़ावहीं ।
कहूं कवित्त छंद वंद वीर सो पडावही ।।
कहूं सो स्वामिकाज की सलाह सोहि कंतकै ।
बुलाइ वीर तेग भीर सोध लेत मंत्र कै ।।
जही प्रवान श्री दिमान मेलियौ उनाउ पे ।
भरै उछाउ जंग कौ सु सूरवीरता उयै ।।११५।।

दोहा

आदेवार को प्रात ही गऐ वर्म के धाम ।
जिनके दरसन के करै पूजत है मन काम ।।११६।।
परस ब्रह्म परदक्षना दीनी प्रबल दिमान ।
जथा सक्त संकल्प कर दियौ दुजन को दान ।।११७।।
हाथ जोर अस्तुति करत तुम हौ अगुन अनूप ।
सफल करौ मन कामना जो चाहै मम भूप ।।११८।।

(स्तुति) छंद भुजंगी

तुही आदि ब्रह्मं निराकार जोतं ।
तुही तै सबै विश्व उत्पन्न होतं ।।

तुही विस्न ब्रह्मां तुहीं रुद्र जानौ ।
तुही तै प्रगट सर्व औतार मानौ ॥
तुही मछ्छ रुपं तुही कछ्छ धारौ ।
तुही प्रबल वाराह वेदन उधारौ ॥
तुही पर्स रामं तुही राम रूपं ।
तुही मार संग्राम लंकेश भूपं ॥
तुही वाउनें रूप बल को छलौहै ।
तुहीं होइ नरसिंघ षल कौ दलौ है ॥
तुहीं आन वसुदेव धर रूप धारौ ।
रहौ नंद घर जाइ कंसे पछारौ ॥
तुही है मुनीसं फनीसं गनेसं ।
तुही है धनेसं सुरेसं दिनेसं ॥
तुही बौध रूपं सरूपं सुधारै ।
कलं निहकलं षलं को विदारै ॥
तुही वेदवांनी तुही वेद व्यासं ।
तुही गंग रूपं धरै पापनासं ॥
तिथंवार नक्षत्र जोगं अजोगं ।
तुही कामधेनु तुही देव भोगं ॥
तुही गिरह-नौ नाथ नौऊ वषांनौ ।
तुहीं निध्धि नव सिध्धि सब बुध्धिमानी ॥
तुही भूम आगास पाताल देखौ ।
तुही तलातल अतल मैं तोह पेषौ ॥
तुहीं पौन पानी अगिन रूप तू है ।
तुही सर्व व्यापी अव्यासी सुत्' है ॥
तुहीं रोगकर्ता तुहीं रोग हर्ता ।
तुही थावरं जंगमं प्रान भर्ता ॥
तुही अगुन गुन गूढ को पार पावै ।
सदा देव दरदेव तोकौ जु ध्यावै ॥
तुहीं किन्नरं जक्ष गंधर्प जानौ ।
तुहीं नागनर भूत प्रेतं वखानों ॥
नहीं निगम निर्वेद के पार पावै ।
सदा सच्चिानंद तौकौ बतावै ॥
महाराज वरदांन मांगौ सुतोपै ।
करौ दीन बंधू दया कोर मोपै ॥
सदा भूप पारीक्षतं सेव चांहौ ।
तन स्वांम काजं रनं सत्रु गाहौ ॥

करी पैज नरनाथ सोई करीजें ।
वरदेव वरदांन सौं भ्राप दीजे ॥
सुनी ब्रंह्मदेवं मनं भक्ति जांनी ।
कडी मंदिरं तै इवंमस्तु वांनी ॥११९॥

दोहा

वरमदेव को परस कै डेरन गये दिमांन ।
भोजन कर बठे सबै जे है सूर सुजांन ॥१२०॥
कुँवर ईस्वरी सिंघ अरु चंद्र हंस कंमोद ।
'श्रीधर' झालाजीत सब बैठे करत विनोद ॥१२१॥
लल्ला जू दुज वेंद जहँ राजाराम समेत ।
लिषत कडौरे षर्च को चाकर कौं धन देत ॥१२२॥
इहि विधि प्रबल दिमान नित विचरत मेल उनाउ ।
रँगो एक रँग में सदा स्वामि काम को चाउ ॥१२३॥

छप्पय

पहर तीसरे सूर सकल दरवारै आवैं ।
जो जिम लाइक होइ उकस कर तै सौ पावै ॥
सांमथ सिंघ धँधेर कही सुनिजै दिमान अब ।
चलजै मोर सिकार सुमट संग सैन साज सब ॥
चौकीनवीस लल्लू सहित बोल दिमान सुयौं कहय ।
सब सुभट भोर तइयार गढ़ न्रसिंघपति त्यारहय ॥१२४॥

दोहा

कहत नकीव सुभट सब हूजो भोर तयार ।
सकल बड़ौनी वार सब इहाँ रहै हुसयार ॥१२५॥
कही नकीब बुलाइ कैं फौज कराइ त्यार ।
श्री दिमान भगवंत सुन षेलन चले सिकार ॥१२६॥

छप्पय

चलिव सिकार दिमान सैन सथ्थह चतुरंमह ।
मनहु प्रबल घन उमड़ चले सब एकहि संगह ॥
हय षुरथारन धूर पूर अंबर घर छाइय ।
परी षलन मंह कूह रूह अरि मुषन भगाइय ॥
डगमगान सब दुर्गपति ऐल फैल दस दिसि गयव ।
किहि देस कौंन अरि काल बस अवर कोप कायर दयव ॥१२७॥

दोहा

षेल सिकार दिमान तब आये फेरि उनाउ ।
सूर सुभट्टन को वड़त जंग रंग को चाउ ॥१२८॥

सोरठा

इन्दरगड के सूर आये वीर उनाउपै ।
जेहै षास हजूर मिरधा मोहन सिंघ संग ।।१२९।।
हुकुम करो नरनाथ श्री दिमान अम्मान सों ।
तोपैं लेकें साथ पारासर दल को पठै ।।१३०।।

छप्पय

श्री दिमान बलवान हुकुम लल्सा को दीनो ।
जुलफिकार बुलवाइ आइ मुजरा तिहि कीनो ।।
तोपें कर तइयार अबै बारूद अरावो ।
गोला सन सब समझ लेउ गाड़ीन धरावो ।।
बोले सु चौधरी टेर कैं लाइ बैल ज्वारे धरहु ।
तोपै जुताइ ततकाल सौ अवर देर कोउ जिन करहु ।।१३१।।
जुलफिकार तब गयव जाइ तोपें जुतवाई ।
महाराज ने फेर लियें सिकदार बुलाई ।।
जाउ दाउजू पास कहैं वे सो तुम कीजो ।
प्रात होत ततकाल सैन सब कूच करीजो ।।
यह कहि नृपाल सिकदार सौं श्री दिमान यौं ही कहिय ।
सिकदार सलाम तुरंत कर पुर उनाउ वट्टह गहिय ।।१३२।।
प्रबल उगोरावार पमार हीरासिंघ-नंदन ।
गंध्रपसींघ सुभट्ट अवर विक्रम रन-कंदन ।।
करी अरज दुव बंधु संग दल के हम जै हैं ।
करहु सत्रु सब जेर लुट्ट बाघाइट लैं है ।।
बोले नृपाल तिनसो बचन चलो आप हम जाँइ जंहँ ।
केतिक्क बात बाघाट गढ़ पठवइऐ तुम को सुतहँ ।।१३३।।

दोहा

यह सुन वचन हजूर कौं हुकुम मान दुहु वीर ।
आपुन रहे नृपाल ढिग, दल भेजे भट भीर ।।१३४।।
पारासर सिकदार जब पहुंचौ वीर उनाउ ।
दुज वंसी परबीन मत स्वांम कांम को चाउ ।।१३५।।

छप्पय

पारासर जब आइ परपौंचे दिमान के ।
बैठि इकंत सलाह करत दोउ मति प्रवीन के ।।
कर सलाह असवार होइ तोपन ढिग आये ।
तोपैं फेर जुताइ पहूजहैं पार धराये ।।

प्यादे सुतहाँ कछु राष कैं बदोबस्त चौकी सु सब ।
सिकदार दिमान सुजान है आपुन डेरा आइ तब ।।१३६।।

दोहा

ब्यारी कर दरबार मैं बैठे पहर प्रवांन ।
सूर सबै डेरन गये सोये तबै दिमान ।।१३७।।

सोरठा

भई नगारिन घोर, निसां निघट घरि ह्वै रही ।
भयौ चहत अब भोर, सूर वीर सज्जै सबै ।।१३८।।

छप्पय

जगे दिमान दलीप सूर जग्गे सब दल मैं ।
करत क्रिया अस्नान ध्यान धर गंगा जल में ।।
गंगा अस्टक पढ़य इकै मंत्रन उच्चारत ।
ऐकै पूजा करत इकै संकर कौं ढारत ।।
तब श्री दिमान नित नैम कर तरुन वीर अंजुल दियव ।
पोसाक पहिर ठाड़े भये सब सूरन मुजरा कियव ।।१३६।।
श्री दिमांन के पास जब आये श्री सिकदार ।
लल्लू कौं बुलवाइ कै करवायौ दल त्यार ।।१४०।।
अस्फत बल को हुकुम दिय करौ अस्फ तइयार ।
तोपैं हकै अगाउतीलदै भार वरदार ।।१४१।।

छंद

तबहीं दिमान बोले सु वैन ।
करवाउ जल्द तैयार सैन ।।
सुनके जु सूर सब में तयार ।
अति जंग रंग जालिम जुझार ।।
डारी सु जिरह अरु जिरह पोस ।
दस्तानै वांहन पहिर जोस ।।
बषतर कसंत अरु टोप साज ।
अरु जिरह जूत सूथन विराज ।।
नकचून दिये नष बांध रोस ।
चिलता पहिर जोगीह पोस ।।
पेटीय बांध सो अति विराज ।
अत अस अमोल कम्बरन साज ।
कस ढाल अवर षंजर कटार ।
तुपक बरछी बहु अत्र कार ।।

साजे हय राजन विविध रूप ।
वाहन लजात लष अमर भूप ॥
भूप षग दान जांनजे अत अकूत ।
जे जंग रंग मैं रामदूत ॥
मन वचन कर्म में अति सुचेत ।
सदऊ सुचित्त धर स्वांम हेत ॥
सज सज्ज तहां आये सुवीर ।
ठाड़े दिमान सिकदार धीर ॥
छिन एक बैठ करकै सुमंत ।
घोरे मँगाइ तिननै तुरंत ॥१४२॥

दोहा

पारीछत महराज के बरनै सूर जुझार ।
अब बरनत हौं अश्य जे तेहै तेज अपार ॥१४३॥

छंद

सज्जै सुषास हयराज राज ।
लष मंडलीक वाहन सु लाज ॥
जरकसी जीन झालर झमंक ।
बहु तेज तरल विज्जुल चमंक ॥
जे नचत फिरत अंभोजपाल ।
लष कें कुरंग षंजन लजात ॥
जिन धाप दिये धावै सु कौन ।
मानो उठात वाहन सुपौन ॥
मृगमाल छिकारन रोकि लेत ।
जे उठत श्रंग सरतांसु चेत ॥
जे साठ कोस लौं चलत खाइ ।
पलटै वहोर फिर थान आइ ॥
जिन षुरन गरद गगन उड़ान ।
रवि अय भहल मघवान जात ॥
जे लसत जराऊ साज जोर ।
मन मेर सिषिर परमनन कोर ॥
एराषी अरबी कच्छ भुज्ज ।
षंदार मुजंन सबलक सुज्ज ॥
मुलतान अरब पंजाब जान ।
सुरती मारवारी वषान ॥
भीमा राथ रीगष्षर बिलंद ।
अरु कासमीर उत्तर सुबंद ॥

पूरब पच्छिम दच्छिन सुजान ।
इनतैं सहस्त्र हयराज थांन ।।
बहुरंग जात वरनै सुकौन ।
हय देष होत सारद् मौन ।।
महराज परीछत के तुरंग ।
जिनपै जु चढ्ढ जित्ते सुजंग ।।
तिनपै सुचढ्त दीरघ दिमान ।
ते उच्च श्रवा तै अति प्रवान ।।
चोटीन चार कलंगी धराइ ।
अति विविध साज तिनपै सजाइ ।।१४४।।

दोहा

सजे अस्व महाराज के लजै अस्व मघवान ।
श्री दिमान भगवंत सुब चढ़ो वीर बलवान ।।१४५।।

कवित्त

चपल चलाकी चंचला की गति छीन लेत छहर छलंगत छिकारे होत लाज के ।
पुरयन पात के गातन समैट फिरें धाप दिये जात है समान पछ्छराज के ।।
लोटपोट नैन कुलटान के लजावत हैं जरकस जीनन जराउ धरें साज कै ।
अंगन उमंग गिरवरन उलंघन है छैकन कुरंगन तुरंग महाराज के ।।१४६।।

सोरठा

अस तुरंग कर त्यार, षास दार ल्याये तहां ।
जर कस साज सम्हार, मंडलीक देषे लजत ।।१४७।।

छंदनराच

सजौ दलीप श्री दिमान वान जान वर्न की ।
कियौ विचार चित्त सार स्वाम काम कर्न की ।।
प्रभंजने भुजान सौ सधार सैन अर्न की ।
भगुंत-नंद धार कन्ध देव कर्न की ।।
सजौ दिमान चन्द्र हंस वंध संग वीर सो ।
सुजंग रंग को सदा अभंजा पुडीर सौ ।।
सबै सुराज राज के विराज संग सौ सजे ।
देष के समाज साज देवराज सौ लजै ।।
विरुद्ध वीर वांकरै विल्हनिया सजै सबै ।
सजै तुपक्कदार सर्व पासवान नै नवै ।।
सजौ नगारची नगार अस्व पै बंधाइयौ ।
यो कढै सुघोर जोर सोर इन्द्र लोक छाइयौ ।।१४७।।

दोहा

सजौ सूर सिकदार जब पारासर धर्नसिंघ ।
मुष मंत्री महराज कै राषन है रज रिंघ ।।१४८।।

छंद

सज्जौ सुजब सिकदार, धरै राज काजी भार ।
मन स्वाम पन में लीन, धन सिंघ परम प्रवीन ।।
बुधवंत है अतिचार, धोरे सुकुल आचार ।
बजरंग रंग अमोर, रन रंग में वरजोर ।।
साजे सुभट सब संग, कबहूँ न रन जै भंग ।
सब त्यार मे ततकाल, तब आप चढ़ै सुषपाल ।।
आयो सुतहां दिमान सिकदार वीर अमान ।
उठ लयौ प्रबल दिमान दोउ स्वांम काम प्रवांन ।।१४९।।

दोहा

होत त्यारी कटक मैं अटक न मानै सूर ।
झटक सत्रु दल दलत है चटक स्वामि पन पूर ।।१५०।।

छंद नराच

दिमान हिन्दुपत्ति नंद सजयौ बंधेरयं ।
अभंग ईसुरी जु सिंघ जंग रंग सेरयं ।।
जवार सिंघ नंद सो षुमान सिंघ सज्जयं ।
बुन्देल वीर बाँकुरा सुराउसाव गज्जयं ।।
कीरत सिंघ श्री धरं सुभट भट्ट जानियौ ।
धिराज राज राज के विरत्तिया वषानियौ ।।
वड़ौ नयत्त वीर सो विजै बहादुरं सजौ ।
भुपाल सिंघ चित्र सिंघ विस्नसिंघ सोग जौ ।।
सजै सुवैउना-धनी अनी अगंमने वरै ।
सजै सलैय वार तै बुंदेल सींग कौ घरै ।।
सजै सुराउ जू धनी ककरवइ अमान है ।
सजौ दिमान परवतं सुपरवतं समान हैं ।।१५१।।

सोरठा

कर महिंद्र पै क्रुध्घ, वैर लेत निज भूमि कौ ।
श्री दिमान अनुरुघ्घ, सजौ वुडेरेको धनी ।।१५२।।

सोरठा

साजै प्रबल पमार सुवरापति स्यामित हित ।
सदा जंग जितवार अवनि माँझ तिनकौ सुजस ।।१५३।।

सब ठाकुर रन भीम, अर्जुन कर्न अरु द्रोन सम ।
धारें हैं कुल सीम, तिनकी सम सर को करै ।।१५४।।
ते हरौल सब तें लरै ।
है चाकर बड़मोल, डामरौन वारे सबै ।।१५५।।

दोहा

सजे वीर वर गोल सबजंगरंग जैवाइ ।
सौपत तिनहि निसान नृप इह तिनको इतवार ।।१५६।।

छप्पय

सजै पिरौनहवार सूर धंधेर अमानह ।
सजै कुम्हर्रावार वीर तै अति बलवानह ।।
सजै कैरुआपति पमार अरु वंद मुसाहब ।
सजै करैयावार साज साषिन के आयव ।।
सजै सुलहारीवार बखकुआवार बुंदेल सजि ।
सजै धंधेरे मनपुरह के दउआपति सज वंदराज ।।१५७।।

छंद

लंम्कनावार पमार, सज्जे सु सूर जुझार ।
किसुनातिलं सज सूर, पाइक्क जुध्ध गरूर ।।
औरीनवार पमार, जे ते भये सब तईयार ।
गुरषुरुयवार बुंदेल, करछुल सजे रन झेल ।।
सैयद्द सूर सलार, कर्राधनी भुज-भार ।
षां दोस्त अली समथ्थ, सब बंध लीने संथ्थ ।।
सब सेष सजे सुभट्ट, वैरिन करे दहवट्ट ।
सज्जे पठानन षौम, रुहलासजे धेर जौम ।।
लोधा सदन जू साज, बँगरा सजे रन गाज ।
सब वंस सज बलवान, सज जाट अरु चहुवांन ।।१५७।।

दोहा

वैडवार वैरी दलन, सजौ बली बलवंत ।
पना महंमद नीयां, साजौ प्रबल प्रचंड ।।१५८।।
साज साज कै सुभट सग आवै पास दिमांन ।
गाउं नांउ सब के तहां लल्लू करत वषांन ।।१५९।।
इन्दरगड़ के सुभट सब आये साज तुरंत ।
महाराज के दसु इम रामदलहैं हनुमंत ।।१६०।।

छंद नराच

सज्जियौ सुसूर सर्व कंन्हरंगढ़ंबली ।
राज राज संग जंग इंगला चमू दली ।।
जान थान सै गुबांयमार साज सर्वते ।
जंग में षलं दलं घटाइ देत गर्व ते ।।
सैगरं पड़िहार वीर धारियौ पमारयं ।
सज्जियौ सलइवार बुंदेला न सारयं ।।
सज्जियौ किसुनातिलंहु पायकं रनं ।
बलीपनियं समर्थ हथ्थ गथ्थ सैन के दली ।।१६१।।

दोहा

सज्जौ प्रबल पहार जब बुंदेली विरदैत ।
सार दूर सज्जौ समर जोम इंद्र हँसैत ।।१६२।।

दोहा

सजै तडैया सूर सब, दौग्रा सज बलवन्त ।
नागिल नौतेले सजे, अवर सूर अनगंत ।।१६३।।
दूलाजू गूजरसजौ, और अनीरासूर ।
चाकर है सरकार में, सकल वात में पूर ।।१६४।।
पैदर दल सज्जौ सबै, कन्हर गढ कौ जांन ।
फत्तेपुर के सुभट सब, जंग रंग बलवानं ।।१६५।।

सोरठा

सज्जै सूर अपार, हय राजन चड्डे तुरत ।
मनहु धरि अवतार, प्रथियराज सामंथ ज्यों ।।१६६।।

दोहा

तब दिमान सिकदार नै धावन लीनो टेर ।
हुकुम देउ तोपै जुतैं अवर न बाड़ै देर ।।१६७।।

सोरठा

तोपै चलें अगार, धांवन कह अंतौनसौ ।
आप भये असवार, श्री दिमान सिकदार सब ।।१६८।।

दोहा

तब दिमान मंगवाईयौ, अस्व मुल्क मैदान ।
जापै चढ़कै अरिन कै, करै मुल्क मैदांन ।।१६९।।

छंद

जुती तोप ततकाल लग्गे सुबैलं ।
विरंजी बिजै दल्ल वैरी विहंडं ।।

भवारण्य कूल्ले अरिन कोट षंडं ।
महांकाल का गौर संकर सुजानौ ॥
चलै धूम रेपा अवन धूम सांनौ ।
चलै तामियां तर्क अरजोर छूटै ॥
मनौ वज्र धोरि सु पाताल फूटै ।
जयं पत्र महराज को दैन हारी ॥
महा काल रूपं अरं नै निहारी ।
जिन्है देष लुक्मान कौं चित्त मोहै ॥
महां मेघ की घोर समतानसोहै ॥१७०॥

छप्पय

तब दिमान सिकदार वरम मंदिर पग धारे ।
नकुल दरस मग भयौ रजक धोइ वस्त्र निहारे ॥
मन उछाह अति वड़व स्वामि कारज चित चाहै ।
पहुँचे जहां दिमांन वर्म निज ब्रह्म जहाँ है ॥
परदक्ष दियव कर जोर कर ब्रह्म सुवर मांगन अब ।
मम नृपत हियै अभिलाष जो करहु कामना सुभल सब ॥१७१॥

दोहा

यह कहिकै वंदे चरन, सरन तुमारे देव ।
सदां चित्त चाहत रहौं, पारीछत की सेव ॥१७२॥

छप्पय

श्री दिमान सिकदार देव ब्रह्मा जब परसे ।
फरक दछ्छ भुज नैन मोद मन मैं अति सरसे ॥
मंदिर बाहिर आइ तहाँ दुजवर विवि दिष्षव ।
कर पुस्तक गरमाल तिलक मुनिवर सम पिष्षव ॥
तिन दई असीस प्रसन्न हुव सुफल होइ कारज्ज सब ।
कीनी जु दंडवत जोर कर मंगवाये हयराज तब ॥१७३॥

दोहा

राम लंक प्रथीराज को भए सगुन व्रज जात ।
श्री दिमान सिकदार कौ तेई सगुन दिषात ॥१७४॥
नम्सकार कर ब्रह्म को स्वामि-काम उर आन ।
चड़ौ तमक हयराजपै दीरघ प्रबल दिमांन ॥१७५॥

छप्पय

चढ़ दिमान हयराज हुकुम महराज सीस धर ।
बढ़ि दिसान आतंक कंप लग्गी थर हरघर ॥

चली सैन चतुरंग संग बजरंग अंग वर ।
सर्व सूर सामंत लसत मानहु दिनकर कर ।।
गरद गुंग लग्गीय गगन सूर चंद सम छवि भईय ।
अब घट्ट घट्ट गिर वट्ट सो नव हट घट वट्टहि गईय ।।१७६।।

दोहा

झांसी दैकै दांहनी गयन वहट की वाट ।
श्री दिमान सिकदार संग चले सूर दल ठाट ।।१७७।।

छप्पय

घेरकघेरनि घेरघरहि धराधर थरथर कंपहि ।
सेसन थिर थरहरय भार सहसा सिर चंपहि ।।
कमठ ककुर कलमलय कोल द्रढ डाढ करक्कय ।
चिक्कारहिं दिगपाल धाक कुव धाम घरक्कय ।।
सुर राज कंप डर लंकपति धनपति अति मड संग जिय ।
महराज परीक्षत के सुमट किहि उप्परहि पयान किय ।।१७८।।

छंद

चलौ तब वीर दिमांन, दलीप, धरौ सिर सासन पाइ महीप ।
महां वजरंगन अंग अडोल, चले सज सूरन कै संग गोल ।।
चलै दल भूम चलट्टलयान, भये घट औघट एक समान ।
करक्कहि डाढ़न भारन कौल, सरक्कहिं सेसन बुल्लहि बोल ।।
भरक्कह कूरम चंपिय गान, धरक्कहिं दिग्गज सुष्षतजान ।
भये षुरथार धराधर छार, बड़ी नभ ऊपर कौ रज छार ।।
छिपी जब सूरज की छवि व्योम, मनौ जहं उग्ग अकासहिं सौम ।
दसों दिसि कूह भई भय मान, करौ दतिया पति सूर पयान ।।
अरग्गन भज्जय तज्ज पथान, गिरव्वर कंदर जांहि लुकांन ।
जहीं विधि सैन चली चतुरंग, दिसां जब दाहिन देष कुरंग ।।
गये जब वीर सु नौहट घट्ट, चले सरिता मँझ आइ सुभट्ट ।
घेरे सब जंत्र सुपारहि आंन, धंसे सरिता सिकदार दिमान ।।
लषे दहवीचह मछ्छ अनूप, भयौ सगुनं सब कारज भूप ।
भय जबपार दुओ बलबान, तहाँ घन घोरत बज्ज निसांन ।।१७९।।

दोहा

कीनौ कूंच उनाउ तैं गए वेतवै तीर ।
उरै घाट नवहट्ट कौ भए पार सब वीर ।।१८०।।

सोरठा

नदी बैतवै तीर डेरा परे दिमान के ।
जहं तहं सुभटन भीर मेल गये सब मिसलसौ ।।१८१।।

छप्पय

बुल्लव तब सिकदार सुनहु दीरघ दिमान अब ।
करवइयै तामीत रहहि हुसियार सूर सब ।।
अति विकट्ट बैतवै सरित भरका अरु झाड़ी ।
जांन परी कछु और रार सब ही नैं माड़ी ।।
तोपैं सु अग्ग्र ड़ेरन रहैं सुभट कछू तैंआर कर ।
चौकी सुदैहि वाहर कटक अटकन मानहु बीरबर ।।१८२।।

दोहा

तब दिमान सिकदार मिल, देषौ दल चहुँ ओर ।
बंदोबस्त सब बाँध के, डेरन गये बहोर ।।१८३।।
लिषौ ओड़छे कौ करौ, धामन हरवर जाइ ।
थानदार दउआ उहां, ताकौ चरित सुनाइ ।।१८४।।
पठवावो कोऊ सु तुम, महे इंद्र की भूम ।
हमकों आइ बताय दैं, तापै होइ न धूम ।।१८५।।
धामन दौआ लौं गयौ, कौआ के मन गर्व ।
नदी पार महराज की, भूम इहां हरू सर्व ।।१८६।।
धामन लै षत आइयौ, श्री दिमान के पास ।
सुनत खत तब बोले वचन अजहू गर्व प्रकास ।।१५७।।
रहै न डेरा सुइक कर सूरन आराम ।
बसत सदां तिनके हियैं स्वामि काम कौ धाम ।।१८८।।

दोहा

चर चरित्र धंधेर कौ, तुरत सुनाऐ जाइ ।
पारीछत महराज के, दर कूचन दल आइ ।।१८९।।
पूछत तहाँ गनेस कहु, को दल मैं सिरदार ?
मुष मंत्री की बूझियो किहिं के ऊपर भार ।।
बोलत चर धंधेर सों मुष मंत्री सिकदार ।
श्री दिमान भगवंत सुअताके है भुज भार ।।१९०।।
बूझ दिमान गनेस तब धांमन यह वत्त ।
को दिमान भगवंत सुअ तिनकौ कहौ चरित्त ।।१९१।।

छप्पय

जिहि दिमान बलबांन धरा गुज्जर षल षंडिय ।
जिहि दिमांन बलवान आंन चौरासी मंडिय ।।
जिहि दिमान बलबान वरस दस सुग्राम हेत तह ।
हय पिठ्ठ असवार रहौ सिर बांध हने तह ।।

तेई दिमान दल भार भुज तरवार न कट्टत अरनि जिहि ।
पारीछत महराज संग घुंमी गढ कन्हर घरनि ।।१९२।।

कवित्त

छरित छको है छत्रपन की मजेजन मै छित पर जाको छत्र धारिन बषान की ।
अकहकहांन करी कैयो सकू जंग मै अंग न अडो ल पैंज पाले पुरषान की ।।
श्री घर भनत स्वांम कारजी परीछत को नंद भगवंत को दिगंतन लौं आनकी ।
धारै कुल धर्म को दलीप श्री दिमांन वांन करन धर है देव करन दिमान की ।।१९३।

दोहा

सुनत षबर धंघेर कह जाहि सुभट अब और ।
भली भांति करो हमै बाघाइट की गौर ।।१९४।।

छप्पय

होत फजर वज गजर हुकुम दीनो दिमान जब ।
होइ चमू तैयार सूर मिल चलहि संग सब ।।
यह भाऊ की भूम धूम या पहिनहि किज्जहि ।
गंध्रप सहित कुटुंम घेर बाघाइट लिज्जहि ।।
यहि मंत्र ठांन सिकदार सो चडव वीर हय राज वर ।
दल चलत हलत पहुमी सकल अषल बषल भई अरिन घर ।।१९५।।

दोहा

चली फौज धोंसा बजति परो षलन के सोर ।
मनहु मेघ मघवा हुकुम पाइ करत अति घोर ।।१९६।।

छप्पय

सागर को मंझिआइ जाइ बाघाइट दिष्षिय ।
अगम दुर्ग गढ़ अति उतंग लंका सम पिष्षय ।।
सार घोर पंम्मार बसत विक्रम कुल मंडन ।
गंद्रप गर्व गरूर भूर राजत भुज दंडन ।।
देषत्त तौर बुंदेल वीर धीर धीरज धरिय ।
पंचम प्रचंड बलबंड रन दिसि पूरब डेरा परिय ।।१९७।।

दोहा

परो कटक पूरब दिसह बाघाइट के तीर ।
श्री दिमान देषन चले संग सुभट गम्हीर ।।१९८।।
कह दिमांन सिकदार सो देषो गड़बड़ बंक ।
गढबल भुजबल बुध्धबल गंद्रप रहत निसंक ।।१९९।।

छप्पय

अति विकट्ट यह भूम बांन उन्नचहअद कोंसह ।
तासु दुगुन विस्तार भार लग्गत अति जो सह ।।

तिहि उप्पर गढ़ि बनिय घरे जंमूर सुदिष्षव ।
मनु सिकंदरी भुजां वंघ रनसार पिष्षव ।।
चहुं ग्रोर कोट श्रंगनि वनिव तिहि मघ बाघाइट बसत ।
सरतासु विकट बटहनकहूं वंक लंक दूजी लसत ।।२००।।

दोहा

बंक लंक दूजी लसत संक न मनमैं ग्रांन ।
सब ठाकुर उठिकें तबैं डेरन गए दिमान ।।२०१।।

छप्पय

उहाँ जु गंद्रप सिंघ सुनी नौहट दल ग्राइव ।
लिष गनेस कौं पत्र हाथ धामन पठवाइव ।।
बँदोबस्त गढ़ करहु मोरचा बहु षुदवाये ।
शृंगकोट गढ़सरित सुभट जहं तहं पठवाये ।।
चौकी सु चहूँ दिसि रष्ष कैं कछ्रु भीर पासहिं रहिय ।
मन गर्व हांस बुल्लव वचन दतिया दल ग्रावत सहिय ।।२०२।।

दोहा

यह कहिकें गंद्रप तबैं फेर मुच्छ पर हाथ ।
कि तिक बात दतिया चमू तुम सब सामंथ साथ ।।२०३।।

छप्पय

कहत फेर गंधर्प सर्व सुनियौ भट भीरह ।
यह बाघाइट विकट कौन ग्रावैं इहितीरह ।।
मम देषत ग्ररि सुनहु साज बहु तें दल ग्राए ।
भुज बल दल विचलाइ धाम यह छुबन न पाये ।।
तापैं सुसर्व सिरदार तुम पुस्त भली विधि सौ करिय ।
करियह सलाह गंनेस नैं तातैं हम चित्तह घरिय ।।२०४।।
बुल्लव तव गढपत्त सुनहु पंम्मार समथ्थह ।
हम ग्राये सब वीर करन तुम सगरन सथ्थह ।।
कटक कुट्ट दहवट्ट हम सब लुट्ट जु लीजैं ।
नौहट घाटह वट्ट चलिव रतवाइ जीजै ।।
तव विहंस कह्यौ गंधर्प नें तुम लाइक हौ वीर सब ।
ग्रावत कि जात भाजै मुरक देष लेहु सामंथ ग्रब ।।२०५।।

छंद

तब सुनी षबर पमार दल नदी उतरौ वार ।
लिष भेजियौ उहि वेर षत गयौ पास धँधेर ।।

जंह कहि गनेस दिमान, हमहैं लिषौरहू थांन ।
कछु भौज मेल कुड़ार, पिरथीपुरं अड़जार ।।
कछु सूर पठांमिलाइ गढ़पती तुम लौं आइ ।
दारू जुगोली वांन, दै भेजवीर दिमान ।।
षरगापुरं के सूर, ते षसे जुध्ध गरूर ।
दिहिली पलेरावार आलीपुरा पड़हार ।।
विजना सु टोडी जान चिरगांइ अरु उजयांन ।
कहिऐ वमौरी थांन, कछु आप भेज दिमान ।।
तुम पास भीर प्रचंड अरु आय हौ बलवंड ।
दल दपट मारौ धाइ निरसंक जुध्ध कराइ ।।
जंह वांच गंद्रप आपु तब कहत भुजन प्रतापु ।
तुम सुनहु वीर सुभट्ट जंह थान उड़िय विकट्ट ।।
सूवा अनेकन चड्ड पुरवाइ घन जिमि वड्डि ।
तिननैं छुई नहि थांन, मैलरौ हौअनवांन ।।
तापैं सु सब सिरदार धर सूरता भुजभार ।
तुम भये सामिल आइ धंधैर करहिं सहाइ ।।
दतिया चमूकवात तब लूट लै वीरात ।
तब कहत सुभट समथ्थ हम करहिं रनि वडहथ्थ ।।
केतिक दलीप दिमान रन आइ हमसौं ठांनि ।
जिहिं कहत सब मुष सूर जे जंग रंग गरूर ।।२०६।।

दोहा

सहस एक सौ दक्षरहू सूर वीर अलवान ।
जंगरंग को अलगरै जुरे बघाइट आन ।।२०७।।
छाय रहौ महि इन्द्र दल कोस दुकोसै आइ ।
पसर दिमान दलीप की हमेश कैंगैं धाइ ।।२०८।।
यह विचार सब बांधि कै अपने मन उनमांन ।
परी हैल अरि पुरन में आयौ प्रबल दिमान ।।२०९।।
सुन कैं जंह गंधर्प कहिं वीर षबर यह झूट ।
तौ लौं बड़ चड़ आइ कै लऐ बघाइट लूट ।।२१०।।

छप्पय

प्रथम पच्छ वैसाष तिथ्य हा दस भ्रगुवारहू ।
कर उनांउ ते कूच संग सब सुभट अपारहू ।।
पर्स ब्रह्म नवहट्ट जाइ दल पार मिलानौ ।
कुहू तिथ्य सन वार वीर बाघाइट आंनौ ।।
डेरा सुपरे पूरब दिसहिं सूर रहे आरांम निसि ।
पंचम प्रचंड भगवंत सुभ्र परी एल तुव अरन दिसि ।।२११।।

दोहा

भोजन कर बैठे सबै सूरवीर बजरंग ।
कहत वीर सब परसपर प्रात करैंगे जंग ।।२१२।।
डेरा कौ सिकदार गै सोऐ तबै दिमान ।
सूर सबै डेरन गये महांवीर बलवांन ।।२१३।।

छप्पय

घटु रैन घट चार रही नषतं प्रकास घट ।
अरुनोदय आकास भयव धुन लाल सिषरट ।।
जग्ग सूर सामंत धर्म आपुन सब कीने ।
जंप इस्ट में त्यार स्वामि कारज मन दीने ।।
जग्गो दिमान अस्नान कर मंत्र जाप नैमहि करिय ।
पोसाक पहिर कर वरन कस स्वामि कांम चित्तहि धरिय ।।२१४।।

दोहा

पारासर नित नेम कर आयौ पास दिमान ।
हुकुम दियौ दल त्यार कौ वज्जे घोर निसान ।।२१५।।
चंद्र हंस दल मैं रहे कछू सुभट रहि संग ।
श्री दिमान भगवंत सुग्र करन चलौ सफजंग ।।२१६।।

छप्पय

बज्जत घोर निसान गर्ज मघवांन मेघ मनु ।
तर्जत सुभट समर्थ चले हनुवंत वीर जनु ।।
तोपैं लईं जुताइ जंग रोरन पमार घर ।
भयौ सुहय असवार संग सिकदार सुभट वर ।।
सब सैन सिमट संगहि चली श्री दिमान दुतियौ वढ़िव ।
कपिराज मनों दल साज कै स्वांमि काम लंका चढ़िव ।।२१७।।

दोहा

जिम कपिपति लंका चढ़िव चल दिमान इमि साज ।
स्वांमि कांम धारन करे हुकुम सीस महराज ।।२१८।।

छप्पय

बज्ज घोर नीसान सुभट वहु सज्ज सज्जवर ।
हयराजन असवार भये वानै सु विविध घर ।।
तोप तुंग अरु वांन सुतरनालैं सब सज्जी ।
पहिर वीर संन्नाह जंग रंगहि गल गज्जी ।।
प्यादे सुगोल अग्ग्रह चलेह लिव अवनि नग नाग हल ।
वीरादि वीर पंचम प्रबल चढ़ दिमान इम साज दल ।।२१९।।

दोहा

इतै सुभट नरनाह के उत गंधर्प पमार ।
लरत वीर दुव परसपर झरन लगौ तँह सार ॥२२०॥
गाड़े मन वाड़े उमंग ठाड़े समर सपूत ।
माड़ै पंचम स्वांम मन सूरवीर मजबूत ॥२२१॥

छंद मोतीदाम

षड़ौ तहं दूलह वीर दिमान ।
बड़ौ मुष नूर धरै भुजवांन ॥
षड़ौ सिकदार जुझार अभंग ।
मुरै न जुरै सुकरै रन रंग ॥
लसै जहं सूर सबै सिरदार ।
धरै भुजदंडन स्वांमित भार ॥
सजै सब सैन गजैं बहु भाइ ।
बजै रन तूर लरै चित चाइ ॥
मची जंह धौंसन की घनघोर ।
मघा घन गर्जत है जिमि जोर ॥
टरै न कहू भट जे मन टार ।
चलै बहु वांम झरैं तंह सार ॥
परौ दल दोऊन पै तंह भार ।
कहूँ लग जंत्रन फूटत कोट ॥
कहूँ तुपकैं गढ़ घालत ओट ।
उतै गढ गंध्रप सिंघ पमार ॥
धरै बल विक्रम कै भुजभार ।
भयौ जुर जुध्ध मनौ भिर भीम ॥
बँधी मन भारथ पारथ सीम ।
लसै जंह जुग्गिन जोर जमात ॥
फिरै गिरजा गिरजापति सात ।
सजे बहु साज व रंग न आन ॥
छएनभ उप्पर देव विमान ।
हसे हरि सिध्ध फिरै रन मांझ ॥
दजौ रवि घूम भई मन सांझ ।
भयौ खवारहयौ बड़ जुध्ध ॥
लरैं भट भीर करै मन कुध्ध ।
तही दिन दंगल सिंघ पमार ॥
भये दल सामिल आइ जुझार ।
लियें बहु वीरन संग सुभट्ट ॥

करै अरि के दल जे दहबट्ट ।
मिलै जब दंगल सिंघ दिमान ।।
सु स्वामिन काज दुयौ बलवान ।।२२२।।

दोहा

तक तइ सोरोपससर कौ लषत बघाइट वोर ।
वषतपती लौं वषत वर जकतन जेरन जोर ।।२२३।।

छप्पय

आइव दंगल सिंघ सर्व सूरन सुष पाइव ।
जिम अंगद हनुमंतसंत रघुपति दल आइव ।।
किधौं भीम अर्जुन्न वीर भारथ भुवि मंडन ।
सुअरापति पंम्मार आइ बाघाइट षंडन ।।
देष दिमान परसन्न मन पारासर मोदहि मड़िव ।
तिहि सुमट स्वांमि पन मन धरौ षड़े वीर तुरन चड़िव ।।२२४।।
अस जुध्धहू जुग जाम घट्ट चारहि भरि मंड़िव ।
तोप तुपक अरु वान त्रान अरि के दल षंड़िव ।।
तब सुदिमान दल्लीप सिंघ डेरन कौं आये ।
सर्व सूर सामंत सथ्थ मोदहि मन छाये ।।
सब सूर वीर भोजन करिव करि अराम अघे जांम भर ।
दीरध दिमान बोले सुभट करत सलाह सु वीरवर ।।२२५।।

दोहा

तब दिमान डेरन गये भोजन कर आराम ।
पहर तीसरे जुर सुभट मढ़े स्वांम पन काम ।।२२६।।

छंद नराच

करी सलाह वीर धीर अस्व फेर सज्जियं ।
भये सवार संग त्यार सूर सर्व गज्जियं ।।
चलौ दिमान वीर जोपमार भूम केरनं ।
सुभट्ट भट्ट ठट्ट ठट्ट अंग वोर हेरनं ।।
चली वंदूष अग्ग तें परै सुआइ गोलियं ।
धरै पमार पर्व कौ करै बहुत बोलियं ।।
तबै दिमान दिक्षनं दिसां जु लिग दिष्षियौ ।
लगै अकूट शृंग तै उतंग शृंग पिष्षियौ ।।
गये दिसां जु पश्चिमं पहार वीर वंकि है ।
मनौ कलंक जांन कै धरी सुदेह लंक है ।।
तबै सुआइ उतरं दिसां सु सर्व सूरयं ।
दिषात दुर्ग दूर तैं सुजुध्ध ता गरूरयं ।।

कहै सुवीर दंगलं सुनौ दिमान बातयं ।
सबै सुसैन सज्ज कै इहाँ मिलाइ प्रातयं ।।
तबै सु ठौर सोध कै गये सुभट्ट डेरनं ।
करै सुस्वांमि काज को धरै न संक जे रनं ।।२२७।।

दोहा

श्री दिमान पंचम प्रबल दियौ गस्त बाघाट ।
अति गरूर मुष नूर बढ़ संग सुभट्टन ठाट ।।२२८।।

सोरठा

आये तब दल मांझ सूर सर्व डेरन गये ।
दिननि घटौ भई साँझ कर मसलत सिकदार सौं ।।२२९।।

छप्पय

कर मसलत सिकदार तबै डेरन पग धारे ।
सूरवीर मिल बंधु मित्र बैठे अनियारे ।।
कर बातैं बहु वेस जांम इक रैननि घट्टिय ।
सूर वीर सब उठिव गही डेरन की बट्टिय ।।
तब बोल न-कीब दिमान कहि रहि चौकी हुसयार सब ।
करिके सलांम लल्लू चले आपुन सोहै वीर सब ।।२३०।।

दोहा

होत भोर जग्गे सुभट जग दिमान सिकदार ।
करे नैम नित वीर सब भई सैन सब त्यार ।।२३१।।

छप्पय

भई सैन सब त्यार तुरत तोपै जुतवाइव ।
चले सुभभट्टन ठट्ट गढहि उत्तर दिस आइव ।।
मेलौ दल लग पाल लगे डेरा दिमान के ।
मन उछाह सबघरह वीर स्वांमित्त वांन के ।।
तबहीं दिमान सिकदार मिल दंगल सिंघ समेत वर ।
दीजे सुमोरचा कोट कौ चले वीर मसलहत कर ।।२३२।।

सोरठा

श्री दिमान बलवान, करौ कूच सब सैन सज ।
गडलै उत्तर आंन, मेलौ दल ससिवार कौ ।।२३३।।

छंद

तबै सूर सामंत संगं दिमानं ।
सदा स्वामि काजी प्रमानं ऋवानं ।।

लई जोत तोपैं तबै पीरषानैं ।
महांकाल रूपं अरं कोट भानै ।।
लई घेर बाघाइटं वीर बंका ।
दुश्रौं श्रोर सामंत ठाड़े निसंका ।।
धलै जंत्र महराज दल तै सुजोटं ।
भई फूट पारं अरं दुर्ग कोटं ।।
परी पैल गंधर्व के धाम धामं ।
विहालां फिरं भाजती वैरि वामं ।।
करै तोर गोला चलैयै सुजोसं ।
अरं दुर्ग मीरं गिरं ते दुकोसं ।।
षड़े वीर बाघाइटं सर्व त्यारं ।
सदा जंग रंगं महा हैं जुझारं ।।
धले बान जम्बूर बन्दूक भारी ।
मनौ आन आसाड़ वर्षा निहारी ।।
इसी तोप लागं बली पाल गाई ।
मनौ गर्ज घर यार संज्झा बजाई ।।
लगे गिर्न गुर्जा कहूँ कोट फूटैं ।
कहूँ सत्रु के प्रान कौ लै अहूटैं ।।
इहीं भांत बाघाइटं जुध्ध माचौ ।
जहां हर्ष हर सिंघ संकर सु नाचौ ।।
लरै वीर दिम्मान सिकदार ठाड़े ।
सबै सूर वीरं मनं मोद बाड़े ।।२३४।।

छप्पय

तब दिम्मान दलीप सर्व परवार बुलाये ।
दियौ हुकुम ततकाल बहुत बीड़ा बँधवाये ।।
बेलदार बुलवाइ कछुक प्यादे बुलवाइव ।
लैबोढा ते चलिव अग्रं मोरचां चलाइव ।।
बैठार मोरचा वीर कुंवर साव सिकदार सब ।
घल तोप तुपक वांनन सुझर बाघाइट पै करिय दव ।।२३५।।

इत बुंदेल दल विकट उतहू गंद्रप पमार भट ।
धलत तोप जंबूर वान तुपकै सुत्रांन ठट ।।
लरत परसपर प्रबल धरति नहिं पाउं पछेलहू ।
करत कहर रन मांझ झरन सारन झर झेलहिं ।।
जुग्गिन जमात किलकत फिरत हुगवर डवर कर में लियव ।
अदभुत जुध्य मचौ जहां जिमि पारथ भारथ कियव ।।२३६।।

दोहा

जिम पारथ भारथ कियव त्यौ लर पंचम सूर ।
जुरजोधन गंध्रप सुभट वाड़े गर्व गरूर ।।२३७।।

छंद

लसै गड़ गंद्रप सिंघ पमार, करै अति वान वंदूषन मार ।
लरें वट गैयन के भट गोल, धरै बहु गरभन जंग अमोल ।।
भई इततैं बहु तोपन मार, लगै भर लौटह सूर सम्हार ।
कहूं गढ़ श्रंग कहूं लगि कोट, कहुं तन सूरन आवत चोट ।।
फिरें जँह गिध्घह जंमुष ग्रौर, हँसें हरसिंघ करें बहु सोर ।
बही अति श्रोनित अंगन धार, पियै चवसठ्ठ कियै सुबहार ।
भरै भिरनामुनु सावन नीर, भिरै सनमुष्ष टरें न गम्हीर ।।
भयौ बड़ जुध्ध कलाभृतवार, लरौ जिमि रावन लंक मंभार ।

दोहा

लरत सुभट गंधर्प के धरत न जे मन संक ।
परत मार दुहुँ दलन पै गहै मोरचा वंक ।।२३९।।।।

छप्पय

भयव जुध्ध जुग जांम स्त्रांम कामह दुहुं ओरहिं ।
तोष तुपक वरवांन त्रान वरषै अति जोरहिं ।।
भोजन काज दिमांन तवै डेरन कौं आये ।
चंद्र हंस सँग सुभट पास तोपन रषवाये ।।
तब भोजनादि करके सुभट कछु पास तोपन गये ।
सामंथ सिंघ भुजबल प्रबल बोल दिमान दुहूँ लिये ।।२४०।।

दोहा

भुज बल सिंध पमार जंह प्रबल करै आवार ।
राधा पुर धंधेर साउथ सिंध जुभार ।।२४१।।
इन सौं कही दिमान जू सुनौ सूर यह बात ।
हुसयारी अब रात की सर्व तिहारे हात ।।२४२।।

छप्पय

तब बोले है सुभट सुनहु दीरघ दिमान वर ।
रहिये आप निसंक नहीं कछु संक चित्त धर ।।
करहिं ग्रस्त हम रात साथ कछु सूरन लै है ।
गस्त देइ गढ़ आसपास मोर्चा वड़ै है ।।
किलिक वात बाघाट अहि समुहा इस केतिक अवर ।
बडजांइरात परवत बिकट तव गंद्रप पावह षबर ।।२४३।।

दोहा

यह कैकें दोऊ सुभट लिये सूर कछु संग ।
चले विकट देषन सुगढ़ जिमि अंगद वजरंग ।।२४४।।
रहे मोरचान उप्परह दंगल सिंघ समथ्थ ।
करत स्वांम कारज सकल लियै सुभट्टन सथ्थ ।।२४५।।
चौका ते कछु भाट सजे चंद्र हंस बलवान ।
पंचम दल दाषिल भये आये पास दिमान ।।२४६।।

सोरठा

मिजमानी पठवाइ बहुत भाँत आदर कियौ ।
लल्लू वाके राइ लई हाजरी जाइकैं ।।२४७।।

छप्पय

जहू प्रकार से सवार जुध्घ बासर भर वित्तौ ।
घलत तोप वंदूष लरत कोउ हार न जित्तौ ।।
सामंत सिंघ घघेर अवर भुज वल पंम्मारह ।
कछू निसा बितैयै वोल लिये सुभ अपारह ।।
तिन बंदोबस्त वहु विधि करत रसद भीर कह सुपढ़ ।
मन, कर्म, धर्म स्वांमित भगतव वीर अति प्रबल बढ़ ।।२४८।।
सुकल पच्छ तिथि तीज वार भौ उगव दिन ।
कर सूरन अस्नान ध्यान निज इस्ट जप मंत्र तिन ।।
लरत वीर वरजोर तीर तोपन की धाई ।
फोरत जे गड़ कोट चोट अरि चमू घटाई ।।
रजपूत सार संम्मै सहत काइर कंप भगाइ रन ।
ठड्डौ दिमान सिकदार जंह स्वांम काम धारैं सुमन ।।२४९।।

छंद

भयौ सुजुध्ध जोरयं, घलै तुपक्क तौरयं ।
चलै सुतोप तुंगयं, उठौ सु घुम गुंगअं ।।
चलै सुवान त्रांनयं अरिन्न प्रांन भानयं ।
लरैं दिमान गंद्रपं मनौ सुरुद्र कंद्रपं ।।
भिरैं सु सूर वीरयं ते जुध्धता गम्हीरयं ।
बजाइ वीन नारदं किलक्कनंच सारदं ।।
नदीस नंद सज्ज कैं चले जमात गज्ज कैं ।
फिरैं सुजुग्गिनी जहां प्रमोद कालिका तहां ।।
सुचिल्ल गिध्ध स्यारयं करैं तहां अहारयं ।
लऐ सुईसमुंडियं, डरे सुरुंड हड्डियं ।।

मची सुश्रोन कीचियं, सुकालिका असीसयं ।
विमान व्योम छाइयं, सुमानं नाद षाइयं ।।
वरंगना वधावनै, करै सुमोद गावनै ।
धरक्क भूम कंपियं सहश्र सीस चंपियं ।।
सु कछ्छ भार वाडियं, कुरक्क कोल डाढ़ियं ।
दिगंत चिक्करै सबै, सुहार मान कै तबै ।।
धरै सुभट्टताउको जे स्वांमि काम चाउको ।
उतै पमार वीरयं सुजंगको गम्हीरयं ।।
गडप्पतीस वै जहां सुजोम सो लरै तहां ।
कहै सुअंगं धांनियं धरै सुवीर वानियं ।।
सुसूर मुक्ख वड्डियं करै सुवाइ जड्डियं ।
कपाइ काइरं भगै न पाइ जंग मै लगै ।।
सुवांकुरा अमानियं षडो जहां दिमानियं ।
धिराज राज राउ के लरै सुभट्ट चाउके ।।
महां सुभोमवारयं भरो विकट्ट सारयं ।
सुवेद जुध्ध जांमियं, भयौ सुस्वामि कामयं ।।

छप्पय

सार सार अरु हरय जुरे पंम्मार बुंदेलह ।
परतमार असरार भरत जुग्गिन घट छेलह ।।
छूत तौप तुप्पक्क सीस फुट्टत घर टुट्टत ।
काइर कंपय भग्ग सूर संम्है भर जुट्टत ।।
इम होत जुध्व अदिभुत्त जँह भारथ जिमि पारथ करिय ।
सुझ्झै न दिवस रज झंप रवि रुंडमुंड भुव पर भरिय ।।२५१।।

दोहा

भारथ जिमि पारथ करिद त्यौं लर प्रबल दिमान ।
बाघाइट मंडौ सुरभ स्वांमि कांम घर वांन ।।२५२।।
इहि विधि मंगलवार को भयौ जुध्ध गंम्हीर ।
वड्त मोरचा जात है बाधाइट के तीर ।।२५३।।
रहे मोरचन उप्परह दंगल सिंध सुभट्ट ।
भुजबल सामंथ सिंध नै घेर बघाइट बट्ट ।।२५४।।
कछू सुभट हय चड्ड कै देत छवीनावीर ।
श्री दिमान सिकदार निस डेरन रह रनधीर ।।२५५।।

सोरठा

तिथि चतुर्थ बुधवार उग्गिभान निघटी निसां ।
भये सूर हुसयार नित्त नेम कर सज्जियौ ।।२५६।।

छंद

घली सुतोप कोप कै चलै सुषांन आनयं ।
हलै सुश्रंग दुर्ग कोट सत्र प्रान भानयं ।।
महा सुबुंध कार जाल धुंध व्योम छाइयं ।
भयौ सुअंधकार भार सूर ना दिषाइयं ।।
विमान वैठ अप्छरा सिंगार सज्ज आइयं ।
बजाइ वीन भोर लीन नारदादि गाइयं ।।
किलक्क कालिका जहां करै सु उडुपालिका ।
उठाइ मुंड कौ सिवाव नाइ ईस मालका ।।
उठात गिघ्घ अंत दंत दव्व आसमान को ।
डरात कायरं भगै सुवोइ आपवान को ।।
चढ़े सुषेत स्वांमि हेत सूर नेत वंधि कै ।
लरै बुंदेल वांकुरा पमार सार कंधिकै ।।
वंदूक मुक्क यौं परै भुजैंसुज्वार भारयं ।
लगै सुसूर कुट्टयौ गिरत्त वे सम्हारयं ।।
भयौ सुजुघ्घ बुध्धवार सुघ्घ सूर जे मरे ।
उतार आरते तवै वरंगना तिनै वरे ।।
भरी सुलूम श्रौन सौ दिसांन सोर मंडियौ ।
महां कराल काल से प्रचण्ड वान छंडियौ ।।
अदैत वीर वांकुरान जंग अंग मोरही ।
झरै विकट्ट सार झार जंत्र घोर घोरही ।।२५७।।

छप्पय

पारीछत दल सुभट लरत सफ जंग जोर भर ।
करत मार असरार सार पंमार वीरवर ।।
छुटहि लुंग वंदूष विरह गोली वोराइन ।
करत निसांनन घाउ मघा घन जिमि घोरा इन ।।
छूटत सुजंत्र गोला विकट लगतबधाइट गढ़ दलत ।
मानों सुजुघ्घ मन कुध्घ करि इन्द्रवांन बल कौ चलत ।।२५८।।

दोहा

इंद्र वान बल को चलत घलत जंत्र इम जोर ।
मनहु मघा घन गरज अति होत निसानन घोर ।।२५९।।
पारीछत महराज के सुभट करत सफ जंग ।
मड़े स्वामिपन मैं सदा चड़े वीर रस रंग ।।२६०।।
उत गंद्रप गढ़ अचगरी सार घोर भट भीर ।
भरी जोर गढ़पतिन के लरे निकट रन धीर ।।२६१।।

लरे सुभट दोऊ दलन भरे वीर रस बांन ।
रहे मोरचन सुभट कछु डेरन गये दिमान ।।२६२।।

छप्पय

होत जुध्ध नित नैंम बुध्धवासर भरवित्यव ।
स्वांम कांम वंध उभय कोउ हार न जित्यव ।।
इत पंचम के सुभट उतह गढ पत्ति विकट्टहि ।
लरत सर्व वाघाट संग गंद्रप रन ठहड्डहि ।।
भारत्थ भीम भीषम लरहि दिवस रैन मंची सम्हर ।
नंची हरष्ष हरसिध्ध रन चड़ विमान देषत अमर ।।२६३।।

दोहा

देत छवी ना सुभट निसि छाये रहि हुसयार ।
कोस दुकोसे पै रहै महेइन्द्र दल भार ।।२६४।।

सोरठा

सामंत भुजबल सिध बाघाइट चहुं दिस फिरत ।
भुजन घरै कुल रिंघ रसद भीर रौके सुगढ ।।२६५।।

छंद तोमर

तिथि पंचमी गुरवार सबजगे सूर जुझार ।
कर धर्म नैम सुचेत धर स्वांम कारज हेत ।।
गऐ मोरचां भट मीर वाड़ी सुतिन मुष नीर ।
घल तोप गोलह वान वंदूष छुट्टह आन ।।
भजकाइरं तज लाज रन सूर सोभ विराज ।
घर गरद गुंग उडात दब मान की छवि जात ।।
जुग्गिन जमातैं जोर ते करत रन में सोर ।
दुहुं ओर मंनची मार तंह झरैं सार नसार ।।२६६।।

छप्पय

नृपति विक्रमाजित्त इक्क जासूस पठाइव ।
टहरी तैं सो चलौ जलद दल में सौ आइव ।।
दिव्व चमू विकराल जंत्र देषे सुकाल अति ।
दिष्षे पंचम सुभट भयौ जासूस चक्रत मति ।।
मँझआइ सैन हर वरत बँगयौ दिमान दलीप तट ।
बैठे सुतहाँ दरवार मैं चहूँ ओर राजें सुभट ।।२६७।।

दोहा

श्री दिमान सिकदार सौं मुजरा चर कर आइ ।
कोहौ चरकिहि भेजियौ महेइन्द्र पठवाइ ।।२६८।।

महेइन्द्र महराज कह कह दीमान गनेस ।
किहि कारन तुम कौ इहाँ भेजौ प्रबल नरेस ॥२६६॥
मेल लिधौरा आइ कै श्री दीमान गनेस ।
टहरी तै देषन चमू भेजौ मोइ नरेस ॥२७०॥

सोरठा

तब दिमान मुसक्याइ धामन सौं बोले बचन ।
महेइन्द्र चित चाह सो सब हम पूरी करहि ॥२७१॥

दोहा

करौ मंत्र मन मैं समझ महेइन्द्र महराज ।
दबत न गंद्रप भुजन दल ताकौ करौ इलाज ॥२७२॥

छप्पय

यह सलाह महइन्द्र चित्त बहु उचित विचारी ।
वेहै वुध्ध अगार सुतर हिय ततौ भारी ॥
दव्वत नहीं पमार किधौं बाघाइट चाहै ।
तासौ भल मत रीत किधौं हमको अजमाहै ॥
मम नाथ साष दरसाष तै करत सहाइ रहै इनै ।
यहि कहत दिमान दलीप है सो विचार हमरे मनै ॥२७३॥

दोहा

टोरि देहि महइन्द्र कौ यहि बाघाइट थांन ।
और हुकुम जो वे करहिं तिहि पै करै पयान ॥२७४॥

छप्पय

कर मुजरा जासूस पंथ टहरी को लीनौ ।
तबहि सूर सामंथ स्वामि कारज मन दीनौ ।
होत उभर कर जुध्ध सुध्ध पग धरत धरन पर ॥
घहरात तोप गोला चलत ढहत सिषिर गढ़ कोट लग ।
अति अंधकार माचौ जहाँ हरसिंघी मन मोद पग ॥२७५॥

दोहा

हरकारा सौ षुलगयौ महेइन्द्र कौ पाप ।
फैलो है दसहू दिसन पारीछत परताप ॥२७६॥

छप्पय

जही मंत्र दसकंध अंध मतिमंद विचारौ ।
कुटुम सहित संघरिव गयव लंका गढ़ भारौ ॥
जही मंत्र धर कंस बंस विरधुंस करायौ ।
जही मंत्र कौरवन संधरत वार न लायौ ॥

जही मंत्र कर मिट गयौ देषत राजा छत्रपति ।
सो मंत्र दियौ गंध्रर्प को महाराज विक्रम न्रपति ।।२७७।।

दोहा

गुरुरहि वित्तौ दिवस निसा निछुट्टी जान ।
भ्रगु वारह उग्गे तरुन करी जुध्ध की ठान ।।२७८।।

छंद

तवैं सुदिमान, मड़ो रन आन ।
चलैं जह तौप, लरैं भट कोप ।।
बंदूषन मार, रही न सम्हार ।
रनं बड धूम, न सुज्जहि भूम ।।
चलै वहु वान, हनैं अरि प्रान ।
गये कड़यार, गिरंत सम्हार ।।
वरिंगन धाइ, भरीं सु उछाइ ।
इकैतज प्रान, सुभेदहि भांन ।।
सुगंद्रप सिंग, लरैं गड़ धिंग ।
गडप्पत सर्व, धरैं मत गर्व्वं ।।
पमारन साथ, करैं वड़ हाथ ।
महेस हरष्ष, सुआइ अतष्ष ।।
चवस्सठ वाल, भरी सुष साल ।
लगे तन वान, सुपार कडान ।।
घुमंत निसांन, मघाघनघान ।
लरै भट भीर, महा रन धीर ।।
सुश्रोनित ताल, धरे ततकाल ।
सुसूर निराह, करैं नहिं आह ।।
सु सिप्पर कछ्छ, लरैं सुप्रतछ्छ ।
डरे कर जंग, सुमछ्छ सुरंग ।।
सिवालन वार, सुरुंडन पार ।
भम्भकहि आउ, झिरंन्न झिराउ ।।
षड़ी पनहारि, सुजुग्गिन नारि ।
करत्त अहार, सुप्रेत डकार ।।
बिना घेर, मुंडवहै जन रुंड ।
सुजंत्रन घोर, चहूँ दिस सोर ।।
भई इम भार, कछू न सम्हार ।
जुरौ यह जुध्ध, करैं भट कुध्ध ।।२७९।।

छप्पय

भयव जुध्घ अगुवार सार सह सार करक्कह ।
घलत तोप जंबूर वांन गड़ श्रंग घेरक्कह ।।
पड़े वीरबर वंक लरत निरसंक सुभट्टह ।
पारीछत परताप करत वैरी दह वट्टह ।।
नचैं सुइस नारद हरष हरसिधी गिध्धी फिरत ।
बुंदेल वीर पंम्मार उत बाघाइट दोऊ लरत ।।२८०।।
सुन दिमान सिकदार आइ करमद्धत भारह ।
महावीर बजरंग लाल जंगन जितवारह ।।
तब दिमान चौकी नवीस लल्लू बुलबायौ ।
पठये कूरम पास मिसिल डेरा लगवायौ ।।
सैंगर सुअर्म कूरम धरह आयौ पास दिमान कैं ।
मिजमानी तिनह लगाइकैं भेजी बहुत प्रमान कैं ।।२८१।।

दोहा

रन राउत जुट्ट सम्हर डवरग वरकर नाद ।
अमर आइ दिष्षत गगन छुटी ईस समाद ।।२८२।।

सोरठा

लरैं दिवस रन धीर देत छवीनाारात कै ।
अगु वारहि गंम्हीर षटति थिवि तई दिवस निसि ।।२८३।।

दोहा

सनवारहि ऊगैं तरुन अरु भयौ आकास ।
बज्जत नबद निसान जहँ, सज्जत सुभट उजास ।।२८४।।

कवित्त

इतहि बुंदेला बघमेला बर्ग झेला पिले उतै भट भेला सो पमारन की घाइ है ।
घलत वंदूष वान तोप तुंग कहरांन माचौ लोह घान सो विमान व्योम छाइ है ।।
करैं भटहाथ हरसिध्घ हरषात फिरैं भूत डकरात ऐसी अकहमचाइ है ।
वरषत अत्र सत्रु करषत घाइल ह्वै हरषत गौर मुंडमालिका बनाइ है ।।२८५।।

छंद मोतीदाम

सनिवारसूर जुट्टे सुजंग ।
भटसार घोर बजरंग अंग ।।
चल तोप तुंग गोला घलंत ।
षल षौम जौम दल कौ दलंत ।।
बड़ सोर रहौ दसहू दिसान ।
घहरात घोर बज्जे निसान ।।

जनु प्रलय काल के मेघ माल ।
कै इंद्र वज्र बल को जुघाल ।।
उठ जंत्र विरीऊगै तमंक ।
मन मघा नषत विज्जुल चमंक ।।
घर परसुवुंद गोली समान ।
वंदीजन चात्रक करत गान ।।
वग पंत परीछत सुजसछाहि ।
वरषोस रूप रनयौंमचाइ ।।
गंधर्व सुभट मन सकं मानि ।
बोलौ पमार तिनसौ सुवानि ।।
कछु मनहि संक जिन धरहु भट्ट ।
हम भोर लरैं दलसोंदवट्ट ।।
तब बोलहु प्रबल पहार वीर ।
यहि बात मान गंद्रप गम्हीर ।।
तुम रात कबीलहि देहु काड़ ।
सनमुष्ष होइ तब जुघ्घ मांड़ ।।२८६।।

छंद

गंद्रपं कहै तबै सुनौ पहारवीरयं ।
कहौ सुकौन बाच आप जुध्वता गम्हीरयं ।।
पमार वंस होइ कै सुजुध्ध कौ डरै कहा ।
कितेक फौज पंचमं साँमुहै लरै कहा ।।
गडप्पति सुक्रुद्ध धार सार कौ गहै जबै ।
परै सुकौन सांमुहै सुमट्ट सज्ज है तबै ।।
चमू कितेक पंचमं बरात सी मिलाइयौ ।
बघाट दुर्ग वंक आप संक नालिआइयौ ।।
करौ सु भोर जुध्व कौ मू विथोल डारहौं ।
कटक्क कूर लूट कें सुवैतवै उतारहौं ।।२८७।।

दोहा

तब पहार वुल्लो वचन सुन गंद्रप यहि मंत्र ।
जामैं कछु ना हार है राव कवीलन अंत ।।२८८।।

छप्पय

ऐहो वीर पहार हार जिन चित्त विचारौ ।
ये गड़पति सिरमौर गौर कर इहिं पग धारौ ।।
देरी षरगापूर सुभट टोड़ी वरवंका ।
आलीपुर पड़हार बमौरी वार निसंका ।।

उजिग्रांन पलेरा वीर सब चिरगैयां आये सुदल ।
महइंद्र जलेव जुषास इहि तुम कौ होइ इतेक वल ।।२८९।।

दोहा

करौन संक लरौ सम्हरें हरौ गर्व बुंदेल ।
भरौ पात्र जुगिन रकत करौ सुषगन षेल ।।२९०।।
मास एक आसाढ़ है करह वैतवै जोर ।
तब दल कौ सब लूटवी जाइ वघांम बहोर ।।२९१।।
करत कहा तौलौ सुदल परौ रहै इक वोर ।
महेइन्द्र महाराज दल परे सुचारौं छोर ।।१९२।।

छप्पय

इहां दलीप दिमान वांन वर देव करन किय ।
लरत वीर बुंदेल सैन गर्जत अरंभ किय ।।
तोप कोप घहराइ धाइ गोला लगंत गड़ ।
गिरत गुर्ज भहराइ वांन कहराइ जौर बड़ ।।
तढ भढत डांक तुपकै चलत बड़बड़ कै धालत सुभट ।
मढ़ रहौ जुध्ध इमि दिवसनिस पंचम दल बाघाट तट ।।२९३।।

दोहा

कुँवरसाब दंगल प्रबल श्री दिमान सिकदार ।
तिहूं सूर मिलकै तबै बैठे करत विचार ।।३९४।।

छप्पय

कर मसलत भगवंत नंद डेरन पग धारे ।
तोपन पास सुभट रष्प आये आनिआरे ।।
कर भोजन आरांम तबै हढिया बुलवाये ।
तिनसौं कर तागीद गये निज जाँम सुहाये ।।
वीरध दिमान सिकदार भट कुँवरसाब दंगल सवै ।
पटकी सुषंगारन दौर कै बाघाइट हड़िया तवै ।।२९५।।

दोहा

सकल सुभट मिलकै तबै तोपन पास पठाइ ।
पटकी अरगड़ भोरचन हठ अनहठियां धाइ ।।२९६।।

छंद मोतीदाम

पटकी हड़िया अरु ऊपर जोर,
दई इत तै बहु तोपन झोर ।
परी सुबघाइट भीतर कूह ।।
उठी पल षोंमनके मुष रूह ।
जरे इक सूर उलट्टहि भूम ।।

मनौ धन जाल विग्राकुल सूम ।
इकै वहु भ्यांनक रूप दिषाइ ।।
गऐ जरकें सरकें विन चछ्छ ।
मनौ जलहींन सुलौटहिं मछ्छ ।।
गये कड़ प्रान इकै तन सूप ।
इकै भज भज्ज परे भुम कूप ।।
भये जब व्याकुल गंद्रप सूर ।
उड़ी तिनके मुष ऊपर धूर ।।
तबै धर धीरज बोल पमार ।
सुनौ गढ़पत्ति सबै सिरदार ।।
पँगारन आइदगां भट जार ।
गये पग सोइ परीन सम्हार ।।
जरे दस बीस कतौ कहु हार ।
अबै हम कुछ्छ गहौ नहिं सार ।।
भयै अब भोर परै तब जांन ।
लरै जब मौसहि आइ दिमान ।।२६७।।

दोहा

यहि कहिकैं गंद्रप सुभट समुझाये बहुवार ।
तब गढ़पत्तिन सिमिट के करी वंदूषन मार ।।२६८।।

छप्पय

सन बारह अधरात होत तोपन धुंकारहि ।
मनहु काल नचचाइ पमारन परहुंकारहि ।।
परिय मार वाघाट ठाट विथरौ पमार धर ।
व्याकुल बालह बाल भइ बेहाल देष भर ।।
लौहै सुभट्ट जहँ तहँ परे जरे अंग कछु वकमरैं ।
दतिया नरिंद परताप लष गड़पत्तिय मनमें डरैं ।।२६६।।
हिंया दिमान दलीप सिंघ सिकदार सूर सब ।
षड़े सुजंत्रन पास तहाँ हड़िया आये तब ।।
वगसी तिनैं इनाम तबै डेरन पग धारे ।
बाघाइट चहुं ओर सूर रष्षे अनियारे ।।
करिकैं आरांम जुग जांम भर होत प्रात जग्गे सुभट ।
नित नेम धर्म को साधि कैं स्वाम काम कौ चिट्ठ ।।३००।।

सोरठा

श्री दिमान सिकदार दंगल सिंघ समेत भट ।
सोई करत विचार बाघाइट टूटै जलद ।।३०१।।

बूझत हैं सिकदार लल्ला दुज सौं प्रश्न यह ।
जाको करो विचार बाघाइट टूटै कबै ॥३०२॥

दोहा

प्रश्न करी लल्ला तबै अवन देर कछु आइ ।
सात पहर के भीतरहि थांनो बैठै जाइ ॥३०३॥

सोरठा

चले मोरचन वीर कर विचार गड़ लैन को ।
अति बलिस्ट गंभीर प्रथीराज सामंत सम ॥३०४॥

छप्पय

उत गड़ गंद्रप सिंघ गर्भ घर बुध्यि विचारिय ।
हनूमान मंदिरहि आइ बोलमाउसारिय ॥
सौ दुज भोजन देउ पसर कर मोपर आवै ।
तौ सांचौ हनुमंत नहीं पाषान कहावै ॥
कहि कै पमार गड़ कौ गयव महावीर चितहि धरिय ।
केतिक बघाट जिनकौ सुतिन लंक बंक दहवट करिय ॥३०५॥

दोहा

होत जुध्ध रविवार कौ भयौ जांम घट चार ।
चलेसुभोजन करन को श्री दिमान सिकदार ॥३०६॥

छंदतोमर

सिकदार प्रबल दिमांन, डेरन गये बलवान ।
भोजन करे सब सूर, बैठ सभा भरपूर ॥
देषै · बघाइट ओर, तिहि मंचियौ गड़ सोर ।
अनलं उठी तहँ झार, व्याकुलह वीर पमार ॥
हनुमंत कोप प्रचंड, दीनौ पमारन डंड ।
रवि वंस पंचम जान, गंधर्प गर्भ घटान ॥
सब चले सुभट सुसज्ज, रन रंग कौ गलगज्ज ।
पहुँचे सुतोपन पास, ठाड़ौ दिमान उजास ॥
अंतौन सोकहिटेर, तोपै करौ सब सेर ॥३०७॥

छप्पय

श्री दिमान बलवांन बोल सिकदार पठाये ।
सुनत षबर घनसिंघ तहाँ हरवर चल आये ॥
पंचम सूर समर्थ पास तोपन के ठाड़े ।
जंग रंग उतसाह स्वामि कारज मन वाड़े ॥
बीरादिवीर दिष्षत नया तोप तुपक तड़ भड़ परिय ।
जंबूर बांन कौरांन मच तलगह तन फुट्टस भरिय ॥३०८॥

दोहा

दव्वत अरि नहिं जुध्ध बल गर्वंत प्रबल पमार ।
चहूँ ओर तै पसर कर तोपन दीजै मार ॥३०९॥

छंद तोमर

सुनकै षलीया आइ, बहु जंत्र लाग लगाइ ।
पहरातगोलहवांन, थहरात गंद्रप प्रांन ॥
भई कूह जब गाघाट, विथरो पमारन ठाट ।
समुहाइ गंद्रप टेर, ते रहे चक्कत हेर ॥
दिहरी सुभट भये दीन, षरगापुरी मनहींन ।
टोड़ी व मौरी वार, भग चले तीन अगार ॥
विजन्ना उज्याइन वीर, गये षोइ भुष कौ नीर ।
आलीपुरा चिरगाइ, तिनहून रोपे पांइ ॥
महइंद्र षास जलेद, जिन हू न षर्ग गहेव ।
चक्रत भयौ गंधर्प, मुष तैं कढ़ै नहि हर्ष ॥
रावै सुवालह वाल, ते भये बहुत विहाल ।
गंदर्पहिं गारीं देत, तब क्यौं न भयौ सुचेत ॥
मति मंद मर समुहाइ, अब रहौ काहि डराइ ।
तब मान विक्रम सोष, अब माँगिये जग भीष ॥
निज वंध व्याकुल देष, लग्गौ पमारन तेष ।
कछु सूर नूर बड़ाइ, ते मरे सामैं आइ ॥३१०॥

दोहा

तबै पीर षां सौ कही श्री दिमान बलवंड ।
बाघाइट षल बल परी तोपै करहु प्रचंड ॥३११॥

छंद

धाल तोपं तवै, काल रूपं सवै,
धूर धांनी घली, भूम सबरी हली ।
गौर संकर चली, मंत्र सैना दली ॥
तामिया घालियं, अरिनकौ कालियं ।
विज्जै दल छुट्टअं, अरिन गढ़ फुट्टयं ॥
महा कालकाइयं, रनं सत्र षाइयं ।
मुवारष्ष फत्तैं, षलंकरै लत्तै ॥
चलै धूम रेषा, मनौ काल भेषा ।
लगी लाग ऐसी, घनं गर्ज तैसी ॥
नभं धूम छायौ, न भुमं दिषायौ ।
मचौ अंधिकारं, नगं नाग हालं ॥

षलं षौम षंनै, चलैं तैं प्रयंनै ।
भयौ जुध्ध जोरं, नहीं अंग मोरं ।।३१२।।

छप्पय

जंत्र जोर इम घलहि हलहि अरि कोट दुर्गवर ।
फते मुवारष घूम रहौ आकास भूमि भर ।।
घलत विजै दल दपट झपट पलषौमन षाई ।
तडफ तांमिया चलहि पमारन काल दिषाई ।।
घूम रेष अरु काल का देष गंडपति षाइ षम ।
अंतौ नष लीया पीरपां घालत है लुकमांन सम ।।३१३।।

दोहा

छुटत जंत्र गोला विकट झपट लगत अरिकोट ।
कपट रूप गंद्रप सुभट लरत वधाइट ओट ।।३१४।।

छप्पय

घलतवांन जंबूसुतुपक तुंगन जहँ छुट्टव ।
गढ़ी कोट ग्रह श्रंग सरित सूरन तन कुट्टव ।।
गिरत वीर घुमाइ झिरत श्रौनित तन नीरह ।
करत नृत्य चवसट्ट फिरत रन सागर तीरह ।।
पलचर ग्रहार किलकार जहँ गवर डमरु डिम डिम करहिं ।
हर हरष हरष सूरन परष लेत मुंड नंदी भरहि ।।३१५।।

दोहा

लेत मुंड हर हरष कै भरत नंद गन सोइ ।
देत असीसैं सरन पारीछत जय होइ ।।३१६।।

छप्पय

देष पसर गंधर्प सर्व समूहाइ-नटेरहि ।
होहु वीर हुसयार चहूँ दिस कौ मन फेरहिं ।।
चली वंदूषन जोर झोर पर एकहि वारहि ।
मनौ लढ़ाकिन अगि दई घर मार मझारहि ।।
वरषंत वांन जैंह प्रलय सम वोरांइन गोली गिरहिं ।
काइर कपांइ पछिलांइ रन सूर वीर संम्हमुरहिं ।।३१७।।

छंद

जय चंद्र हंस बुंदेल बीर, अरु कुंवर ईस्वरीह गम्हीर ,
वँगराकमोद श्रीधर विचार, नन्ने पमार संगुवौं वार ।
लोधीसु अनी रह वीर वांन, कछु सूर अवर ठाड़े प्रवांन ।।
कहि चंद्रहंस सुन अनी राव, तुम जंग रंग जांनत प्रभाव ।
सुन कै सु अनीरा बोल वांन, अव आप समर कौ हो सुजान ।।

करियें जु पसर कहि हर कहंत, बाघाट ग्रौर बट्टह लहंत ।
चहुं ग्रोर पसर इमि भई जौर, गढ़ तैं बंदूष की परी झोर ।।३१८।।

सोरठा

लई वघाइट घेर भई पसर चहुँ ग्रोर तैं ।
गंध्रप चक्रत हेर बडगैयां भागे सबै ।।३१९।।

छंद मोतीदाम

नरसिंघ गड़प्पत बीर सबै ।
सुकरौ विउनापति जोर तबै ।।
लड राउककरवई वार जहां ।
संग दूलह जू भट ग्रौर तहां ।।
नथनेस तिलोक दिमान बली ।
मदनेस हरीसिंघ सत्रु दली ।।
ग्रतिरैंटहि वार बुंदेल पिले ।
देउरी पति वीर पहार ठिले ।।
तहं सारह दूरष डोरन मैं ।
सब स्वामित काम धरें मन मै ।।
बकुवाँपति सिंघ गुमान भिरै ।
सुग्रपरबल म्याजुव जुध्ध करैं ।।
सब वीर बुंदेल भिरैं रन मैं ।
भट मारत हैं ग्ररि के गन मैं ।।
सुंवरा पति वीर पमार लरै ।
सब स्वामिन कामहि चित्त घेरै ।।
सैन्यापति चांमुंडराइ जहाँ ।
विरदैत दिमानवुषेस हां ।।
तिहि संग सुभट्ट सुवंध पिले ।
ग्रड गंद्रप के भट जाइ मिले ।।
सिंघ देवपौरु साव लेरावल से ।
सग सामल षेतह सिंघ धसें ।।
लष दंगल मंगल रूप बली ।
गड़ गंद्रप की तहँ सैन दली ।।
पतिवारयमार उगो रहि के ।
तिनके भट गंध्रप पै वहके ।।
रन रंग करई ग्रहवार करै ।
भिर गंध्रप सूरन प्रान हरैं ।।
कहिकैं रुच वार उदोत तहां ।
तिनकंद सुवंधव वीर जहां ।।

अरगंज सुश्रंगन कोट चड़े ।
भुज बल्ल वली भुज बांह बड़े ।।
परवत्त विल्हारिय वार लरै ।
बड़गैयन ऊपर सार करै ।।
सब वंघु सुभट्ट सुढांक न कै ।
लर सूर लुहारिय सांषन कें ।।
ततकाल तिहैयन गोल चड़ो ।
गड़ गंद्रप सूरन पैंन अड़ो ।।
भट भीर पिरौ नहवार धनी ।
वरसग्रन की जिम अग्र अनी ।।
सज सर्व कुमरंहिवार लरैं ।
षल के दलषंडह भूंम भरैं ।।
भिरसैंगुअवार पमार तबै ।
अरिके गड़ कोट चड़े जु सबैं ।।
लरियौ रन चौकहवार जहां ।
मलियापुर वीर धंघेर तहां ।।
ललकार सुसांउतसिंघ पिलौ ।
तिहि संग सबैं वर वंध ठिलौ ।।
भिरियौ जंह नाउलीवार वली ।
दविया दुलही पति सत्रु दली ।।
सब सूर फतेफुर के बढ़ कै ।
लर श्रंग सुऊपर यौ चढ़िकैं ।।
गड़ कन्हर सूर दलैं अरिकौ ।
अरि घाइल घूम गिरैं धर कौ ।।
जहु इंद्र गड़ी भट भीर बड़े ।
गड गंद्रप के ततकाल चड़े ।।
रन कूरम लाल सुभट्ट लरें ।
जितवार की वांन भुजांन धरैं ।।
भिरसैंगर गौर पढ़ाररनं ।
किसुना तिल पाइक मोद मनं ।।
जुर जालिम जंग जवार जहां ।
पिपरैं यह करछुल सूर तहां ।।
चहुवांन, टड़ैया, बैस, बली ।
कर्रायति सैयद सत्रु दली ।।
रन मस्त सुपंन्नीयवाय जहां ।
सब सेष पठांन पिले सुतहां ।।

वड़गुज्जर गूज्जर सूर भले ।
भिर धार पमारन सत्रु दले ॥
दब राज मरोही जट्ट जहां ।
रन भींम भड़ैरहा सूर तहां ॥
लर लोधह जोधह नागिल है ।
बँगरा अरु दउअन के दल है ॥
भिर दउअह झालहजीत वली ।
गड़ पैं चड़ कैं अरि सैंन दली ॥
भिर सूर सुभट्ट अनेक जहां ।
लर स्वामित कारज सर्व तहां ॥
सिकदार दिमान लरैं रन मैं ।
जय वंछित स्वामित की मन मैं ॥
चहुँ ओर बघाइट कौझिलयं ।
बड़गैयन पैं सुनही झिलयं ॥
गड़ श्रंगन कोट चड़े भट हैं ।
करैं गंद्रप सूर दहवट्ट हैं ॥
घहरात प्रलै घन जंत्र जहां ।
भर भार बंदूषन की सुतहां ॥
घन सेल सनमुष सूर सहै ।
तरवारन सत्रुन सैंन दहै ॥
दुहुँ दींन तहां रन दिष्षत है ।
जन भारथ पारथ पिष्षत है ॥
इक सिंगन सांग लियैं करमैं ।
अरि मार गिरावत है घर मैं ॥
कहुं सूर सनंमुष हुंकत है ।
भज कैं रन काइर संकत है ॥
बँध लुथ्थन की जहँ पार गई ।
भर श्रोनित वारत जंग भई ॥
जंह जंमुष मीन विराजत है ।
कर कंज सनालन राजत है ॥
रहे केस सिवाल सुछाइ जहां ।
मच आमिष की बहु कींच तहां ॥
डरि ढाल सुकच्छप रूप मडें ।
बकपंत सुकीरत सौभ मड़े ॥
पय कारिय पंजर मंजु पनी ।
जँह सोहत जुग्गिन नारि धनी ॥

गिरिजा गिरिजापति गावत है ।
हँस नारद वीन बजावत हैं ।।
गन मुंड सकेलहि ढेर करें ।
पट आंनन ते फिरें बैल भरें ।।
लष नंदिय श्रौनित धार बहै ।
गज आंनन षैंचहि डोर गहै ।।
पल षाइ सुषंत छके षग है ।
मुष अंतन दव्व उठै मग है ।।
फिर भूत पिसाँच प्रमोद भरे ।
नभ ऊपर देव विमांन अरे ।।
वरती सुवरां गन सूरन कौ ।
तन साज करें मुष नूरन कौ ।।
अदभुत् सुजुध्ध दिषाइ परौ ।
सुबघाइट ऊपर सार झरौ ।।
रस वीर सुरौद्र भयान भयौ ।
करुनां अदभुत्त विभस्त ढयौ ।।
रस हांस सुसांतलषौ सुजहां ।
कर पंचम सूरन जुध्ध तहां ।।३२०।।

दोहा

चड बघाइट दौर कै पंचम सूर समथ्थ ।
बड़ गैयन के उप्परह करे जु बड़कै हथ्थ ।।
षड़े दिमान निमांन ढिग बड़ें स्वांमयन चाइ ।
अड़े न कहूँ आड़े सुभट चड़े बघाइट धाइ ।।३२२।।
कड़े कुध्ध दल तै प्रबलमड़े जुध्ध उतसाह ।
अडे न कहु आड़े प्रबल चडे बघाइट धाहि ।।३२३।।
पंचम प्रबल प्रचंड कौ षडौ तहां सिकदार ।
जाके भुज दंडन लसत राज काज कौ भार ।।३२४।।

छप्पय

देषत पसर बुंदेल छुट्ट छक्का सुमुहाइन ।
भज्जे तज कुल लज्ज छोड़ पनही नहि पांइन ।।
रहौ चक्रत गंधर्प गर्व जिय सर्वनिघट्टौ ।
करी कहू करतार कुटम सवरौ अब कट्टौ ।।
सव बंध वधू रोदन करत कहत अभागे तूंनभर ।
मतिमंद अंध चाहत कुसल पारीछत सो वैर कर ।।३२५।।

छंद

चढौ दल साज बाघाट रन काज को सोम सुर राजते है दुचंदं ।
जहां वज्ज नीसांन घनघांन भद्दव मनौ प्रलै काल कालं कराल सुवंदं ।।
जहां बडे मुष नूर सब सूर सामंथ सज लज्ज स्यारं सुरन कौंन कंदं ।
तहाँ स्वामि केकांम रन मंड गंधर्वसोलरत बुंदेल भगवंत नंदं ।।३२६।।
जहँ प्रबल पंम्मार भुज भार सारं धरै लरै गढ़ अंगजे वीर वृंदं ।
जंहँ छुटत जंमूरसंबू सिला फुट्ट हय गिरत घुमाइ भूमैं अमंदं ।।
जंहँ भूमि आकाश धुअ्रधांम घूंधरइ झंप जोतं लगै सूर चंदं ।
तँह स्वाम के कांम रन मंड गंधर्प सौ लरत बुंदेल भगवंत नंदं ।।३२७।।
जहाँ सज्ज नंदी सुइसं चलौ गज्ज कै गवर गन संग गवरीसुनंदं ।
जंह जोर जंम्मात चवसट्ट जुगिन चली भूत प्रेतं अनेकं सुवृंदं ।।
जहाँ बैठ विम्मान व्योमं छुई अच्छ्छरांथक्य रथ मांन देषै सुरिंदं ।
तहाँ स्वाम के कांम रन मंड गंधर्प सौ लरत बुदेल भगवंत नंदं ।।३२८।।
जहाँ तोप घहरात कहरात वांन चलै स्यारह हराल सूरं अनंदं ।
जहां लाग गोला गड़ फोर कोटं अरं गुर्ज भहराइ अरके गिरंदं ।।
जहां हरष नारद्द हर सिध्ध हर हार लै कहत जयत दतिया नरिंदं ।
तहां स्वांम के कांम रन मंड गंधर्प सौ लरत बुंदेल भगवंत नंदं ।।३२९।।

कवित्त

पंचम प्रचंड सूर धाये है बघाइट कौं देष गड़पती सवैननदुचताए हैं ।
आये आये आये चहूँ ओर ते सुनाये बोल सूर समुहाये देष स्यार डगराये हैं ।।
सेल्ह तन ताये षेत षग्गनपराये काट अंग तै गिराये सो पमार विचलाये हैं ।
कूँद गढ़ छाये हनूमान तें सवाये वीर पारीछत जीत के निसांन फहराये हैं ।।३३०।।
प्रबल प्रचंड सार धार सुवरा कौ धनी पंचम के सूरन मैं सब तैउकढ़गौ ।
माचौ लोह घांन तोप तुपक तमंचन कौ तीर तरवारन दिसांन सोर मढ़गौ ।।
काइर कँपाइ सूर वीर समुहाइ लरै पोरिष प्रताप वढ़गैयन कौ कढगौ ।।
बाघाइट गंद्रप के गंज कै सुभट्टन कौ दंगल पमार गढ़ अंगद सौ चढगौ ।।३३१।।

ऋवान छंद

जहां करकै पसर परवत पै उकढ़े चढ़े मढ़े स्वांम कारज सदाइ बलवान ।
जहां दोऊ ओर जोर तीर तुपक तराकैं देष कांपै ही पै काइर भजे हैं तज ठान ।।
जहां हाँके जवांन वांके वीर ताके जंग साके करैं छाकेसफजंग धरैं धीरज महान ।
तहां माचौ घमसान सुंसान भौ दिसांन लरै दीरघ दिमान वीर वाहक ऋवान ।।
जहां वाजत निसांन प्रलै काल के समान भई कंपमान अवनी धरैन थिरवांन ।
जहां तोपन की धूकैं सुनै सूकैं प्रांन सत्रुन के वानन की मूकै पार होत तन त्रांन ।।
जहां तीर तरवारन तमंचन की जोर मची धारा अंग औनित की वही वे प्रमान ।
तहां माचौ घमसांन सुन्न सान भौ दिसान लरैं दीरघ दिमान वीरवाहक ऋवान ।।३३३।।

जहांउकठ कै दलतै चढौ गढ़ सौहौ धाइपंचम प्रचंड चंद्र हंस बलवांन ।
जहां चौका वार चाउ सौ धधेरौ इसुरी है सिंघ राजतकमोद अनी राइ मरदान ।।
जहां श्री घर समेतननै बांधै वीरता कौ नैन वैरिन विहंड फेर वीरता की ग्रांन ।
तहां माचौ घमसांन सुंन्न सांन भौ दिसांन लरै दीरघ दिमांनवीर वाहक ऋवान ।।३३४।।

जहां काली भरै षप्पर षुसाली है पियत श्रौन वीन तक पानी मुंड वैल पैलदांन ।
जहां पाइ पाइ मास जे उढात मुष ग्रंतन लै चिल्ल गिध्ध जंमुष भये हैं ग्रचघान ।।
जहां भूत प्रेत भैरव पिसांचन कौ नाच होत डौरू डिमकावे गौरी करसों भगान ।
तहां माचौ घमसान सुंन्न सांन भौ दिसान लरै दीरघ दिमान वीरवाहक ऋवांन ।।३३५।।

जहां तोपन की घाई घनघाई सौ मचाई वीर मांचौ धुंधकार धूम धुरवासमान ।
जहां थाकौ रथ भानपरै दिस्ट मै न ग्रान ससिहू के उनमान स्यार कंपै भयमान ।।
जहां वंदीजन चात्रक पढ़ावत उमांह हियै वरषत वुंदवांन वरषा समांन ।
तहां माचौं घमसान सुन्न सांन भौ दिसांन लरे दीरघ दिमान वीर वाहक ऋवान ।।३३६।।

जहां पकर कै गंद्रप कौ जकर भुजांन लयौ मकर मिटार कै कियौ है पिसेवान ।
जहां टक्कर टिकैत लाह लश्कर भरौन कोउदंत दावतिनका वचाये जिन प्रान ।।
चहां वैर वधू विपति वियोग मै विहाल षड़ीं गारिदेत गंद्रप कौ ग्रोड़ै ग्रचरांन ।
तहां मचौ घमसान सुंन्नसांन भौ दिसांन लरै दीरघ दिमान वीरवाहक ऋवान ।।३३७।।

कवित्त

फौजदार पंचम कौ ग्रौज सौं ग्रकढ चढ़ौ मढ़ौ स्वामकारज भुजांन भीम गति कौ ।
सार धार गंद्रप पमार के सुभट्टन कौ कीनौ दहवट्ट हनूमान लौं सिपति कौ ।।
'श्रीधर' समेत जहाँ सूरन कौ साकौ होत देष कै तमासौ रथ थाकौ दिनपति कौ ।
मारिकें ग्ररिन-गढ़ ग्रगरा चढ़ौ है धाइ बँगरा कमोदसिंव-नंदहि दुपति कौ ।।३३८।।

कसर करी है कुल्ल काइर कपूतन नै कीनी रजपूतन नै ग्रकह कहान की ।
लीनै गहिबैरिन विहंड षंड षंड कीनै मंड ग्रांन पंचम परीछत ग्रमान की ।।
भाजे बढ़गैयां सिंघ देष कै दलीप सिंघ सांन छोढ गये वीर विक्रम के वांन की ।
ग्रसर भयौ है महइन्द्र के हिये मैयारोन सर नरेसन मैं पसर दिमान की ।।३३९।।

छंद-टोटक

चढगये भट बाघाट, गंजौ पमारन ठाट ।
लग्गी ग्रनिल ग्ररिषंड चल, ग्रमिल बहुत प्रचंड ।।
भजती फिरें ग्ररिवाल, दुष ग्रमित मन बेहाल ।
पितु वीर पति कौं टेर् कहि क्यौं न समतन हेर ।।
जित भाज वालहि जाइ, तित ज्वाल ग्रति झहराहि ।
उठ लपट झपट सुजोर, ग्ररि धाम मंचौ सोर ।।
जे हंस गजगतगौंन ते भाज तीजनु पौंन ।
सदऊँ संजोगिन वाल, पति संग रहत षुसाल ।।

तेपरी विपति वियोग, पति पुत्र पितु के सोग ।
मुष चंद निंदक सोइ, ते भीलिनी समहोइ ।।
जिन नैननलिन अमोल, बोलैं सुपरिभ्रुत बोल ।
तिन झिरत नैनन नीर, मन, जमुन धरहु सरीर ।।
देषे न काहू अंग, ते फिरत भीलन संग ।
रति-रूप रंभा जांन, देषे न होत समान ।।
भई भूत-भांमिनि बाल, कानन फिरैं बेहाल ।
गुहि सुमन बेंनी मंजु, सषियांन नित्र निज भंजु ।।
ते फिरैं विथुरे वार, तन की कछु न सम्हार ।
रोदन करैं पति, हेत गंद्रपहि गारीं देत ।।३४०।।

कवित्त

प्रबल प्रचंड महांवीर भूप पारीछत तेरे वैर बेरि-वधू विपति मै पागी हैं ।
मैन-कामिनी-सी ते रहत जामिनी में तौन भूत-भामिनी-सी संग भीलन के लागी हैं ।।
श्रीधर भनत ते संजोग मै समोइ रहैं विपति वियोग परीं परम अभागी हैं ।
चंद-मुष-वारी कंज-लोचन-निहारी ते तौपौंन तै अधिक वेग मौंन तज भागी हैं ।।३४१।।
विक्रम के वीर छोढ विक्रम कौ भाज गये लाजे है उज्यान वार जाहर जहूर जे ।
दैरी खरगापुरीन षोईवांन भाजे हैं पलेरावार षोये मुष नूर जे ।।
टांडौ लाद टोढ़ी के बमौरी के विलाइ गये चापे चिरगैया रहे कौंनूनां सहूरजे ।
भाजौ भाजौ भाजौ सब कहत पुकार करै, आये भूप पंचम परीछत के सूरजे ।।३४२।।

छंद

भज्जे सुवीर समुहाइ सर्व ।
गंद्रप पमार कौ घटौ गर्व ।।
सब कुटम काट रन में परंत ।
पंमार वधू रोदन करंत ।।
गढ़ चढ़े परीछत के जु सूर ।
ते जंग रंग कौ धर गरूर ।।
गंध्रप सुदंत तिनुका सुदाव ।
गिरवांन डार मुष षोइ आव ।।
करजोर दीन बोलौ सुवांन ।
दीरघ दिमान मम रष्ष प्रांन ।।
सिकदार तबै उर दयाधार ।
अब देउ काढ़ जीयत पमार ।।
जितवार नंद कूरंम सूर ।
ताकी सुवांह काटौ जरूर ।।
महराज आंन वाघाट मंड ।
सब सत्रु अत्र सौषंड षंड ।।

टहरी सुवाट गंद्रप गहंत ।
कुटवाइ कुटम छाती दहंत ।।
पंचम ससूर देषत बघाट ।
मनु लंक निहारत कपिन ठाट ।।३४३।।

छप्पय

श्री दिमान सिकदार ग्रांन बाघाइट मंडिय ।
गंद्रप सूरन षंड करिय चंगिय रन चंडिय ।।
वैर नैर उज्जरह सर्व गढ़पत्तिय डग्गिय ।
ऐल फैल दस दिसन सत्रु , गिरवरन भग्गिय ।।
भग्गो पमार समुहाइ सब गहि टहरी वट्टह लइव ।
वज्जत निसांन पंचम दलह जीत परीछत की भइव ।।३४४।।

सवैया

माढ़ कैं पंचम सौसठ रार विचार करौ नहिं मूढमती कौ ।
सार परैं भौ ग्रसार पमार लियौ गहि कै संग राषौ न तीकौ ।।
श्रंग दलीप वली भुज तौल कैं छोड दियौ नहिं राषौ रतौ कौ ।
विक्रमा जीत के पास गयौ कियैं गंद्रप सिंघ सुग्रांग जती कौ ।।३४५।।
जाइ कह्यौ प्रतिहारन रिंद सौ ग्रायौ पमार उताइल धायौ ।
बोल लियौ सुनकें ततकाल बिहाल लषौ मन में सकुचायौ ।।
दीनी भली महराज सलाह विपछ्छह करौ मौ कुटंब जुझायौ ।
देषि के गंद्रप सिंघ सदा महइंद्र रहे मुंह माहुर षायौ ।।३४६।।

दोहा

बाघाइट कौ षंड के ग्रांन नृपत की मंड ।
ग्राये पास दिमान के सकल सूर वलवंड ।।३४७।।
श्री सिकदार दिमान नैं सतिया टेर ग्रमान ।
बंधवाये घाइल सबै महां गुनी गुनजांन ।।३४८।।
दुजौ पप्प तर लषौ सतिया वीर ग्रमांन ।
घाइसियैं ग्रतिचाउ सौं मनौ इही लुकमान ।।३४९।।
श्री दिमान सिकदार ने सनमानैं सब सूर ।
दई सुजन जाचकन कौ वगसीसैं भरपूर ।।३५०।।
वैरि वधू भग्गी सवें पतिहित लौटी एक ।
बोलत जय महराज की किये सती कौ भेक ।।३५१।।
सुदिन मान ततवीर कर पठये भट तिहि पास ।
रच सर वैठी पतिव्रता लीनैं पति की लास ।।३५२।।
वरी ग्रगिन झहराइ कैं डगौ न ताकौ ग्रंग ।
सत्त लोक पहुँची सती लीनैं पति कौ संग ।।३५३।।

बाघाइट इक अरि वधू भई सती चित चाइ ।
पुत्र वधू दसकंध की मनु सिलोचना आइ ।।३५४।।

छंद

आये सु तवै डेरन दिमान ।
सिकदार कुंवर साहब प्रमांन ।।
सनमान सूर आदर सुकींन ।
जनजांचक तिनकौ मौज दीन ।।
तब बोले जन बाघाट जाउ ।
रहे सत्रु सदन तेहू जराउ ।।
सुनिकैं सुवीर बाघाट जाइ ।
तवु सत्रुन धांम अनिलं लगाइ ।।
लगि अनिल अरन घर कौ लषाइ ।
जनु अस्ट रूप वैठी सुआइ ।।३५५।।

छप्पय

उठिय अनिल झहराइ ज्वाल भहराइ अरिन घर ।
मनहु लंक हनुमंत फेर लांगूट कुध्ध कर ।।
सिषा वाढवा अनिल किधौं दावागिन चंडे ।
किधौं होलिका-जाल आइ गिरि ऊपर मंडे ।।
अस्ट रूप पावक किधौं सापा कपिल सराप किय ।
बंधी कि पताका अरिन-घर पारीछत परताप लिय ।।३५६।।

कवित्त

कैधौं वाड़वागिन की प्रगटी प्रचंड ज्वाल, कैधौं ए दवागिन कौ उलहत साषा है ।
कैधौं जठरागिन मंदागिन मिली है आइ कैधौं अस्ट मूरत इकठ्टी आन राषा है ।।
कैधौं जुरहोरी ज्वाल छाये हैं पहारन पै लगत गढोहिन कों काल कैसैनाषा है ।
बाघाइट गंध्रप के जरत अवास कैधौं कैधौं पारीछत भूप के प्रताप के पताषा है ।।३५७।।

दोहा

रविवारहि जीतौ समर पंचम सूर ।
करी पमारन भूम सब बाघाइट दहवट्ट ।।३५८।।
लिषी अरज महराज कौ श्री दिमान सिकदार ।
हुकुम होइ सो अब करैं भइ बाघाइट छार ।।३५९।।

छप्पय

लै अरजी चर गयव जहां पारीछत पंचम ।
दिपत मान कुल कलस भूप दूजौ नहिं जिहि सम ।।
बांच अरज नर-नाह पठै पंचम अमान जंह ।
ह्वै तुरंग असवार किलै आपुनहि गये तंह ।।

नृप नाथ सुकहिव दिमांन सौ वुलवैये दल कौ सुभ्रब ।
सफि जंग चाह जो फिर करहि सजा देहुं सुतब ।।२६०।।

कुंडरिया

तब सुदिमान श्रमान कह कह गंद्रप बाघाट ।
तव प्रताप महराज बहु दले इंगलन ठाट ।।
दले इंगल ठाट जाट कुंजर भये मेलै ।
भाऊ श्रंबा संग लरे नव मास सुमेलै ।।
पारीछत नरनाह जतुय सूर सजत तब ।
दसहु दिसां डग मगत ऐल श्ररि पुरन परत तब ।।३६१।।

कवित्त

सोपे कोट सत्रुन के पांनिप श्रपार भार पोषे वसुधा मैं जस जालन के झूके हैं ।
रोके जिहि गौन बढ़ि वागिन के वारिधि में दावागिन दाव कै दिगंत मुष सूके हैं ।।
श्रीधर भनत महांवीर भूप पारीछत मारतंड चंड तै प्रचंड चंड हूके है ।
व्यापै नव षंड मै उमंड बलवंड वीर महांराज रावरे प्रताप के भूवेके हैं ।।३६२।।

दोहा

तिथि श्रस्टम रविवार कौ वाघाइट भई कांम ।
ससि वारह नौमी सुतिथ षुदवाये श्ररिघांम ।।३६३।।

छप्पय

श्री दिमान सिकदार कुंवर साहब मिलकैं तब ।
डेरन डेरन जाइ सूर सनमान कियौ सब ।।
कर राजी भट भीर तबै डेरन कहि श्राइव ।
नृपत षास दसषत्त पास रुक्का तहँ ल्याइव ।।
रुक्का दिमान जब वांच कै कही दिमान सिकदार कौ ।
सिकदार दिमान पयान कर दसमी मंगलवार कौ ।।३६४।।

छंद

चलौ सुभौम वार कौ दलीप नग्र थानियं ।
बघाट श्रान मंड कै प्रचँड श्री दिमानियं ।।
सुभट्ट जंग जीत कै चले सुधांम कौ सबै ।
निसांन घोर वज्जियं गड़प्पती लजे सबै ।।
तरे सबै सुबैतबै वढे सुगांउ श्राइयौ ।
उजार वाटका सबै सुभट्ट सौ मिलाइयौ ।।
जहां मुकांम कौ करौ निसा रहे श्ररांम सौ ।
सदा जुझार वीर धीर वंध सर्व कांम सौ ।।
तबै दिमान सज्ज कै चले सुवुध्ध वार कौं ।
उनाउ श्राईयौ तबै तरे पहूज धार कौं ।।

गऐ ब्रह्म धांम कौ दरस्स सो तहाँ भये ।
दुजन्न दांन देतेहां प्रसन्न ब्रंह्म सो भये ।।
भये सवार वीर सो दलीप नग्र आईयौ ।
गये सो राज हार को नृपाल ता मिलाईयौ ।।
कदम छिये दिमान नै निगाह अग्र राषियौ ।
तबै सुपांन जोर के अरज्ज वीर भाषियौ ।।
प्रताप आपके सवै सुसत्रु जंग षंडियौ ।
बघाट आंन फेर कै अदंड वीर दंडियौ ।।
तबै दिमान कौ नृपाल पास आसनं दई ।
बघाट जंग रंग की सुवारता सबै भई ।।३६५।।

दोहा

करी नजर सिकदार नै नृपति लई मुसक्याइ ।
आय निकट टेरे तबै बैठारे सुष पाइ ।।३६३।।
गये किले कौ नृपति जब तहां अमान दिमान ।
सँग सिकदार दिमान गे मिले दिमान दिमान ।।३६७।।
कही अमान दिमान नै जीतौ गढ़ सफजंग ।
नृप प्रताप गढ़ चढ गये सूर सबै बजरंग ।।३६८।।

कवित्त

कहत दिमान महाराज सौ प्रवान वात जाहर जहान में बघाइट है थापसौ ।
गंद्रप गनूर मगनूर गढ़पती धर धसे गढ़ सबै आइ बलके अमापसौ ।।
डगरे पसर देष अगरेलरे न कोइ विगरे पमार भूप विक्रम के पाप सौ ।
कड़े सूर उकड़ मढ़े है स्वाम कारज में अढ़े नहीं बीच चढ़े रावरे प्रताप सौ ।।३६९।।

दोहा

तब नृपाल बोले वचन यह गत ईश्वर आइ ।
जो जैसी करनी करै सो तैसौ फल पाइ ।।३७०।।
पारीछत पंचम प्रबल सनमानै सब सूर ।
हय अंबर लाषन नगद दई मौज भरपूर ।।३७१।।
श्रीधर दीनौ नारियर नृप सौं कहौ वषांन ।
बाघाइट मैं पुल गई तीनौं बात प्रमान ।।३७२।।

कवित्त

वंकट मवास तौ पमारन कौ वास जहां सुजन प्रगास जग उद्दित कहायौ है ।
तापर पनाह ओड़छे कौ नरनांह भयौ सकल गढ़ोही ते गरूर मन भायौ है ।।
सरिता पहार मध्ध बाघाइट छार भई विधि नै विचार तीनौ रूप दरसायौ है ।
पाय महे इंद्र कौ प्रताप श्री परीछत कौ स्वांमयन पूरन दिमान कौ दिषायौ है ।।३७३।।

प्रबल प्रचंड महावीर भूप पारीछत तेरे तेज पुंज के प्रताप बिहरत हैं ।
धाकदार धौकल धरा मैं धरपत्तिन कौ धौंसा की धुकार सुनैं धीर ना धरत हैं ।।
श्रीधर भनत बजरंग ज्यौं उमंग वीर रंग सुभ साही जुर जंग मैं करत हैं ।
रावरे के बैंद्र वारे धांमन को छोड़ छोड़ ओढ़ ओढ़ ओढ़नी दरीन में दुरत हैं ।।३७४।।

दोहा

संबतु दस अरु आठ सत तेहत्तर जांन ।
माधव सुकला अष्टमी गंद्रप छोड़ौ थांन ।।३७५।।
सुभट सुसज पंचम सुजस कहौ सबै परताप ।
श्री धर कवि चाहत विजै पारीछत छाप ।।३७६।।

इति श्री पारीछत राइसौ संपूर्न । मिती अघन सुदी १० गुर संवतु १९७१
लि० लाला नाराइन दास कनौटावार की ।

दोहा

जैसी प्रति पाई हती, तैसी लई उतार ।
भूल चूक सब माफ कर, लीजौ सुधर सुधार ।।

जिस किताब से यह नकल की गई, वह गलत लिषी थी, तिससे जो इसमें कुछ गलती रह गई सो वो सुधार लैबी । फलत ।।

जे० पार्थसारथि

तमिल साहित्य में भक्ति-परम्परा का स्रोत

प्रस्तावना

तमिल प्रदेश को 'द्राविड' और तमिल वाणी को 'द्राविड-भाषा' कहने की प्रथा बहुत पुराने काल से चली आ रही है। सम्मिश्रित द्राविड तथा आर्य, जातियों की अविभाज्य देन ही भारतीय संस्कृति कहलाती है। अगर आर्य सभ्यता का उज्ज्वल दर्पण संस्कृत है, तो द्राविड़ संस्कृति की यथासाध्य झलक देनेवाला आइना तमिल ही मानने योग्य है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम—इन चारों परिमार्जित द्राविड भाषाओं में यह तमिल ही है जो अन्य सगोत्र भाषाओं की तरह संस्कृत से पूर्णतः प्रभावित नहीं हुई है और अपनी मौलिकता बनाये रखकर, मूल-द्राविड वाणी तथा संस्कृति का पर्याप्त परिचय भी देने में उपयोगी सिद्ध हुई है। कदाचित् इसी आशय से श्रद्धेय चिंतामणि देशमुख, डा० सुनीति कुमार चार्टुज्या प्रभृति विज्ञमंडल आजकल कहते आ रहे हैं कि भारतीय संस्कृति के सर्वाङ्गीण अनुशीलन के लिये संस्कृत का पठन-पाठन जितना आवश्यक समझा जाता है, उतना ही वाञ्छनीय मानना चाहिये प्राचीन तमिल साहित्य का गहरा अध्ययन भी।

मौलिकता के साथ-साथ, तमिल की अपनी विशेषताएँ हैं—उसकी अत्यन्त प्राचीनता, संपन्नता तथा विविधता। इन बातों पर न केवल तमिल भाषी लोग बल्कि सब भारतवासी गर्व कर सकते हैं। तमिल का समस्त पुराना साहित्य कविताबद्ध रूप में मिलता है। परिस्थिति तथा समय के अनुकूल, तमिल कविता में रस-वैविध्य देखने में आता है। तमिल साहित्य के विविध काल-विभागों में प्रेम, वीर, करुण, आदि रसों की प्रधानता समय-समय पर रहते हुए भी, उन सब की पृष्ठ भूमि को उर्वरा बना देने वाली एक प्रवाहमयी भक्ति-धारा स्पष्टतया परिलक्षित होती है। 'भक्ति द्राविड़ उपजी'—यह उत्तर-भारत में एक सर्व विदित लोकोक्ति है। पर यह दक्षिण के केवल उस 'भक्ति-आंदोलन' की ओर संकेत करती है, जिसमें प्रकट रूप से 'आलवार' तथा अन्य सन्तों ने अपने दिव्य अनुभूतिमय गीतों से जनता को मंत्र-मुग्ध किया था। यह समय करीब ई० छठी शताब्दी से दसवीं तक का है। परन्तु इस से अनेक शताब्दियों के पहले ही तमिल साहित्य में, उस के प्रारंभिक काल में ही भक्ति की प्रतिष्ठा हो

चुकी थी, तथा आराध्य देवी-देवताओं की उपासना-पद्धतियों का पूर्ण विकास हो चुका था। तमिल साहित्य के हजारों वर्ष के महान् इतिहास में यह भक्ति-धारा उत्तरोत्तर पुष्टि पाकर कैसे एक अखण्ड प्रवाह के रूप में बहने लगी—इसका थोड़ा-सा परिचय प्रस्तुत करने की चेष्टा यहाँ की जाती है।

तमिल साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. संघकाल (ई० पू० ऐतिहासिक काल के पहले से ई० ५०० तक)
२. भक्तिकाल (ई० छठी सदी से दसवीं तक)
३. काव्यकाल (ई० ग्यारहवीं सदी से तेरहवीं तक)
४. व्याकरण तथा टीका काल (ई० चौदहवीं सदी से पंद्रहवीं सदी तक)
५. 'लघु प्रबन्ध' काल (ई० सोलहवीं सदी से उन्नीसवीं तक)
६. आधुनिक काल (ई० बीसवीं सदी से)

इस काल विभाजन का मुख्य आधार, हर एक कालविशेष में प्राप्त ग्रंथों की प्रचुरता मात्र है। प्रथम तीन कालों में तमिल साहित्य क्रमशः श्रीवृद्धि पा रहा था और समाज, एवं कला दोनों में एक स्वच्छ अनुभूति की झलक विद्यमान थी। यह बाद के समयों में रूढ़ि-बद्ध नियमों को पालन करने में नष्ट-सी हो गयी। तमिल लोगों का सौभाग्य यह रहा है कि अपने इतिहास के आरंभ से निकट काल तक, उनकी स्वतंत्रता प्रायः बनी रही और एक बिल्कल स्वतत्र सामाजिक वातावरण में कविताबद्ध भावनायें फूली-फलीं।

संघकाल की प्रकृति-पूजा

संघकाल में संघपूर्व प्रारंभिक काल भी सम्मिलित किया गया है, जिसका सूत्रपात ईसवी पूर्व अनेक शताब्दियों के पहले कल्पनातीत प्राचीनता के गर्भ में विलीन हो जाता है। इस साहित्य का लक्षण-ग्रंथ, जो 'तोल्काप्पियम' कहलाता है, स्वयं ई० पू० ४ सदी का माना जाता है।[१] कइयों के अनुसार इसका काल ई० पू० ३५०० भी हो सकता है।[२] किसी लक्षण-ग्रंथ से बहुत पहले ही उसके लक्ष्य बननेवाले साहित्य का आविर्भाव स्वभावतः होता है। स्वयं 'तोलकाप्पियम' के रचयिता ने स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने जो सिद्धान्त प्रकट किये हैं, वे पूर्ववर्ती साहित्यज्ञों द्वारा संकेतित या प्रवर्तित ही हैं। 'तोल्काप्पियम' की पूर्व-कालीन प्राचीन-से-प्राचीनावस्था का द्योतक तमिल साहित्य तो आज बिल्कुल नष्ट हो गया है, फलतः तत्कालीन समाज में कौन-कौन सी भक्ति की धारणायें थीं, उनका केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

फिर भी 'तोल्काप्पियम' के पश्चात् का जो संघ-कालीन साहित्य उपलब्ध है, उससे हम पता लगा सकते हैं कि प्राचीन तमिल या द्राविड़ लोग प्राकृतिक सौंदर्य में बहुत रमते थे। अत्यंत स्वच्छ मन से किसी जटिल चिंतन से अस्त-व्यस्त न होकर ये अपना

१. S. S. Bharathi : Age of Tolkappiam
२. Swami Vedachalam: Saivism, The Tamils' Ancient Religion, p.v.

जीवन बिताते थे। अधिकांश पद्य रचना का विषय, प्रेम तथा वीरता जैसी इहलौकिक बातों पर ही आश्रित था। इस काल के 'एट्टुत्तोगै' (आठ संग्रह) तथा "पत्तुप्पाट्टु" (दस काव्य) नामक दो कविता संग्रह जो आज प्राप्त हुए हैं, इस तथ्य के साक्षी हैं। तमिल काव्य-शास्त्र के अनुसार केवल दो मुख्य विषय कविता में गाये जाने के उपयुक्त माने जाते थे—एक **'अहम्'** (आंतरिक), जिसमें प्राय: नायक नायिकाओं की प्रेम-संबंधी बातें होती हैं, और दूसरा **'पुरम्'** जिसमें प्रेमविहीन लौकिक बातों का विवरण है। समस्त पद्य रचना इन दो विभागों के अंतर्गत आती थी। भक्ति भावना के लिये इस साहित्य में **'पुरम्'** के अंतर्गत पर्याप्त स्थान मिला था। प्राकृतिक आनंद में मग्न एक निश्चिन्त जीवन दर्शानेवाली इस कविता में प्रकृति की असीम शक्तियों तथा अज्ञात विशेषताओं के प्रति वंदना-भाव दृष्टि गोचर होता है जिस भाव विशेष को हम एक "प्राकृतिक धर्म" (natural religion) भी कह सकते हैं। अन्वेषकों का मत है कि द्राविड़ों के बृहत् देवता थे 'शिव'। इनके अतिरिक्त छोटे-मोटे अन्य ग्राम-देवता भी थे। वृक्ष, वन, पहाड़ आदि वस्तुओं में रहनेवाले मंगलकारी तथा अमंगलदायी देवताओं की सुन्दर कल्पनायें इस साहित्य में यत्र-तत्र मिलती हैं। इन देवताओं के लिये हृदयस्पर्शी प्रार्थनायें होती थीं तथा बलिदान भी होता था। उदाहरणार्थ 'कुरुंतोकै' नामक प्रेम गीत संग्रह में एक नायिका कह उठती है—[३]

"कहते हैं कि जो भयभीत करने वाला देवता हमारे गाँव के मध्य एक बड़े वृक्ष में रहता है वह क्रूर व्यक्तियों को दंड अवश्य देगा। मेरे प्राणनाथ तनिक भी क्रूर नहीं यद्यपि वे मुझे छोड़कर अपने काम पर चले गये। उनका दोष तो बिल्कुल नहीं भले ही अब मैं पीली हो गयी हूँ। मेरा ही अपराध है कि अपनी संस्मृतियों के कारण मेरे कंधे दुर्बल होकर झुक गये हैं"।

तमिल भूमि के पांच भाग और इनके अधिदेवता

ऐसी प्रकृति-पूजा संभवत: 'तोल्काप्पियम' के पूर्व चल रही होगी। 'तोल्काप्पियम' के रचना काल के निकट या उसके कुछ पहले ही द्राविड़-आर्य संस्कृतियों का एकीकिरण हुआ होगा क्योंकि वैदिक देवी-देवताओं की आराधना भी इस ग्रंथ में आ चुकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृतिक आनंद मात्र से युक्त यह स्वाभाविक भक्ति क्रमश: वैदिक उपासना-पद्धति से संवलित हो एक भक्ति-परिपाक के रूप में परिवर्धित हुई। पुराने देवता-मंडल में परिवर्तन हुआ और नये देवता भी आये। इस प्रसंग में कई विद्वानों का विचार है कि वैदिक संस्कृति का दक्षिणा-पथ में आगमन किसी तरह अगस्त्य ऋषि से संबद्ध होगा। दक्षिण में प्रचलित इतिवृत्तों के अनुसार, अगस्त्य मुनि अपनी मंडली के साथ दक्षिण आए, और यहाँ शिवजी से तमिल भाषा का उपदेश पाकर उसके आदिप्रवर्तक तथा सुधारक के रूप में 'पोदियमलै' कहलानेवाले मलयपर्वत पर विराजमान हो गये। उनके द्वादश मुख्य शिष्य थे जिनमें 'तिरणदूमाग्नि' ऋषि ने जो 'तोल्काप्पियनार्' भी कहलाते हैं, अपने गुरुकृत 'अगस्त्यम्' नामक व्याकरण के अनुरूप,

---

३. कुरुन्तोकै (पद्य ८७)

'तोल्काप्पियम' नामक और एक व्याकरण बना दिया। 'अगस्त्यम' तो लुप्त हो चुका है। केवल 'तोल्काप्पियम' आजकल उपलब्ध है। ऐसी परिस्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि इसमें वैदिक भक्ति का पुट दृष्टिगत हो।

इस महान व्याकरण-ग्रंथ में, तमिल प्रदेश के जलवायु के अनुसार चार भू-भागों का उल्लेख है जो काव्य के लिये उपयुक्त पृष्ठ भूमि हो सकते हैं और जिनके लिये अलग-अलग अधिदेवता भी रखे गये हैं। ये हैं—**मुल्लै** (वनभूमि) **कुरिञ्जि** (पर्वत भूमि) **मरुदम** (ग्राम के आसपास वाली खेती की भूमि) तथा **नेय्दल** (समुद्र की किनारे वाली भूमि)।[४] वन भूमि के स्वामी '**मायोन**' अर्थात् श्यामरंग वाले 'तिरुमाल' या विष्णु भगवान समझे जाते थे। पर्वत प्रांत के देवता थे '**शेयोन**' अर्थात् गोरे रंग वाले 'मुरुगन' या कार्तिकेय स्वामि। गाँव की बस्तियों के समीपवर्ती खेती की भूमि के अधिपति थे वर्षा भेजने वाले **इंद्रदेव**। समुद्र तटवर्ती भाग के अधिनायक '**वरुणदेव**' माने जाते थे। इन चारों भू-भागों के अलावा, पश्चात्‌वाले साहित्य में एक पाँचवीं भूमि का भी उल्लेख है। यह "पालै" (मरुभूमि) है और इसकी अधिष्ठात्री "**कोट्रवै**" या कालिका देवी मानी गयी है। तमिल के प्रकाण्ड विद्वान तिरु० वि० कल्याणसुन्दर मुदलियार मानते हैं[५] कि तमिल नाडु के पाँच भू-भागों में द्राविड़ लोगों की मौलिक कल्पना के अनुसार ही पाँच देवताओं का अस्तित्व धीरे-धीरे साकार हुआ और इन देवताओं के साथ आर्य देवताओं का संबंध बहुत पीछे जुड़ पाया था। इस मत को शतशः सत्य मानना निर्विवाद नहीं है पर आंशिक सत्य अवश्य हो सकता है।

मुल्लै या वनभूमि के आराध्य देव 'मायोन' को प्रथम स्थान देकर गौरवान्वित किया गया है। 'नीलमेघ द्युतियुक्त भगवान'—यह है 'मायोन' शब्द का रूढ़िगत अर्थ। नीलमेघश्यामल रूपी श्री विष्णु ही इस शब्द से प्रतिपादित दिव्यपुरुष हैं। तमिल प्रदेश के मुल्लै (वन) प्रांत में गोचारन के व्यवसाय में संलग्न 'आयर' कहलाने वाले ग्वाला लोग ही प्रायः रहा करते थे। विष्णु के अवतारों में श्रीकृष्ण थे, जिनकी अनंत मधुर लीलायें वन-भूमि में ही घटित हुई थीं, इन लोगों के अत्यंत प्रिय बने। 'कण्णन' (कन्हैया) के प्रिय नाम से तमिल लोगों द्वारा अभिहित इस कृष्ण के बारे में ऐसी अनेक सुन्दरतम कथाओं का पृथक उद्गम तथा विकास दक्षिण में हुआ, जो उत्तर की कथाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। ये कथायें नाटक रूप में अभिनीत भी होती थीं। उत्तर में 'राधा' सहित 'श्याम' का प्रचलन है, पर दक्षिण में 'नप्पिन्नै' कृष्ण की प्रिया होती है, जिसके पाणिग्रहण के लिये 'कण्णन' को अपने पराक्रम दर्शन के रूप में सात उत्तेजित ऋषभों को दबाकर विजय प्राप्त करनी पड़ी।

यद्यपि तमिल भूमि में 'मायोन' या 'तिरुमाल' की कल्पना पृथक् रूप से जाग उठी थी, तो भी प्राप्त संघ-साहित्य से विदित होता है कि वैष्णव धर्म विशेषकर भागवत मत एवं अवतारवाद की प्रतिष्ठा, तथा विष्णु-नारायण-वासुदेव-कृष्ण को एकीकरण, ईस्वी

---

४. तोल्काप्पियम, पोरुलधिकारम, अहम्, ५ सूत्र।

५. "तमिल नूल्गलिल् बौद्धम," (पृष्ठ ११-१२)।

पूर्व की सदियों में ही तमिल प्रदेश में संपन्न हो चुका था। 'शिलप्पधिकारम' 'परिपाडल' 'पत्तुप्पाट्टु' आदि संघं पद्यरचनाओं में लक्ष्मीदेवी भूपित विष्णु भगवान के श्रीरंगं, तिरुपति, कांचीपुरं आदि पुण्य क्षेत्रों में संस्थित देवालयों का उल्लेख है। इनमें वैष्णव आगम विधियों के अनुसार स्थापित गरुड़ ध्वज-स्तंभ संकर्षण-वासुदेव-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध व्यूहादियों की शोभा वर्णित है। तमिल अन्वेषकों के पथप्रदर्शक वयोवृद्ध विद्वन्मनीषी श्री० मु० राघवैयङ्गार ने संकेत किया है कि संकर्षण वासुदेवों की पूजा संघकाल में व्यापक थी और हो सकता है कि 'तोल्काप्पियम' में श्री बलराम के ध्वज वर्णन के रूप में एक अलग सूत्र भी रहा हो, यद्यपि वह आज अलभ्य है।[६] संघकालीन ग्रंथों में पवित्र जीवन बितानेवाले वैष्णव संन्यासी लोगों का भी वर्णन मिलता है, जो प्रतिदिन पत्थर पर पीटकर धोये हुए काषाय वस्त्र पहना करते थे, त्रिदंड हस्त में लिया करते थे और जिनका नाम पगवर' या 'भागवतर' विख्यात हो गया था।[७] अनेक ऐसे राजा तथा कवि श्रेष्ठ भी संघकाल में विराजमान थे, जो अपना तन-मन-धन नीलमेघद्युतियुक्त भगवान को ही अर्पित कर देते थे।

'कुरिंजि' या पर्वत भूमि के स्वामी, 'मुरुगन' नाम के देवता तमिल लोगों की विशिष्ट अद्भुत सौन्दर्यमय कल्पना-सृष्टि मानी जाती है। 'मुरुगु' शब्द से सुगंध, दिव्य तेज, बालकपन, सौंदर्य—इन चार गुणों का बोध होता है। लाल वर्ण से चमकने वाला शरीर; नितनूतन यौवन की अनुपम सुषमा; देवताओं में एक अपने ढंग का शक्तिमान रूप; सौंदर्य तत्त्व साकार करने वाला सान्निध्य—ये इनके अत्यन्त चित्ताकर्षक अंश माने जाते हैं। मुरुगन के अतिशय वीर स्वरूप के सूचक 'दंडायुधन', 'दंडपाणि', 'वेलवन', 'वेलायुधन' आदि नाम तमिल प्रदेश में अधिक प्रचलित हैं। कानों में कुंडल, बाहुओं में वलय, पाणि में दंडायुध, शरीर पर अरुण-वर्ण-वस्त्र—इस वेश भूषा सहित सुन्दर आजानुबाहु मयूरारूढ़ योद्धा मुरुगदेव कवि मनोहारी अवश्य रह रहे हैं। संघ साहित्य के 'पत्तुप्पाहतु' में सम्मिलित "तिरुमुरुगार्रुप्पडै" नामक पद्यरचना मुरुगदेव की पूजा प्रणाली, उनके छ: रमणीय निवासस्थान, तथा अन्य महिमाओं का गान करती है। 'परिपाडल' नाम के दूसरे संकलन के उपलब्ध पद्यों में आठ मुरुग भगवान की स्तुति में प्रस्तुत किये गये हैं।

'शेयोन' या 'मुरुगन' की पूजा पर्वतवासियों में बड़ी धूम-धाम से की जाती थी। 'कुरवर' नामक ये पर्वत जातियाँ स्वयं वन्य प्राणियों को मारकर खा जाने वाली थीं और स्वभावत: इनकी आराधना अपनी हिंस्रक रीति में चली थी। ये पर्वतवासी अपने प्रिय देवता के सामने मधु-माँस, दाना आदि चढ़ाकर भैंस अज आदि की बलि भी देते थे। मुरुगदेव के पुजारी ने जो पर्वतवासियों के गुरु माने जाते थे इस पूजा को चलाया था। यह हाथ में सदा भाला धारण करता था और पूजा के समय एक लाल सूत्र कलाई पर बाँधे रखता था। मंत्रोच्चारण तथा प्रार्थना-शब्दों के साथ चारों ओर फूल तथा दाना बखेरते हुए, यह एक भैंस को मार डालता था। उसके ताजे रक्त में पके चावल मिलाकर,

६. देखिये: श्री मु० राघवैयंगार: 'आराय्च्चि-तोहुति' (पृष्ठ ५४)
७. श्री. मु. राघवैयंगार, "आळ्वारगल कालनिलै" (पृ. १.)

दुंदुभि, घंटा, मृदंग, आदि विविध संगीत वाद्यों के युगपत् घोष के बीच उसे भगवान मुरुग को अर्पित कर देता था। रक्तसिंचित धान्य, रक्तवर्ण के 'कांदल्' पुष्प, पशु-बलि का रक्त-प्रवाह, इन चीजों से आवृत भयंकर वातावरण में पहाड़ी नर-नारी प्रार्थना-गीत गाकर, 'कुरवै' नामक नृत्य नाच उठते थे। पुजारी भी स्वयं 'कांदल्' पुष्प कानों में पहनकर, डमरू हिलाकर गरजनेवाले शब्दों में भयंकर तांडव नृत्य करने लगता था। 'तोलकाप्पियम' में इस तांडव-नृत्य का नाम 'काँदल्' कहा गया है। नृत्य के बीच पुजारी तथा अन्य नर-नारी भी आवेश में पड़कर मुरुग देवता के साक्षात् माध्यम भी हो जाते थे। पुजारी जो 'वेलन' भी कहलाता था, आवेश में ज्योतिषी बनकर भविष्यवाणी भी किया करता था। कहा जाता है कि निसर्गतः पर्वतवासी होने के कारण मुरुग देव भी इन भक्तों के मध्य पर्वत कन्याओं से हाथ मिलाकर स्वयं आंनदपूर्वक नाचते थे और अभीष्ट वरदान दिया करते थे।

संघ साहित्य में शेयान न केवल पर्वतवासी जनता से वन्य नृत्य तथा पशुबलि आदि से पूजित थे, प्रत्युत् मंदिरों में वैदिक ढंग में आराध्य देव भी बन चुके थे। तपस्वी ज्ञानवान् लोग भी उन्हें 'देवाधिदेव', 'शिवकुमार', 'कार्तिकेय' 'सुब्रह्मण्य' आदि वैदिक नामों से अभिहित कर उनकी सात्विक पूजा मंदिरों में करते थे। ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि द्राविड़ लोगों की अपनी सौंदर्य चेतना की मूर्ति के रूप में, 'मुरुगदेव' का आविर्भाव प्रथमतः हुआ, और अंततो गत्वा अन्यान्य वैदिक तथा पौराणिक 'स्कंद' 'कार्त्तिकेय', देव सेनापति' सुब्रह्मण्य आदि के तत्व इन्होंने धारण किये। तमिल लोगों की अपनी कथाएँ, आर्य कथाओं के साथ मिल जुल गयीं; फिर भी एकाध जगह भेद रह गया। तमिल कल्पना में 'मुरुगन' ने दो 'कुरवर' (पहाड़ी) कन्याओं का प्रेमबन्धन सार्थक समझकर विवाह कर लिया, जबकि आर्यों के 'कार्त्तिकेय' अविवाहित ब्रह्मचारी कहे जाते हैं। 'परिपाडल' के पाँचवें पद्य में एक कवि कदाचित् 'मुरुगन' के इस बहुमुखी अस्तित्व की ओर संकेत करता है। उसका आरंभ इस प्रकार है :—

"हे संहारक भगवान के पुत्र! अरुण वर्ण की ज्योति! उत्तमताओं के परम निधान! हमारे स्वामी!" कुछ इस प्रकार भयंकर रीति से मनाये जानेवाले अपने उत्सव में मुरुग भगवान का पुजारी इष्टदेव की स्तुति करता है।"

पुजारी की हिंसक पूजा तथा सीमित सगुणोपासना की उपयुक्तता पर कवि संदेह प्रकट करता है पर इसका समाधान भी स्वयं कर देता है—

"ऐसी (पुजारी की) स्तुति न सत्य है, न अनृत भी। क्योंकि आप ही इस जगत् के सर्वशक्तिमान् नियंता हैं। अपनी इच्छापूर्वक, निम्नावस्था भी धारण कर, (पर्वत—व्याधों के सामने भी) आप प्रकट हो जाते हैं। ऐसा साधारण नियम कि उच्च कृत्यों से व्यक्ति उच्चता प्राप्त करता है, या अपने जन्म से नीचता का अधिकारी बन बैठता है—यह दूसरों पर ही लागू है। आप पर कदापि नहीं। और ऐसे नियम भी आपकी पराक्रम रूपी आज्ञाओं के बिलकुल अधीन हैं।

'इंद्र' तथा 'वरुण' दोनों (जो क्रमशः 'मरुदम' (उपजाऊ खेत) तथा 'नेय्दल' (समुद्रवर्ती प्रदेश) के अधिपति थे) आर्य देवताओं से भिन्न थे या नहीं—इसे हम

निश्चित रूप से कह नहीं सकते । हो सकता है कि ये दोनों देवता, जो प्रकृति तत्वों के प्रतीक रूप में प्राचीन आर्य लोगों में माने गये थे, कदाचित् दक्षिण में प्रविष्ट हो कर, तमिल वालों से भी अपनाये गये हों । जैसे कि विष्णु तथा मुरुगन के मंदिर वन तथा पर्वत प्रांतों पर संस्थित हैं वैसे ही खेती-भूमि तथा समुद्रवर्ती प्रांतों के स्वामित्व के उपलक्ष्य में, वरुण तथा इंद्र के मंदिर वहाँ विद्यमान नहीं हैं । 'शिलप्पधिकारम' में इन्द्र के वज्रायुध के लिये एक अलग मंदिर का उल्लेख है । मकर संक्रांति के समय जब 'तमिल नाडु' में खेती-बारी की फसल जमा होती थी मेघों के स्वामी इंद्र को धन्यवाद देने के रूप में 'इंद्रविषा' (इंद्रोत्सव) मनाया जाता था । इसका रोचक वर्णन 'शिलप्पधिकारम' में मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि अट्ठाइस दिनों तक यह त्यौहार चलता था और पूर्णिमा के दिन इंद्र की प्रतिमा के अभिषेक के पश्चात् इसका विसर्जन होता था ।

'कोट्रवै' या 'कालिका देवी मरुभूमि की स्वामिनी होने के कारण, इनके मंदिर उन 'मरवर' नामक वन्य लोगों के मध्य बन गये थे, जो पथिकों को लूट-मार करके या पशु आदि संपत्ति का अपहरण करके अपना जीवन-यापन करते थे । 'काळि' द्राविड़ लोगों की कल्पना-प्रसूत मानी जाती है यद्यपि बाद में आर्यों की दुर्गा, पार्वती आदि देवियों के अंश भी उन्होंने अपना लिये । काळि की प्रतिमा अनेक प्रकार के सींगवाले हिरण पर आरुढ़ होती थी । स्वाभाविक भयानक मुख भाव के साथ-साथ उसकी सजावट भी अधिक भयदायक थी । इस भयंकर देवता के सामने प्राय: पशुबलि, विशेषत: भैंस की बलि हुआ करती थी । रक्त सिंचित चावल, माँस, सिंदूर, चँदन, विविध धान्य, खिलौने आदि पूजा के समय चढ़ाये जाते थे । जब बलिभूत पशु का खून बहता था, पुजारिन आवेश में आकर, देवता का माध्यम बनकर चिल्लाती थी । समय-समय पर इनका आशय इस तरह भी होता था—"हे 'एयिनर' (किरात) लोग ! अगर आप अपना लूट-पाट रूपी धर्म छोड़कर, देवीजी की बलि कम करेंगे, तो आपको उनके आशीर्वाद निश्चय ही न मिलेंगे । अपने कर्त्तव्य भूलिये मत ।" तमिल में काळि का नाम 'कोट्रवै' के अलावा 'ऐयै' भी है और ये सात बहिनों में कनिष्ठ मानी जाती हैं । वीर 'मरवर' जाति की आराध्या होने से एक बड़े शक्तिशाली संहारक देवता का स्थान काळि को प्राप्त हुआ था । कहा जाता है कि एक बार (दक्षिण) मधुरा में इनके मंदिर के फाटक अपने आप बन्द हो गये । पाण्डिय राजा ने इसे देवता का प्रकोप समझ कर, देवालय के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और दो ग्रामों का महसूल देवीजी की पूजा के लिये शाश्वत रूप में दे दिया ।[८]

वैदिक तथा अन्यदेवता

इन पाँच भू-भागों के देवताओं के अलावा, वैदिक देवताओं का भी उल्लेख पर्याप्त मात्रा में संघ साहित्य में मिलता है । जो पहाड़ी प्रदेश के स्वामी 'शेयोन' थे, उनके पिता शिवजी की महत्ता सदैव मान्य रहा करती थी । तमिल भाषा का मूल स्रोत किंवदंतियों के अनुसार शिवजी से ही जोड़ा जाता है क्योंकि उन्होंने अमृत-से मधुर यह दाक्षिणात्य बोली अगस्त्य ऋषि को सिखायी ताकि उसकी व्यापकता तथा परिष्कार

८. शिलप्पधिकारम, अधिकारम २३. ११३-१२५ ।

उत्तरोत्तर उन्नति पा सके। तमिल साहित्य का श्रीगणेश जिन संघों में हुआ था, उनके प्रधान सदस्य माने जाते थे 'शिव भगवान' तथा उनके पुत्र 'मुरुगन'। अनेक ऐसे गीत संघ-साहित्य में उपलब्ध हैं, जो "इरैयनार् पाट्टु" (अर्थात् शिव जी के रचे हुए गीत) कहलाते हैं। इस विषय की अनेक कथाएँ भी प्रचलित हैं जिनमें संघकालीन साहित्यसृजन के सम्बन्ध में शिवजी के सक्रिय सहयोग का मार्मिक वर्णन है। शिवजी की कल्पना तथा उनकी प्रतीकरूपी लिंगपूजा द्राविड़ मानस की अपनी सृष्टियाँ कही जाती हैं। संघ साहित्य में लिंग पूजा का अंत: साक्ष्य विद्यमान नहीं है, हालांकि आर्य पूर्व मोहंनजोदड़ो सभ्यता में इसकी उपस्थिति अनुमित की जाती है। वैदिक देवता 'रुद्र' तथा द्राविड़ देवता 'शिव' दोनों में भिन्नता है, यद्यपि कालांतर में रुद्र-शिव एक ही देवता माने गये थे, वैदिक रुद्र, मरुतगणों के स्वामी और विद्युत तथा तूफानों के अधिपति थे जब कि द्राविड़ शिव, संहार के देवता होने पर भी मंगलदायक समझे गये। हो सकता है कि वैदिक रुद्र के अस्तित्व में द्राविड़ शिव के अंश पहले से ही मिले रहे हों[6]। संघ-कालीन पद्य संग्रहों के अध्ययन से विदित होता है कि उस समय शिवजी से संबंधित पौराणिक कथाएँ देश भर में फैल चुकी थीं। त्रिपुरदहन, कैलाश पर्वत उठानेवाले रावण का गर्व भंग, अमृत मंथन के समय हालाहल विष-पान ये तीन इन में मुख्य हैं।

ब्रह्मा की पूजा, शिव एवं विष्णु की आराधना की तरह अधिक प्रचार नहीं पा सकी। तो भी उनके लिए कम-से-कम एक पृथक मंदिर आज भी नालूर नामक गाँव में विद्यमान है। कामदेव पूजने का रिवाज अविवाहित कन्याओं में वर्तमान था। मार्गशीर्ष महीने में उषत्कालस्नान नदी में करके, 'कात्यायनी' (देवी) पूजा करनेवाली कन्याओं का चित्र 'परिपाडय' में प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक देवताओं की तरह छोटे मोटे प्रकृति-तत्त्व रूपी देवताओं का भी परिचय संघ-साहित्य देता है। यह देवतामण्डल जैसा हमने संकेत किया था, बहुत पूर्वकाल से लेकर द्राविड़ लोगों से सम्मानित रहा होगा। भूत-प्रेत, वायु, सूर्य, चँद्र, नगर, नदी, पहाड़ आदि के स्थानीय देवताओं के लिये जगह-जगह पर पूजा होती थी। चोल राजाओं के 'कावेरिप्पूंपट्टिनम' में में एक 'चतुककठभूतं' का उल्लेख है जो चौराहे (चतुष्पथ) पर वास करता था तथा मिथ्यासाक्षी, पाखंडी, देशद्रोही आदि भ्रष्टाचारियों को मारकर खा जाता था। त्यौहारों के समय इस भूत को बलिदान, पोंगल (चावल की खिचड़ी) आदि नैवेद्य पदार्थों से तृप्त किया जाता था और साथ 'कुरवै' नृत्य भी हुआ करता था। उसी नगर में एक बड़ी पाषाण-वेदी थी जिसकी परिक्रमा करने से विषैले जंतुओं के काटने की पीड़ा से भी लोग निवारण पा सकते थे। ऐसी पत्नियों के, जो अपने पातिव्रत्य के लिये प्रसिद्ध हुई थीं, तथा ऐसे वीर पुरुषों के, जिन्होंने युद्ध में अपनी अपार वीरता का प्रदर्शन करके प्राणत्याग भी कर दिया था—इनके सम्मानार्थ शिलाओं की स्थापना हुआ करती थी और इन शिलाओं में मृतकों के स्मारक चित्र तथा लेख भी लिखवाकर पूजने की पद्धति चलती थी। 'तोल्काप्पियम्' में ऐसी शिलाओं की खोज, दर्शन, अभिषेक तथा स्थापना आदि का

---

6 Linguistic Survey of India, IV. p. 279.

उल्लेख है। 'शिलप्पधिकारम्' नामक महाकाव्य की नायिका 'कण्णकि' ठीक ऐसी ही पत्नी है जो कि अपने आदर्श पातिव्रत्य द्वारा पतिहत्या का बदला भी ले लेती है। महाराज 'चेरन शेंगुट्टुवन' ने इनका स्मारक बनाने के लिये हिमालय पर्वत तक अपनी सेना सहित विजय यात्रा की थी जिसमें उन्होंने कई आर्य राजाओं को परास्त कर दिया था। वे हिमगिरि की एक पवित्र शिला लेकर उसे **कनक विजय** नामक आर्य राजा के सिर पर लदवाकर लाये थे। गंगा में अभिषिक्त कराने के पश्चात् उसी शिला में पत्नी देवी की प्रतिमा उन्होंने खुदवायी थी। इस पत्नी-देवी की पूजा के लिये महाराज ने अपनी राजधानी में एक बड़े मंदिर का निर्माण भी कराया था।

उच्च धार्मिक चिंतन

हर एक जनसमुदाय में यह साधारणतः देखा जाता है कि धर्मसंबंधी व्यावहारिक आचरण और उसी धर्म के ऊँचे स्तर के विचार, दोनों के बीच न्यूनाधिक गहरी खाई पड़ जाती है। तमिल लोगों के प्राकृतिक धर्म संबंधित पशुबलि तथा आवेशनृत्य आदि के आचरण उनके उत्कृष्ट धार्मिक चिंतन से बिल्कुल भिन्न मालूम पड़ते हैं। संघ कविता-वलियों में जहाँ देवताओं की स्तुति आती है वहाँ उच्च भावों का प्रकटन प्रायः देखा जाता है। कवियों ने जीवन की शाश्वत मान्यताओं तथा शिष्टाचार के ऊँचे आदर्शों पर अनेक प्रसंगों पर अधिक जोर दिया है। विश्ववात्सल्य, जीवकारूण्य, दानशीलता, अतिथि सत्कार, जीवन की क्षणभंगुरता समझकर पुण्य कर्मों में लीन होना—ऐसी अच्छाइयों की प्रशंसा बार-बार कविता का विषय बन जाता है। तपस्वी जीवन की श्रेष्ठता पर एक कवि ने* अत्यत हृदय स्पर्शी भाव व्यक्त किया है :—

"सूर्य-प्रकाश-मंडित इस महीतल में, एक दिन में सात लोग आते जाते हैं (अर्थात् जगत् अस्थिर है)। जीवभरे इस संसार से तपस्वीजीवन की तुलना करें तो संसार तप की अपेक्षा थोड़ा-सा भी, 'सरसों' के परिमाण में भी, बड़ा नहीं ठहरता। जिन लोगों ने इस संसार की तुच्छ आशाओं का त्याग कर दिया है, उन्हें लक्ष्मी देवी कभी त्याग नहीं करती। (अर्थात् तपस्वीमनुष्यों को सब तरह की शोभा मिल जाती है) परंतु जो लोग सांसारिक सुखों का त्याग नहीं कर सकते, उन्हें लक्ष्मी देवी बिल्कुल त्याग देती हैं (अर्थात् लोक-सुख मग्न पुरुष को कष्ट ही कष्ट भोगना पड़ता है)।

न केवल सूर्य-चंद्र जैसे प्रकृति तत्त्वों पर पुराने तमिलवालों की दृष्टि केंद्रित रही बल्कि इनके ऊपर मनोवाक् के पहुँच के बाहर स्थित एक अरूपी सर्वव्यापी तत्त्व को भी वे अपना उपास्य बना सके। तोल्काप्पियम् ने इस तत्व को 'कंदापि' का नाम दिया है* और इसकी वंदना को साहित्यिक ग्रंथों का एक अंग मान लिया है।

द्राविड़ एवं आर्य पूजा पद्धतियों का संमिलन

ईस्वी सन् के पहले ही, तमिल भूमि की भक्ति-धारा द्राविड़ मानसरूपी सरोवर से उत्पन्न होकर, आर्यधाराओं से, यानी वैदिक धर्म की धाराओं से संमिलत अवस्था

*पुरनानूरु, पद्य ३५६।

*पोरूलधिकारम, सूत्र ८८।

में दिखाई देता है। संघकाल में आर्यद्राविड़ संस्कृतियों का संमिलन पूर्णतः घटित होने पर भी हमने देखा कि द्राविड़ देवताओं तथा आचरणों का अलगाव सूक्ष्म रूप से विद्यमान मिलता है। जि० यू० पोप जैसे विद्वानों की राय हमेशा रही है कि शैव मत दक्षिण का आर्यपूर्व पुरातन धर्म था जो ईश्वर, संसार, प्रकृति कष्ट और दुःख के बड़े प्रश्नों का उत्तर तमिल कविता द्वारा ढूंढता था। अनोखी पशुबलियाँ, आवेश-नृत्य, भूतपूजा और अन्यान्य तांत्रिक पद्धतियाँ इस मत की महत्ता दिखाती हुई आज भी सुदूर दक्षिण के देहातों के बीच सुरक्षित हैं। जो भी हो, अज्ञात काल से चली आने वाली प्रकृति पूजा-परंपरा पर वैदिक धर्म की छाप संघ काल में पड़ चुकी थी। कालांतर में इन दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ था। तो भी दोनों ने तमिल प्रदेश में अपने-अपने स्थान भी बना लिये थे। विशाल मंदिर बन गये थे। साथ ही जगह-जगह पर त्रिशूल, वेल (भाला) आदि आयुधों को शिव, मुरुग आदि देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित करके खुले रास्ते में छोटे-छोटे मंदिर भी बनाये गये थे। बड़े मंदिरों में शास्त्रोक्त पूजा-पद्धति चलती थी। भागवत में कथित भक्ति के प्रकार इन देवालयों में चलते थे—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मयेऽधीतमुत्तमम्॥

इस नवधा भक्ति के सुव्यवस्थित ढंग ने भागवत मत के साथ करीब ईस्वी पूर्व दूसरी सदी में तमिल नाडु के अंदर प्रवेश पाया होगा। वेदोपनिषदों में अभिव्यक्त किये हुए तत्व किस प्रकार द्राविड़ वाङमय में पुरानी कल्पनाओं के साथ मिलजुलकर प्रकट होते हैं, इसका अच्छा उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है। 'अहनानूरु' पद्यसंग्रह का मंगलाचरण का सरांश यहाँ दिया जाता है जिसमें शिवजी का रूप वर्णन द्राविड और आर्य कल्पनाओं के मंगल संमिलन के अनुरूप है।

"वर्षाकाल में फूलने वाले 'कोन्रै' कुसुम मालायें शिवजी सिर तथा उर पर पहनते हैं। इनके वक्षस्थल पर निर्मल यज्ञोपवीत माथे पर अनिमेष नयन चमकते रहते हैं। ये अजेय भगवान करों में त्रिशूल, परशु आदि आयुध धारण कर, ऋषभारूढ़ हैं। उमादेवी इनकी सहचरी हैं। संध्या का अरुणाकाश-सा रंगवाला शरीर; उस आकाश में श्वेत चंद्र से झलकते हुए दांत; ज्वलित अग्नि-सी प्रकाशमान जटा-धारायें; उस पर तेजः पुंज-सा बालचंद्र—ऐसी विलक्षणताओं से संपन्न महामूर्ति का निज-स्वरूप देवगण तथा ऋषिमुनियों की पहुँच के बाहर है। व्याघ्र का रेखांकित चमड़ा शरीर पर पहने हुए भगवान का नीलकंठ, सामवेद गाने के कारण, एक अद्भुत 'याल्' (वीणा) जैसा लगता। धन्य है यह जगत् जो इनके दिव्य चरण-छाया में सानंद है।"

वैदिक विधियाँ जब एक ओर अनुष्ठित हो रही थीं, दूसरी ओर पुरानी परिपाटी भी चल रही थी जिसका किंचित् परिचय हमने मुरुगपूजा के संबंध में दिया है। इस प्रथा में पुजारी भाला लेकर नाच उठता था तथा इष्टदेवारूढ़ होकर आशुक भविष्य-वाँणी किया करता था। पूजा किसी जगह पर हुआ करती थी। स्थान की शुद्धि के बाद घी तथा सफेद सरसों को मिलाकर डाल देते थे। चारों ओर पुष्प तथा चंदनादि सुगंध वस्तुओं को बिखराकर कुसुमों के तोरण भी लगा देते थे। अज की बलि होती थी। माँस, मधु, चावल, दाना आदि का निवेदन हुआ करता था। नरनारी 'कुरवै' 'तुणंगै' नामक नृत्य करते थे। विविध वाद्य बजाये जाते थे। स्त्रियाँ भी आवेश में आकर, देवता का माध्यम बनकर भविष्य वचन बोल उठती थीं। इस प्रकार की पद्धति 'काळि', शेयोन, (मुरुगन) और भूतादि देवता मंडलियों की सेवा में चलती थी। मुरुगन की पूजा में वैदिक शैली भी विद्यमान थी।

शिव, मुरुगन बलराम, वासुदेव, इन चार देवताओं के लिये मुख्य नगरों में देवालय निर्मित हुए थे। शिलप्पधिकारम्' काव्य के अनुसार चोळ राजाओं की प्रधान नगरी कावेरिप्पूंपट्टिनम' में षण्मुख युक्त अरुणवर्ण 'शेयोन' (मुरुगन) श्वेतशंखसा-सा रंगवाले बलदेव, नीलमणि जैसे द्युतियुक्त घनश्याम 'तिरुमाल' (विष्णु या कृष्ण), मुक्तामाला तथा विजयी छत्र सहित इंद्रदेव—इनके लिये अलग मंदिर थे। इनके अलावा कल्प वृक्ष, ऐरावत हाथी, सूर्य, कैलासपर्वत, चंद्र, शूलायुध, वज्रायुध—इन पूज्यचिह्नों तथा जैन भगवान अर्हत् के लिये भी अलग देवालय होते थे।

अवैदिक मतों का आघात और भक्ति आंदोलन

अर्हत् के मंदिर का उल्लेख इसका साक्षी है कि तमिल प्रदेश में उस समय, अर्थात् ईस्वी दूसरी सदी के निकट वैदिक धर्म ही नहीं, वरन् बौद्ध तथा जैनियों का प्रचार भी काफी बढ़ गया था। वैदिक मत के षट् दर्शनों के साथ बौद्ध जैन मतों का विशद वर्णन 'मणिमेखलै' नामक काव्य को मिलता है। प्रधान पुरियों की सीमावर्ती बस्तियों में ये अवैदिक मतवाले अपने उपदेश दिया करते थे। प्रवचन, शास्त्रार्थ और तर्क करने में ये अद्वितीय थे और जहाँ-तहाँ तर्क करने के वास्ते अन्य मतावलंबियों का आह्वान करते थे। ये संस्कृत में ही नहीं वरन् देश भाषाओं में भी पांडित्य प्राप्त कर चुके थे। तमिल संघ साहित्य के दो अमूल्य काव्यरत्न शिलप्पधिकारम, मणिमेखलै, तथा अधिकांश नीति ग्रंथ इनकी ही देन हैं। खासकर जैनी लोग अपनी विद्वत्ता, अनशनादि कटुव्रतानुष्ठान तथा मंत्र-तंत्र में सिद्धहस्तता के कारण राजाश्रय पाकर संघ-काल के उत्तरार्द्ध तथा पल्लव राजाओं के शासन समय में वैदिक मतवालों को कई प्रकार के कष्ट देने लगे थे।

जब वैदिक धर्म का बिल्कुल ह्रास-सा दीखता था, वह पतनोन्मुख-सा लगता था, तब पुनः धर्म संस्थापनार्थाय युग-प्रवर्त्तक महापुरुषों ने अवतार लिया। ये थे वैष्णव धारा के आल्वार संत तथा शैव धारा के 'नायनार' संत। संघकाल में जिस आर्यद्राविड समन्वय रूपी सनातन धर्म का विकास हुआ, उस में उत्कट भक्ति के प्राण इन संतों

ने समाविष्ट कर दिये। ईश्वर को लोग ऊँचा आराध्यदेव समझते थे। परंतु संतों ने उनको मानव हृदय का निकटतम गुरु, सखा, कांता, स्वामी आदि बना दिया। देश के समस्त मंदिरों की यात्रा करके इन संतों ने हजारों हृदय स्पर्शी गीत गा-गाकर भक्ति भाव का बृहत् नव जागरण करवाया। इन आंदोलनों के फलस्वरूप देवमुनि गणों को अगम्य किन्तु भक्त जनों के लिये माता-पिता के जैसे सरल भगवान पर परमानुरक्ति जनमानस में अविचलरूप से जाग उठी। दक्षिण में उत्पन्न यह भक्ति-प्रवाह संपूर्ण भारतव्यापी हुआ। भागवत माहात्म्य का कथन भी यहाँ उद्धरण योग्य है :—

"उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क चिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सभ्यक् प्रेष्ठरूपातु साम्प्रतम्॥"

(अध्याय १ श्लोक ४८-५०)

तमिल नाडु के संतों द्वारा भगवत् उपासना में जो नयी क्रान्ति हुई उसका असर बहुत दिनों तक काव्य क्षेत्र में पड़ता ही रहा। आळवारों के पश्चात् शताब्दियों तक उनकी पदावलियाँ आचार्यों द्वारा प्रवर्तित भक्ति की व्याख्याओं का एक मात्र आधार हो गयीं। साथ-साथ, राम कृष्णादि अवतारों की कथायें जिन में आळ्वारों ने सत्य संकल्प शरणागत वत्सलत्व, दयासिंधुत्व आदि अगणित विशेषताओं का गान किया था—ये भक्ति प्रचार का प्रबल माध्यम बनकर दिनोंदिन वृद्धि पाती रही। विशेष रूप से आळवारों की राम कथा परवर्ती सदियों में दक्षिण के वैष्णव संप्रदाय के अंतर्निहित मार्मिक तत्वों की अक्षयनिधि हो गयी। अंततो गत्वा, बारहवीं शताब्दि में कविसम्राट् कंबन ने इसी चिरसंचित भक्ति संदेशवाहक कथा को सौंदर्यमय अमर काव्यरूप प्रदान किया। यह सर्वमान्य है कि इनके '**कंबरामायणम्**' ने जो इस प्रकार वैष्णव संप्रदाय के आश्रय में एक भक्ति प्रधान रचना के रूप में साकार हुआ, संसार के उच्चतम महाकाव्यों में अपना अलग स्थान बना लिया है।

डॉ चन्द्रभान रावत

ब्रज और ब्रज भाषा तथा उसकी सीमाएँ

ब्रज जनपद के तीन नाम मिलते हैं। शूरसेन, मथुरा मंडल, तथा ब्रज। इस जनपद की सीमाओं में भी परिवर्तन होता रहा है। इसका कारण राजनैतिक भी है और भौगोलिक भी। राजनीतिक कारण तो भिन्न राज्य अवस्थाओं का बनना बिगड़ना है। भौगोलिक दृष्टि से उसकी स्थिति इस प्रकार की है कि किसी ओर प्रकृति निर्मित अलंघ्य पर्वत या नदी इसकी सीमा नहीं बनाते। इन नामों और सीमाओं का विकास उपलब्ध सामग्री के आधार पर खड़ा किया जा सकता है।

वैदिक साहित्य में ब्रज या मथुरा के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। "ब्रज" शब्द का प्रयोग वहाँ अवश्य मिलता है।[1] किन्तु इसका प्रयोग जनपद नहीं है। इसका प्रयोग पशुओं का समूह, उनकी गोचर भूमि, या उनके बंधने के वाड़े के अर्थ में हुआ है। रामायण और महाभारत[2] में तथा परवर्ती साहित्य[3] में भी ब्रज शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है। अतः ब्रज जनपद वाचक पीछे हुआ। पहले यह शूरसेन प्रदेश के नाम से जाना जाता था। पर शूरसेन से भी प्राचीन उल्लेख मथुरा का मिलता है। मथुरा नगर के संबंध में उल्लेख है: मथुरा जनपद वाचक बाद को हुआ।

मथुरा—वैदिक साहित्य में मथुरा का उल्लेख नहीं है। ब्राह्मण साहित्य के अनुसार "कमसा" राज्य मथुरा साम्राज्य[4] का भाग था। मथुरा का नामोल्लेख पाणिनि ने किया है। महाभाष्य में भी इस नगर का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है।[5] वहाँ भी मथुरा शब्द नगर वाचक है। यूनानी यात्री प्लिनी मथुरा को "मैथोरा" नाम

---

१. ऋग्वेद २,३८,८, ५।३५।४, ७।२७।१, ७।३२।१०, ८।४६।६, ८।५१।५, १०।४।२, १०।२६।३,
अथर्ववेद : ३।२।५, ४।३८।७
शांखायन आण्यक: २।१६
२. महाभारत १,४०,१७, १,४१,१५
३. मनुस्मृति ४।४।५ (मेधातिथि की टीका) कौटिल्य अर्थशास्त्र २।६।२४
४. रे चौधरी, पोलीटीकल हिस्टरी आफ एनशिएण्ट इंडिया, फोर्थ एडीशन, पृष्ठ ११६
५. अष्टाध्यायी, ४।२।८२

से पुकारता है।[६] टालमी इसे "मोदूरा" कहता है।[७] फ़ह्यान मथुरा को "मैटीलो" पुकारता है।[८] ह्वेनसांग "मोटूलो" कहता है।[९] बौद्ध साहित्य में भी मथुरा नाम मिलता है।[१०] मथुरा नाम पौराणिक साहित्य में भी उपलब्ध होता है। (विष्णु पु० १।१२।४, रामायण उत्तर० ७०।५)। मुसलमान लेखकों में पहले महमूद गजनवी का मंत्री "अलउत्बी" आता है। उसने मथुरा के मंदिरों की बड़ी प्रसंशा की है। मथुरा को एक स्थान पर उसने "महरतुलहिंद" कहा है। (कनिंघम, आरक्यालाजीकल सर्वे आफ इंडिया, एनुयल रिपोर्ट, जिल्द २०, पृष्ठ ३४)। अलबेरूनी ने मथुरा के विषय में सामान्य उल्लेख अपनी "तहक़ीके हिन्द" में किया है। (ई० सी० साचौ अलबेरूनी इंडिया, लंदन १९१४, जिल्द १, पृष्ठ ३००, ३०८) अलबदोऊनी (१६वीं शती) ने अपनी मुंतखवुत्तवारीख में मथुरा को काफिरों की जगह बताया है। जी रे किंग "मुंतखवुत्तवारीख" आफ अलबदाऊनी। फ़रिश्ता ने भी महमूद गजनवी का मथुरा विजय का प्रसंग दुहराया है। (हिस्ट्री आफ़ द राइज आफ मुहम्मडन पावर इन इंडिया, जि० १ पृ० ५७-५९७) यूरोपीय यात्रियों ने भी मथुरा पर कुछ लिखा है। जानद लाएट इंडियावेरा ने मामूली-मामूली वर्णन किया है। दीताना ने गाँव की क़ब्रों के बारे में लिखा है। (ग्राउस पृष्ठ ११८-२०) बर्नियर (१६५६) ने दिल्ली और आगरे के बीच एक मात्र आकर्षण के रूप में मथुरा लिखा है और मंदिर की ओर भी इंगित किया है। (बर्नियर्स ट्रैविल्स इन द मुगल ऐम्पायर, पृष्ठ २८४) जासेफ टीफेंथेला (१७४३) ने मथुरा का नामोल्लेख किया है। (ग्राउस पृष्ठ १०, हैवर्ट (१८२५) ने द्वारिकाधीश के मंदिर के विषय में लिखा है। (ग्राउस पृष्ठ १४५) जेके मोहने यहाँ की जमीन के विषय में लिखा है। (ग्राउस पृष्ठ १७४, १७५)।

वस्तुतः "मथुरा" नाम मधु राक्षस के नाम से हुआ। ऐसा लगता है कि मधुरा, मथुरा का स्त्रीलिंग, "मधुपुर" का प्राकृतकालीन लघु रूप है। मधु और उसका पुत्र लवण शत्रुघ्न की विजय से पूर्व यहाँ राज्य करते थे। शत्रुघ्न ने मधु और लवण को जीत कर इस नगर पर आधिपत्य किया। इसका उल्लेख रामायण में भी है।[११] राम ने शत्रुघ्न से कहा कि मैं तुमको "मधुनगर" का राजा नियुक्त करूंगा। यमुना के किनारे सुन्दर जनपद और नगर बसाया। इस प्रकार "मधुरा" नाम मधु दानव से संबंधित है। महाभारत के अनुसार यह "मधुपुरी" है जिसकी व्युत्पत्ति "मधु" शहद से संबंध रखती

---

६. महाभाष्य (ऐडीटेड बाई किलहोर्न) वोल० १, पृष्ठ १४४, वोल १, पृष्ठ १९२, वोल० १, पृष्ठ ४७४, वोल० २, पृष्ठ ८, २०५, ४१६ आदि।

७. नेचुरल हिस्ट्री ६,२२

८. मैक क्रिडल, एंशेंट इंडिया एज डिसक्राइब्ड बाई टालमी, पृष्ठ १२४ कलकत्ता १९२७

९. ट्रैवल्स ओफ फ़ह्यान, पृष्ठ ४२

१० वी. एस. स्मिथ, अर्ली हिस्टरी आफ़ इंडिया, फ़ोर्थ ऐडीशन, पृष्ठ १९९.

११. सर्ग ६२, श्लोक १५।१८

है।[१२] किन्तु यह महोली प्रतीत होता है जो वर्तमान मथुरा से दक्षिण पश्चिम ५ मील पर है। महोली के समीप ही "मधुवन" भी स्थित है।[१३] विष्णु पुराण में भी इस नाम का संबंध "मधु" से बताया गया है।[१४] देवी भागवत में भी इसी प्रकार का निर्देश है।[१५] कालिदास ने इसका नाम मथुरा ही लिखा है (रघु० १५।३६)

जैन साहित्य में मथुरा का नाम तो मिलता ही है।[१६] पर साथ ही "सौरिपुर" या सूर्यपुर नाम भी मिलता है।[१७] सौर्यपुर का संबंध वहाँ कृष्ण की एक उपाधि "सौरि" से जोड़ा गया है।[१८] यह विषय विचारणीय है। इस पर आगे "शौरसेन" नाम के साथ विचार किया जायगा।

मथुरा मंडल :

पौराणिक साहित्य में मथुरा मंडल नाम भी आया है। इससे मथुरा प्रदेश का बोध होता है। वराह पुराण में मथुरा नगर के रूप में भी वर्णित है। मथुरा की अक्षय नवमी की परिक्रमा की विस्तृत रूपरेखा दी गई है।[१९] जिससे मथुरा नगर की परिक्रमा का स्पष्ट बोध होता है। इसी पुराण में "माथुरं मम मंडलम्" कह कर भगवान मथुरा मंडल की सूचना देते हैं।[२०] मथुरा मंडल का प्रदेशवाचक होना इस बात से और सिद्ध हो जाता है कि उसका विस्तार २० योजन बताया गया है।[२१] इसी पुराण में मथुरा मंडल के आकार की भी चर्चा की गई है।[२२] इसका आकार कमलवत माना गया है। इसके कर्णिका स्थान पर केशव भगवान विराजमान हैं।[२३] मथुरा रूपी कमल के पश्चिमी दल में गोवर्द्धन निवासी भगवान हैं।[२४] उत्तरी दल में श्री गोविन्द भगवान हैं।[२५] पूर्वी दल में विश्रांत नामक ईश्वर हैं और दक्षिण दल में वराह भगवान हैं।[२६] पद्म पुराण

---

१२. सभापर्व, ३०,११०५ से ६
१३. ग्राउस, मथुरा, पृष्ठ ५३
१४. विष्णु पुराण अंशवार ४।४।१०१
१५. स्कंध ४, अध्याय २०
१६. निशीथ सूत्र ९।१९, ठाणंग सूत्र १०।७१८, वृहत्कल्प भाष्य ५।१५३६ आदि
१७. जैन सूत्र, XLV पृ० ११२
१८. वही, दितीय, पृष्ठ ११२
१९. वराह पुराण १६०।५१।६६
२०. वही १५८।१
२१. वही "विंशतिर्योजनावांतु माथुरं मम मंडलं"।
२२. वराह पुराण, अध्याय १५७
२३. वही, श्लोक १८
२४. वही श्लोक ७
२५. वही श्लोक ५
२६. वही श्लोक ४

में भी "माथुर मंडल" नाम मिलता है।[२७] इस मंडल में वृन्दावन और गोवर्द्धन के स्थित होने की भी बात कही गई है।[२८] कालिदास ने भी मथुरा का वर्णन किया है। (रघुवंश० ६, ४८, १५,२८,२९)

ब्रज की सीमा का निर्देश करने वाला प्रचलित दोहा भी मथुरा मंडल नाम ही देता है।[२९] आज ब्रज को ब्रजमंडल कहा जाता है। किन्तु इस दोहे में केवल तीन ही सीमा निर्देशक स्थानों के नाम बताए हैं और जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, वराह पुराण में इसको कमलवत् बताया गया है। दोहे का साम्य भागवत से विशेष ठहरता है क्योंकि भागवत में ब्रज को सिंघाड़े के आकार का माना गया है[३०]।

शूरसेन जनपद

वर्तमान मथुरा तथा उसके आसपास का प्रदेश जिसे ब्रज कहा जाता है, प्राचीन काल में शूरसेन जनपद के नाम से प्रसिद्ध था।[३१] यह शूरसेन कौन था। रामायण के अनुसार "सूरसैन" नाम का संबंध शत्रुघ्न के पुत्र शूरसैन से हैं। जिसने इस प्रदेश की नींव डाली।[३२] विष्णुपुराण में यह भी उल्लेख है कि शत्रुघ्न अपने पुत्रों को राज्य देकर स्वर्ग सिधारे[३३]। वायु पुराण में उन पुत्रों की संख्या दो लिखी है और उनके नाम "सुबाहु" और सूरसेन लिखे हैं।[३४] "ललित विस्तर" नामक बौद्ध ग्रंथ में मथुरा एक वैभवशालिनी और घनी आबादी वाली पुरी बताई है और यह भी बताया है कि यह कंस के वंशज सुबाहु की राजधानी थी[३५]। सम्भव है सुबाहु मथुरा से संबंधित हो और सूरसेन की राजधानी दूसरी बनी हो जिसके नाम पर सौरपुर या शूरसेन नगर की नींव पड़ी हो। यूनानी लेखकों ने शूरसेन को कृष्ण का बाबा बताया है[३६]। पीछे कंस को मारकर कृष्ण तथा उनके वंशजों ने राज्य स्थापित किया और वे "सूरसेन" कहलाने लगे। मेगस्थनीज ने शूरसेनों का उल्लेख किया है[३७]। इसमें लिखा है कि कृष्ण को शूरसेन लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। पौराणिक वंश-सूचियों में कृष्ण के पितामह का नाम "शूर" मिलता है, शूरसेन नहीं[३८]। अत: शूरसेन नाम इससे संबंधित नहीं दीखता। हरिवंश, विष्णु आदि

---

२७. पद्मपुराण, पृष्ठ ५८३, श्लोक १२,१३

२८. वही-वही, पृष्ठ ५९८, श्लोक १९,२०,२१

२९. इत बरहद इत सोन हद, इत सूरसेन की गाथा
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल धाम।

३०. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५१।

३१. ब्रज का इतिहास मथुरा सं० २०११ पृ० २।

३२. रामायण,७, ७०,६९।

३३. विष्णु पुराण ४।४।१०१।

३४. वायु पुराण ८८,१८५,६।

३५. डा० विमल चरण लां, ज्याग्राफीकल एसेज, पृ० २६।

३६. आरियन, इंडिका VIII

३७. एम०सी० क्रिडल्म, द इंडिया आफ आरियन, पृ० १६,१७।

३८. "ब्रज का इतिहास" कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० १४।

पुराणों तथा परवर्ती संस्कृतमें कृष्ण का "शौरि" विशेषण मिलता है, शूरसेन नहीं[३९]। जैन साहित्य में मथुरा के लिए "सोरिपुर" की व्याख्या भी इसी प्रकार की गई है[४०]। अतः यूनानियों का यह विचार कि यह नामकरण कृष्ण के पितामह के नाम पर हुआ, भ्रामक है। वाल्मीकि रामायण में भी कुछ ऐसी ही बात कही गई है कि शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर ही इस जनपद का यह नामकरण हुआ है[४१]। हरिवंश पुराण में शत्रुघ्न पुत्र शूरसेन का उल्लेख है जिन्होंने उनके पश्चात् मथुरा प्रदेश पर अपना आधिपत्य बनाए रक्खा।[४२] अतः नामकरण इन्हीं सूरसेन के नाम पर हुआ। शूरसेन जनपद के गौरवपूर्ण उल्लेख भारतीय साहित्य में मिलते हैं। मनु ने शूरसेन को "ब्रह्मर्षि देश" के अन्तर्गत माना है।[४३] प्राचीन काल में इस ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षिदेश को अत्यन्त पवित्र माना जाता था। बौद्ध[४४] और जैन[४५] साहित्य में "सोलस" महाजन पदों का उल्लेख मिलता है, उनमें शूरसेन जनपद का भी नाम है। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि शूरसेन जनपद की स्थिति मत्स्य राज्य के पूर्व में थी। इसकी राजधानी मथुरा थी। पाणिनि ने अन्य जनपदों का नाम गिनाया है।[४६] पर शूरसेन का नाम नहीं है। कालिदास ने शूरसेन राजा के अधिपति सुषेण का इन्दुमती के स्वयंवर में आना लिखा है। (रघु० ६,४५)

एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। सूरसेन जनपद और सौरपुर बटेश्वर को एक नहीं समझना चाहिए। हो सकता है, जैन ग्रंथों के सौरिपुर का संबंध बटेश्वर से हो। शौरि कृष्ण की उपाधि थी। (भागवत १०।२।७) "शूर" कृष्ण के पितामह का नाम था। मेगस्थनीज द्वारा निर्देशित दो नगरों मे एक तो स्पष्ट रूप से मथुरा "मेथोरा" है। दूसरा नाम "केलिसोबोरा" है। कालिदास ने इसे वृन्दावन माना है[४७]। कनिंघम ने इसे सौरपुर बटेश्वर ही बतलाया है।* पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे बटेश्वर ही कहा है।[४८]

---

३९. वही पृ० १४।
४०. जैन सूत्र २, पृ० ११२।
४१. "भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः" रामायण, उत्तर ७०।६।
तथा "स निविष्टः सूरसेनानं विषयश्चा कुतोभयः। उत्तर ७०।९।
४२. हरिवंश १।५४।६२।
४३. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः मनुस्मृति २।१८ तथा २०
४४. अंगुत्तरनिकाय।
४५. "मृगवती सूत्र" की सूची बौद्धों की सूची से कुछ भिन्न है, पर शूरसेन जनपद का उल्लेख उसमें भी है। रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आफ एशेंट इंडिया, बनारस १९४२ ५।८२।४।
४६. वासुदेवशरण अग्रवाल, इंडिया एज नोन टू पाणिनि, पृ० ४४३ से ५४।
४७. आरकेलोजीकल सर्वे, सन् १८७१-२ वौ० ४, पृ० १५८।
*पोस्ट स्क्रिप्ट, पृ० २४४।
४८. मेगस्थनीज की भारत यात्रा, पृ० १०३।

इस "सौरपुर" का बौद्ध साहित्य में अच्छा स्थान था। अवदान कल्पलता में इसकी नौ ऊखलों में गणना की गई है[४९]। अतः मेगस्थनीज ने जिसे समृद्धशाली नगर बताया है वह यही होगा। किन्तु शूरसेन जनपद और सौरपुर को पृथक ही समझना चाहिए।

सौरपुर, बटेश्वर का संबंध कृष्ण के पितामह "शूर" से है और शूरसेन जनपद का संबंध शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन से है। मथुरा नगरी का संबंध "मधु" दानव से है। पुराणों में शत्रुघ्न के द्वारा इस मथुरापुरी का बसाया जाना लिखना[५०] ठीक नहीं प्रतीत होता। यह इसके नाम से सिद्ध है। हो सकता है शत्रुघ्न ने इसकी पुनर्व्यवस्था की हो। रामायण में उल्लेख है कि शत्रुघ्न ने देवों से प्रार्थना की थी कि यह "मधुपुरी" ऐसी हो जाय कि देव निर्मित सी, प्रतीत हो।[५१] इस उल्लेख में मथुरा और मधुपुरी दोनों नाम आये हैं।

शूरसेन और मथुरा जनपद: एक या पृथक

परीक्षित के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए शुकदेव जी कहते हैं कि पहले यदुपति महाराज शूरसेन मथुरा नगरी में बसकर "माथुर" तथा "शूरसेन" दोनों प्रान्तों का भोग करते थे। तभी से मथुरा यदुपतियों की राजधानी हुई।[५२] भागवत के इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि माथुर और शूरसेन दो पृथक प्रान्त थे और यदुपतियों ने इस सम्मिलित प्रदेश की राजधानी मथुरा को बनाया।

शूरसेन जनपद और मथुरा में पीछे अभेद ही मिलता है। इसके संबंध में कृष्णदत्त वाजपेयी का मत दृष्टव्य है:[५३] "ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की यह संज्ञा लगभग ईसवी सन् के आरंभ तक जारी रही। जब इस समय से यहाँ विदेशी शब्द क्षत्रयों तथा कुषाणों का प्रभुत्व हुआ, संभवतः तभी से जनपद की संज्ञा उसकी राजधानी के नाम पर "मथुरा" हो गई। तत्कालीन तथा उसके बाद के जो अभिलेख मिले हैं उनमें मथुरा नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं। साहित्यिक ग्रंथों में भी अब शूरसेन के स्थान पर मथुरा नाम मिलने लगता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हो सकता है कि शक-कुषाण-

---

४९. रेणुका शूकरः काली काशी व्याल बटेश्वरी।

५०. विष्णुपुराण १, १२-४।

हत्वा चलवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार्षे॥

५१. इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तुवर :परः। रामायण उत्तर० ७०, ५।

५२. शूरसेनो यदुपतिर्मधुरा भाव सन्दुरीम्।
मथुराञ्छूर सेनांश्च विषयां व्रभुजेपुरा। श्री मद्भागवत १०।१।२७।
राजधानी ततः साऽभूत्सर्व यादव भूभुजां।
मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः। १०।१।२८।

५३. ब्रज का इतिहास, पृ० १५ (प्रथम खंड)।

कालीन मथुरा नगर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर गया था कि लोग जनपद या प्रदेश के नाम को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे होंगे ।

शूरसेन जनपद का महत्त्व

कृष्ण और यादवों के उत्थान काल में शूरसेन जनपद महत्त्वपूर्ण रहा । यह महाभारत काल था । महाभारत के पश्चात् २३ शूरसेन राजाओं ने भारत पर राज्य किया ।[५४] इनके नाम तथा ज्ञातव्य बातें उपलब्ध नहीं हैं । महाभारत के पश्चात् जनपदों में पंचाल और कुरू अत्यन्त महत्वपूर्ण हुए । पंचाल का वर्णन कुरू के साथ प्राचीन साहित्य में मिलता है ।[५५] हो सकता है इनमें राजनैतिक संबंध रहा हो । जैन साहित्य में यहां के एक चक्रवर्ती हरिषेण का जिक्र आया है ।[५६] किन्तु शूरसेन के विषय में साहित्य मौन है । यादवों के नाश के समय जैसे इसने भी अपना गौरव खो दिया हो । शूरसेन जनपद की स्थिति इन दोनों के मध्य में थी । अत: इनकी संस्कृति का प्रभाव पड़ा हो सकता है । बौद्ध काल के सोलह महा जनपदों में शूरसेन था ।[५७] पर अधिक महत्त्वपूर्ण मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति ही थे । अन्य जनपद गौण हो गये । इन चारों जनपदों ने अपनी शक्ति-वृद्धि के लिए अन्य जनपदों से वैवाहिक संबंध किये । अवंती के तत्कालीन शासक चंड प्रद्योत ने अपनी लड़की का विवाह शूरसेन राजा के साथ किया, जिससे अवन्ति पुत्र का जन्म हुआ ।[५८] इससे शूरसेन की स्थिति कुछ महत्त्वपूर्ण हुई । बौद्ध धर्म की दृष्टि से मथुरा का महत्त्व बढ़ा । ग्रीक यात्रियों के भी उल्लेख मिलते हैं तथा बौद्ध साहित्य में भी मथुरा के वैभव के उल्लेख हैं । महाकच्चायन ने यहां बौद्ध धर्म का प्रचार जोरों से किया ।[५९] यहां अशोक की बौद्ध तीर्थों की यात्रा के पथ प्रदर्शक उपगुप्त ने भी निवास किया ।[६०] जैन साहित्य में भी उल्लेख हैं । किन्तु शूरसेन प्रदेश का राजनैतिक महत्त्व उल्लिखित नहीं है ।

क्षत्रयों के समय मथुरा को अपना विगत वैभव प्राप्त हुआ । शूरसेन जनपद का स्थान "मथुरा" ने लिया । कनिंघम का अनुमान है कि इस समय में मथुरा राज्य का विस्तार उत्तर में दिल्ली तक, दक्षिण में ग्वालियर तक तथा पश्चिम में अजमेर तक था ।[६१] कुषाण काल में भी जनपद अपने चरम पर रहा ।

---

५४. पार्जीटर, डाइनेस्टीज आफ़ कलि एज, पृ० २३, ४ ।

५५. वाजसनेयी संहिता ११।३।३, काठक सं० १०।६, गोपथ ब्राह्मण १।२।६, कौषीतकी उपनि० ४।१, शतपथ ब्राह्मण ३,२,३,१५ आदि ।

५६. काम्पिल्यपुर तीर्थकल्प सं० २५ ।

५७. अंगुत्तरनिकाय १,२१३,४,२५२ से ५६ ।

५८. कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास पृ० ६५ (प्रथम खंड) ।

५९. अंगुत्तर,१,६७,मंज्झिम, २,८३ ।

६०. वी० ए० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, फोर्थ ऐडीशन, पृ० १९९ ।

६१. क्वाइंस आफ ऐंशेंट इंडिया, लंदन, १८९१, पृ० ८५, एलन ने इसी की भूमिका, पृ० ११२ ११५, में यही बात कही है ।

गुप्तकाल में शूरसेन जनपद की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। कालिदास के उल्लेख इस युग की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ हैं। कालिदास ने मगध, अंग, अवंती, अनूप, कलिंग और अयोध्या के बड़े राजाओं के बीच शूरसेन नरेश सुषेण की गणना की है।[६२] सुषेण को बड़ा प्रतापी चित्रित किया गया है।[६३] सुषेण का यमुना में विहार करने का उल्लेख भी है।[६४] वृन्दावन की वनीय शोभा की उपमा कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से दी है।[६५] गोवर्द्धन के पावस सौन्दर्य और मयूरों का वर्णन मिलता है।[६६] ये उल्लेख शूरसेन प्रदेश की महत्त्वपूर्ण परम्परा के पाँचवी शती के रूप की बात कहते हैं।

मध्यकाल में चीनी यात्रियों का वर्णन मथुरा के महत्व की बात कहता है। हुएनसांग[६७] ने मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली लगभग ८३३ मील बताया है:—बौद्धधर्म के प्रचार की बात कही है, प्रसिद्ध संघारामों की चर्चा की है तथा भूमि अच्छी और मनुष्य सच्चे लिखे हैं।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय के यहाँ के मंदिरों सम्बन्धी उल्लेख पहले दिये जा चुके हैं।

राजपूत काल में यहाँ की ब्रज भाषा और संस्कृति का प्रचार आरम्भ हो गया था और उसके ब्रज भाषा के विस्तार और उसकी समृद्धि का इतिहास आ जाता है।

ब्रज

ब्रज शब्द का वैदिक प्रयोग स्थान वाचक तो था पर उससे किसी विशिष्ट स्थान का बोध नहीं होता था : सामान्यत: उसका अर्थ चरागाह था। भागवत में ब्रज शब्द का कई स्थलों पर प्रयोग मिलता है। राजा परीक्षित पूछता है: कृष्ण पिता के घर से ब्रज क्यों चले गए?[६८] कृष्ण ने मधुपुरी में और ब्रज में निवास करने के समय क्या क्या कार्य किए?[६९] एक उल्लेख से स्पष्ट होता है कि ब्रज मथुरा से पृथक था और वहाँ के अधिपति ब्रजाधिप नंद थे।[७०] "नंद का ब्रज" कई स्थलों पर उल्लिखित है।[७१] "नंद के गोकुल" की भी बात कही गई है।[७२] इस प्रकार ब्रज का उल्लेख तो कई बार हुआ

६२. रघुवंश, सर्ग ६,४५ से ५१।

६३. वही ६,४५।

६४. वही ६,४८।

६५. वही ६,५०।

६६. वही ६,५१।

६७. टामस वाटर्स, आन हुवानच्चांग्स ट्रेविल्स इन इन्डिया, लंदन, १९०४, जिल्द १, पृष्ट ३०१ से १६।

६८. श्रीमद् भागवत १०।१।८।

६९. वही १०।१।९।

७०. वही १०।११।१७।

७१. वही १०।२।७, १०।५।१८।

७२. वही १०।३८।१, १०।४६।७।

है पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि उससे किसी अलग ब्रज प्रदेश का निर्देश है। नंद अपने समुदाय के भी अधिपति हो सकते हैं। अस्थायी नगरियों का समूह भी ब्रज कहला सकता है। चाहे ब्रज किसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, कृष्ण के समय में ब्रज का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया। नंद को कंस को प्रतिवर्ष कर देना पड़ता था।[73] यह कर कंस के राज्य की भूमि को गोचर रूप में उपयोग करने के संबंध में भी हो सकता है।

इतने बड़े गोधन के स्वामी नन्द तथा उनके साथियों को घुमन्तुओं की भाँति स्थान-परिवर्तन अवश्य करना पड़ता था। हरिवंश पुराण में गोकुल को छोड़कर वृन्दावन जाने की बात का उल्लेख मिलता है।[74] तब कृष्ण ७ वर्ष के थे। स्थान-परिवर्तन का एक कारण गोकुल का भर जाना है।[75] ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण[76] में यह उल्लेख है कि गोचर भूमि तथा जल के सुवास के कारण तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हो जाने से लोगों को वहाँ बड़ा आराम मिला। गोवर्द्धन का भी उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि ब्रज एक निश्चित भू-भाग कृष्ण के समय था। सुविधाओं के आकर्षण के कारण नन्द आदि स्थान-परिवर्तन भी करते थे, पर घूमने की प्रवृत्ति कुछ कम होती जा रही थी और अस्थायी बस्तियाँ गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि थीं। इस प्रकार ब्रज का रूप खड़ा हो रहा था।

इस घुमंतु जाति में स्थिरता लाने के प्रयत्न की रूपरेखा इस जाति को कृषि कर्म में प्रवृत्त करना हो सकती थी। कृषिकार्य के लिए जल की सुविधा आवश्यक है। इस प्रयत्न का आरंभ "हलधर" बलराम ने किया। ब्रह्मपुराण में उल्लेख है कि बलराम ने अपने हल से यमुना को अपनी ओर खींच लिया।[77] विष्णु पुराण में भी यह उल्लेख मिलता है।[78] हरिवंश में स्पष्ट उल्लेख है कि यमुना पहले दूर बहती थी, बलराम उसे निकट लाए जिससे यमुना वृन्दावन के खेतों के पास बहने लगी।[79] इस प्रकार कृषिकार्य ने ब्रज की घुमंतु जाति को कुछ स्थिरता प्रदान की।

ब्रज का जनपद के रूप में उल्लेख प्राप्त नहीं है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रज और मथुरा मध्यकाल में पर्याप्त हो गये। ब्रज शब्द भाषा के साथ जुड़कर अपनी परम्परा बनाता है।

ब्रज की सीमाएँ तथा विस्तार :

ब्रज की सीमाओं का निर्धारण एक कठिन कार्य रहा है। इसके विस्तार का

---

७३. श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास, पृ० ३० (प्रथम खंड)।
७४. "तस्मिन्नेव ब्रज स्थाने सप्तवर्षौ बभूवत:।" हरि० ६५।१।
७५. १८४।४२ से ६० वही।
७६. ६।२१ से ५१।
७७. ब्रह्म० १९८।८, १९८।१९।
७८. विष्णु० २४।८, २५।१९।
७९. हरिवंश० १०३।

उल्लेख विशेषत: धार्मिक दृष्टि से हुआ है। वराह पुराण में मथुरा मंडल था। विस्तार २० योजन लिखा है।[८०] अन्य पुराणों में विस्तार की चर्चा नहीं मिलती। हुएनसांग ने मथुरा के राज्य का विस्तार ५,००० ली लगभग ८३३ मील, लगभग माना है।[८१] नारायण भट्ट ने जो ब्रज यात्रा के प्रारंभकर्ता और रूप सनातन गोस्वामी के शिष्य थे, ब्रज की सीमाएं इस प्रकार निर्धारित की हैं: पूर्व में हास्यवन, पश्चिम में उपहार वन, दक्षिण में जन्हुवन तथा उत्तरी सीमा धुवन वन है।[८२] ब्रजभाषा के सबसे प्राचीन व्याकरण लेखक मिरजाखां ने ब्रज की सीमाओं का इस प्रकार उल्लेख किया है: ब्रज भारत के उस प्रदेश का नाम है जो मथुरा को केन्द्र मानकर ८४ कोस के बीच मंडलाकार स्थित है।[८३] कनिंघम महोदय ने हुऐनसाँग के विस्तारोल्लेख का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया: सातवीं शताब्दी में मथुरा का प्रसिद्ध नगर एक विशाल राज्य की राजधानी थी जो परिधि में ५,००० ली अथवा ८३३ मील बताया जाता है। यदि यह अनुमान ठीक है तो इस प्रान्त में न केवल बैराट और अतरौली के जिलों का ही समस्त प्रदेश सम्मिलित होगा, वरन् इससे भी विशाल क्षेत्र, अर्थात् आगरा से परे नरवर तक और शिवपुरी तक दक्षिण में, सिंध नदी तक पूर्व में—इसमें भरतपुर, खिरावली तथा धौलपुर की छोटी रियासतों और ग्वालियर राज्य के उत्तरार्द्ध के साथ मथुरा जिला सम्मिलित है। पूर्व में उसकी सीमा पर जिझौती राज्य होगा, दक्षिण पर मालवा।[८४]

ब्रज की सीमाओं के संबंध में ब्रज में एक दोहा भी प्रचलित है।[८५] उसके अनुसार ब्रज के एक ओर बरहद, एक ओर सौनहद तथा एक ओर सूरसेन का गाँव है। इस दोहे में ब्रज चौरासी कोस का भी उल्लेख है। ग्राउज़ ने इसी दोहे को आधार मानकर ब्रज की सीमाएँ इस प्रकार निश्चित कीं:[८६] ब्रज मंडल के एक ओर की हद "बर" स्थान है, दूसरी ओर सोन नदी है और तीसरी ओर सूरसेन का गाँव है।[८७] उसी ग्राउज नें नारायण भट्ट के श्लोक से इस दोहे का सामंजस्य इस प्रकार किया है: हास्य वन बरहद का वन है। पश्चिम का उपहार वन गुड़गाँव जिले में सोन नदी के किनारे है। दक्षिण का जन्हुवन बटेश्वर के निकट है। उत्तर का भुवनवन या भूषण शेरगढ़ के निकट है।

---

८०. वराहपुराण० १५८।१।

८१. टामसवाटर्स, ऑन युवानच्वाँग ट्रैविल्स इन इंडिया, लंदन, १९०४, जिल्द १, पृ० ५, ३०१ से १३।

८२. ब्रज विलास का श्लोक:—पूर्वं हास्य बननीय पश्चिमस्यो पहारिक।
दक्षिणे जन्हु संज्ञाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे ।।

८३. दे० लेखक का ब्रज भाषा का सबसे प्राचीन व्याकरण, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ।

८४. एँश्येंट ज्याग्राफी आफ इंडिया, पृ० ४२७।

८५. इत बरहद इत सौन हद इत सुरसे कौ गाम।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल धाम।।

८६. मथुरा मैमोयर्स, पृ० ७९।

८७ .बटेश्वर शूरसेन का गाँव कहलाता है।

वंश भास्कर के रचयिता प्रसिद्ध चारण सूरजमल ने दिल्ली ग्वालियर के मध्य प्रदेश की स्थिति मानी है।[८८] लल्लूलालजी ने ब्रज का परिचय इस प्रकार दिया है :" ब्रज आगरा और दिल्ली के बीच में स्थित एक जिला है जिसकी राजधानी मथुरा है। इसमें भरतपुर का राज्य भी सम्मिलित है तथा गोवर्द्धन के पहाड़ भी ब्रज में ही हैं।[८९] सन् १८८८ में बाबू तोताराम ने "ब्रजविनोद" पुस्तक लिखी। उसमें ब्रज की सीमाएँ इस प्रकार बताई हैं : श्री मथुरा, गोकुल, बृन्दावन के आस पास २४ कोस ब्रजमंडल प्रसिद्ध है। इस ब्रजमंडल की लम्बाई ४२ मील और चौड़ाई ३० मील है। इसके मध्य में श्री यमुना जी बहती हैं। यमुना जी के दाहिने तट पर कोसी और छाता के परगने हैं और बाएँ किनारे पर भाट, नोह झील और कुछ महावन का परगना है।[९०] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने सीमाएँ इस प्रकार दी हैं : धार्मिक दृष्टि से ब्रज मंडल मथुरा जिले तक ही सीमित है किन्तु ब्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर-दूर तक बोली जाती है।[९१] डा० दीन दयाल गुप्त ने[९२] ब्रज मंडल पर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं : साधारणतया मथुरा के आसपास ८४ कोस के स्थान को ब्रज कहते हैं। उनके अनुसार बटेश्वर ब्रज में नहीं है क्योंकि आगरा गजेटियर में उसका नाम "सरजपुर" दिया हुआ है और इसे सम्मिलित करने से ब्रज का वृत्ताकार बेडौल हो जाता है। डा० सत्येन्द्र का मत यह है :[९३] चौरासी कोस का इतना महत्त्व भौगोलिक दृष्टि से नहीं है जितना धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से है। ब्रज और मथुरा समान सीमा वाले हुए, फिर मथुरा में ही सीमित हो गये। आज ब्रज का कोई जनपद अपनी निश्चित सीमाओं के साथ कहीं मान्य नहीं है। मंडल शब्द से संवृत्त का ही बोध नहीं होता, वह इस प्रदेश अथवा क्षेत्र का वाचक भी है।

वस्तुतः आज धार्मिक दृष्टि से ब्रज का विस्तार चौरासी कोस माना जाता है, पर यथार्थ भौगोलिक सीमाएं आज निश्चित होना कठिन हैं। सीमा और विस्तार के निर्धारण के कथनों में धार्मिक, राजनैतिक आदि कई दृष्टियाँ आजाने से प्रश्न जटिल हो गया है।

ब्रजभाषा : विविध नाम

ब्रजभाषा कई नामों से जानी जाती रही है। यह कभी "भाषा" नाम से ही अभिहित रही। कभी "मध्यदेशी" इसका नाम रहा। अंतर्वेदी संज्ञा भी इसको दी गई। "ग्वालेरी" भाषा तो बहुत प्रसिद्ध रही। राजस्थान में इसका पिंगल नाम रहा। ब्रजभाषा नाम तो है ही। इन नामों के संबंध के लेखकों पर एक दृष्टि डाल लेना उपयुक्त होगा।

---

८८. पुर दिल्ली और ग्वालियर बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरा तिनकी मधुर विसेस ॥

८९. जनरल प्रिंसीपल्स आफ इनफ्लेकशन एन्ड कंजूनेशन इन ब्रजभाषा, भूमिका, पृ० ११

९०. ब्रज विनोद।

९१. नाम माहात्म्य, श्री ब्रजांक, अगस्त १९४० ब्रजभाषा लेख।

९२. ब्रजभारती, वर्ष ४, संख्या १०, ११, १२, पृ० १।

९३. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५१।

भाषा (भाखा)—जिस समय अपभ्रंश वर्तमान भाषाओं का रूप धारण कर रही थी, उस समय इन सभी रूपों को भाषा कहा जाने लगा। रूढ़ रूप में संस्कृतेतर भाषाएँ, भाखा कहलाने लगीं। महाकवि चन्दवरदाई ने अपनी भाषा के संबंध में लिखा है—

"षट भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया"

इसमें षट भाषा शब्द महत्व का है। यहाँ भाषा रूढ़ अर्थ में नहीं, व्यापक अर्थ में ही है।[९४] तुलसी ने भी अपनी भाषा "भाखा" लिखी है।[९५] नन्ददास जी भी "भाखा" शब्द का प्रयोग करते हैं।[९६] केशवदास जी को भी विवश होकर "भाषा" का कवि होना पड़ा।[९७] कृष्ण रुकमिणी री बेलि के रचयिता भी "भाखा" में लिखते हैं।[९८] कुलपति मिश्र संस्कृत के समकक्ष भाषा को रखते हैं।[९९] इस प्रकार भाखा शब्द किसी प्रदेश से बंध कर नहीं रहा। मिरजाखाँ ने भाखा शब्द का स्पष्टीकरण किया है। वह इस प्रकार है: संस्कृत और प्राकृत को छोड़कर सभी बोलियाँ "भाखा" कहलाती हैं।[१००] साथ ही वह यह कहता है कि खासतौर से 'भाखा' का संबंध व्रज से ही है।[१०१] लल्लूलालजी ने अपनी 'व्रज भाषा व्याकरण' (अंग्रेजी में[१०२]) 'भाखा' का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है: तीसरी नरवाणी या 'भाखा' है। इसी भाखा का हम व्याकरण लिख रहे हैं। 'भाखा' संस्कृत शब्द है जिसका मूल अर्थ सामान्य भाषा से है। किन्तु अब इसका प्रयोग नरवाणी या हिन्दुओं की जीवित भाषा से लिया जाता है। खासतौर से यह 'भाखा' व्रज प्रदेश में

---

९४. भिखारी दास जी ने इस षट्भाषा का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

व्रजभागधी मिले अमर नाग यमन भाखानि।
सहजा पारसी हू मिले षट विधि करत बखानि॥

इस दोहे में 'अमर' से संस्कृत का भी बोध होता है। रूढ़ अर्थ में 'भाषा' में संस्कृत नहीं आती। मिश्रित भाषा को स्पष्ट करने वाला एक और दोहा पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने भारती, जून, १९५८, पृ० ७ में उद्धृत किया है—

अन्तर्तवद नागरी गौड़ी पारस देस।
अरु जामें अरबी मिलै मिश्रित भाषा भेस॥

इसमें संस्कृत नहीं है।

९५. भाखा बद्ध करबि मैं सोई, (रामचरित मानस)।

९६. तातें मैं यह कथा जथामति भाखा कीन्ही, (रास पंचाध्यायी)।

९७. भाषा कवि मो मन्दगति तिहिं कुल केसोदास, कविप्रिया।

९८. भाखा संस्कृत प्राकृत मसंतां, मूझ भारती ए मरय।
चरण भाट सुकवि भाखा चित्र, करि एकठा तो अरथकहि।

९९. जिती देवबानी प्रगट है कविता की घात।
तें भाषा में होय तो सब सम हैं रस बात॥ रस रहस्य।

१००. ग्रामर आफ व्रजभाषा, जियाउद्दीन पृ० ७।

१०१. वही।

१०२. जनरल प्रिंसीपिल्स आफ इनफ्लेक्शन एण्ड कंजूगेशन इन द व्रजभाखा, कलकत्ता, १८११।

तथा ग्वालियर जिले में बोली जाती है। ब्रज आगरा और दिल्ली के बीच एक जिला है जिसमें भरतपुर भी सम्मिलित है। आगे लल्लूलालजी कृष्णबाई का एक दोहा उद्धृत करते हैं जिसमें भाखा की स्थिति बतलाई गई है—

पौरुष कविता त्रिविधि है, कवि सब कहत बखान ।
प्रथम देव वानी बहुरि प्राकृत, भाखा जानि ।।

इस प्रकार रूढ़ अर्थ भाखा शब्द से ब्रज भाखा का भी बोध होता था। सामान्यतः सभी संस्कृतेतर बोलियों का बोध होता था। (ग्रामर आफ द ब्रज भाखा, जियाउद्दीन, पृ० ७) गार्सा दतासी ने भाषा का प्रयोग किया है (हिन्दुई साहित्य का इतिहास पिंगलः अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २)।

पिंगल—अर्द्ध अपभ्रंश की स्थिति अपभ्रंश और भाखा की बीच की स्थिति बताती है। इसका रूप पृथ्वीराज रासो तथा राजस्थान के 'पिंगल' साहित्य में मिलता है।[१०३] गुरु गोविन्दसिंह (सं० १७२३ से ६५) के विचित्र नाटक में यह शब्द मिलता है।[१०४] इसके पश्चात इस शब्द का प्रयोग राजस्थान के अनेक चारण कवियों ने किया। बांकीदास,[१०५] बुधाजी,[१०६] सूरजमल,[१०७] मुरारियान[१०८] आदि ने इस शब्द का प्रयोग किया है। पिंगल शब्द का प्रयोग ब्रज भाषा के लिए होता था।[१०९] डा० ग्रियर्सन ने पिंगल की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से बताई है।[११०] डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने भी यही बात कही है।[१११] सूरजमल ने 'पिंगल उपनायक गिरा' की स्थिति दिल्ली और ग्वालियर के बीच बताई है।[११२]

मध्य देशी—यह नाम बहुधा नहीं मिलता। बनारसी दास जैन के अर्द्ध कथानक में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है—

मध्य देस की बोली बोलि।
गर्भित बातें कहूँ जी खोलि ।।

---

१०३. डा० सुनीति कुमार चटर्जी, इन्डोएरियन एण्ड हिन्दी, पृ० ६९।
१०४. दशम ग्रंथ, श्री गुरुमत प्रेस अमृतसर द्वारा प्रकाशित, पृ० ११७ "भाषा पिंगल दी।"
१०५. बाकीदास ग्रंथावली, भाग २, पृष्ठ ८१।
१०६. वही पृ० १०।
१०७. वंश भास्कर, प्रथम राहि, चतुर्थ मयूख, पृ० ४०।
१०८. डिंगल कोष पृ० १९।
१०९. मोती लाल मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४।
११०. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, भाग प्रथम, पृ० १२६।
१११. राजस्थानी भाषा पृ० ६४।
११२. पर दिल्ली औ ग्वालियर बीस ब्रजादिक देस ।
　　पिंगल उपनायक गिरा तिनकी विसेस ।।

मध्यदेश का परिचय तो "कविप्रिया" में महाकवि केशवदास जी ने भी दिया था और वहाँ की भाषा को "सुभाषा" लिखा है, अर्थात् सुन्दर भाषा।[११३] इन पद्यों में भाषा मध्यदेशी, नहीं कही गई, केवल मध्यदेश की बोली या भाषा की बात कही गई है।

अन्तरवेदी—पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी ने एक दोहा उद्धृत किया है[११४]—

अन्तर्बेदी नागरी गौड़ी पारस देस।
अरू जामें अरबी मिलें, मिश्रित भाषा भेस ॥

इसमें अन्तर्वेदी शब्द आया है। डा० ग्रियर्सन ने भी लिखा है कि ब्रजभाषा को अन्तर्वेदी भी कहा जाता है।[११५] अन्तर्वेदी की भाषा इसका अर्थ है। अन्तर्वेद का परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया है :[११६] यज्ञों की भूमि के अन्तर्गत स्थित पवित्र देश।

ग्वालियरी—अगर चन्द नाहटा ने "ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रंथ" नामक एक लेख लिखा है।[११७] उसके अनुसार जयकीर्ति ने सं० १६८६ सन् १६१६ ई० में कृष्ण रुकमिणी री बेलि पर टीका लिखी थी। उसने ग्वालेरी भाषा के संबंध में एक दोहा उद्धृत किया है।[११८] जयकीर्ति ने जिस ग्वालेरी भाषा वाली टीका के बारे में कहा है, उसका कर्त्ता गोपाल कवि है, जो अपनी पुस्तक में अपनी भाषा को "ब्रजभाषा" कहता है। अर्थात् ग्वालेरी भाषा और ब्रजभाषा कभी पर्याय थी।[११९] भाषा कई थीं पर उन सब में "ग्वालेरी" भाषा "रससार" मानी जाती थी।[१२०] राहुल जी के मत से ब्रज बुन्देलखंडी भाषा ग्वालेरी कही जाने लगी।[१२१]

---

११३. आछे आछे असन बसन, बस, पास, पसु,
दान सनमान समान बाहन बखानिए।
लोग, भोग, योग, आग, बाग, राग रूपयुत,
भूषननि भूषित सुभीषामुख आनिए ॥
सातौ पुरी तीरथ सरित सब गंगादिक,
केशोदास पूरन पुरान गुन जानिए।
गोमाचल ऐसे गढ़ राजा मानसिंह जूसे,
देशन की मणि यह मध्य देश जानिए ॥

११४. "भारती" जून १६५४, पृष्ठ ७।

११५. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जिल्द ६, भाग १, पृष्ठ ६६।

११६. वही।

११७. "भारती" मार्च १६५५।

११८. ग्वालेरी भाषा गपिल मन्द अरथ मति भाव,
बात बन्ध किय भाषावित् समझन हिय सम भाव।

११६. राहुल सांकृत्यायन, भारती, अगस्त १६५५, पृष्ठ १६७।

१२०. देस देसतें होत सो भाषा बहुत प्रकार।
लखत हैं तिन सबन में ग्वालियर रससार ॥

लल्लूलालजी द्वारा "जनरल प्रिंसिपल्स आफ इनफ्लैक्शन एण्ड कंजूगेशन इन ब्रजभाषा" की भूमिका में उद्धृत।

१२१. भारती, अगस्त १६५५, पृ० १६७।

प्रारम्भ में "भाखा" कहलाने वाली भाषा "ब्रज भाखा" हुई।[122] डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "ब्रजभाखा" शब्द का प्रयोग पहले पहल भिखारीदास ने किया।[123] पर संवत् १६४४ में ही इस शब्द का प्रयोग गोपाल ने अपने रस विलास में इस प्रकार किया:—

मरू भाषा निरजल तजी, करि ब्रज भाषा चौज।
अब गोपाल यातें लहैं, सरस अनोपम मौज ॥[124]

समरथ कृत "रसिक प्रिया" की टीका (सं० १७५५) में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है:—

सुर भाषा तें अधिक है, ब्रज भाषा कौं हेत।
ब्रज भूषन जाको सदा, मुख भूषन करि लेत ॥[125]

इन्होंने ब्रज भाषा को संस्कृत के समान माना है। घनानन्द ने भी, सं० १७७१ से ९६, इसी शब्द का प्रयोग किया है।[126] कुलपति मिश्र ने भी ब्रजभाषा को संस्कृत के समान ही माना है और उसकी श्रेष्ठ रचना सतसई मानी है—

ब्रज भाषा भाषत सकल सुरवानी समतूल।
ताहि बखानत सकल कवि जान महा रसतूल ॥
ब्रज भाषा बरनी कबिन बहु विधि बुद्धि विलास।
सबकी भूषन सतसैया करी बिहारी दास ॥[127] रस रहस्य

मिरजाखाँ ने इसी "ब्रज भाखा" के व्याकरण की रचना की है।[128] लल्लू लाल जी ने भी इस ब्रज भाखा का व्याकरण लिखा।[129] भिखारी दास ने अपने काव्य निर्णय में इस भाषा की व्याख्या की है[130]। ब्रजभाषा शब्द इस प्रकार काफी प्रचलित रहा।

डा० ग्रियर्सन ने ब्रजभाषा का सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश से बताया है।[131]

---

१२२. मोती लाल मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १०।
१२३. ब्रज भाषा व्याकरण, भूमिका पृ० १०।
१२४. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सं० १७४९, पद्य ४५।
१२५. दानसागर भंडार, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सं० १७९९, पद्य १७।
१२६. नेही महा ब्रज भाषा प्रवीन और सुंदरतान के भेद को जानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सीघन जू के कवित्त बखानै ॥
१२७. लल्लू लालजी ने "ब्रज भाषा व्याकरण की भूमिका" में उद्धृत किये हैं।
१२८. इसका अनुवाद जियाउद्दीन ने किया है। वह प्रकाशित हो गया है।
१२९. जनरल प्रिंसीपल्स आफ इनफ्लेक्शन एण्ड कंजूगेशन इन द ब्रजभाषा, कलकत्ता १८११।
१३०. ब्रज भाषा-भाषा रुचिर कहै सुगति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यो पै अति प्रकट जु होइ ॥
१३१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जिल्द ९, भाग १, पृ० २।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने ब्रजभाषा की परंपरा इस प्रकार बताई है—

"ऐतिहासिक विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदीच्य और मध्यदेश पंजाब और पछांह विशेष करके मध्यदेश में भारतीय आर्य सभ्यता ने अपनी विशेषताएं प्राप्त कीं और इन प्रान्तों की भाषा युग-युग में सर्वजनगृहीत और सर्वजन-समाहृत हुई—संस्कृत, पालि, शौरसेनी "अपभ्रंश, ब्रजभाषा।"[१३२] मोती लाल मैनारिया का मत है, "चौदहवीं शताब्दी में जिस समय राजस्थानी भाषा का उदय हो रहा था, लगभग उसी समय शूरसेन देश अथवा ब्रजमंडल में ब्रजभाषा विकसित हो रही थी, जिसका आधार शौरसेनी अपभ्रंश था। आरम्भ में यह भाखा कहलाती थी, पर बाद में ब्रजभाषा के नाम से पुकारी जाने लगी।"[१३३] गार्सा-द-तासी ने भी अपने इतिहास में भाखा ही लिखा है।[१३४] डा० सुनीति कुमार चटर्जी इसके विकास क्रम को इस प्रकार बताते हैं—"ऐसा जंचता है कि अपनी बेटी ब्रज भाषा में शौरसेनी अपभ्रंश को नवीन कलेवर मिला, नये आयुकाल को उसने प्राप्त कर लिया।"[१३५] आगे चलकर मध्यदेश की भाषा के क्रम के सूत्र देते हैं[१३६]—

१. संस्कृत।
२. प्राचीन शौरसेनी जिसका एक साहित्यिक रूप है "पालि"।
३. शौरसेनी प्राकृत।
४. शौरसेनी अपभ्रंश, तथा उकीका रूप-भेद नागर अपभ्रंश।
५. राजस्थान की पिंगल भाषा तथा पुरानी ब्रजभाषा।
६. मध्यकालीन ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की मिश्र शैली।
७. दकनी।
८. दिल्ली की खड़ी बोली।
९. आधुनिक नागरी हिन्दी, उसका मुसलमानी रूप उर्दू। उर्दू का जन्म भी ब्रज से हुआ।[१३७] मौलाना आजाद का भी यही मत था।[१३८]

ब्रज भाषा का विस्तार मध्य देश

भिखारी दास जी ने लिखा है कि ब्रजभाषा की कविता करने के लिए ब्रजवास आवश्यक नहीं है। ब्रजभाषा का परिचय ब्रज से बाहर रहने वाले कवियों से भी मिल

---

१३२. ऋतम्भरा, हिन्दी की उत्पत्ति, पृ० ७।
१३३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १०।
१३४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनु० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ० २।
१३५. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८०।
१३६. वही, पृ० ८१।
१३७. मद्रास में उर्दू, बाकर आगाह, इब्राहीमिया मशीन प्रेस, हैदराबाद, पृ० ४६।
१३८. चन्द्रबली पांडे, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८६।

सकता है।[१३९] सोलहवीं शती के मध्य तक ब्रजभाषा सारे मध्यदेश की साहित्यिक भाषा हो गई थी।[१४०] धीरेन्द्र वर्मा ने "मध्यदेश का विकास" एक लेख लिखा।[१४१] इसमें ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अलबरूनी तक का मध्यदेश का विकास चित्रित किया गया है। उनके अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण में मध्यदेश का अर्थ कुरू, पांचाल, वश और उशीनरों का प्रदेश था। अर्थात् पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में फ़रूखाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में प्रायः चम्बल नदी तक का आर्यवर्त देश ऐतरेय ब्राह्मण के युग में मध्य देश गिना जाता था। मनु के अनुसार हिमालय और विन्ध्य के बीच में जो पश्चिम में विनशन तक और पूर्व में प्रयाग तक है वह मध्यदेश बताया है।[१४२] विनशन मेवाड़ या उदयपुर के पश्चिम का मरूदेश ही है।[१४३] बौद्ध साहित्य में मध्य देश की सीमाएं इस प्रकार दी हुई हैं: मध्यदेश की पूर्व दिशा में कंजगला नामक कस्बा है। उसके बाद बड़े शाल के वन हैं और फिर आगे सीमांत प्रत्यंत देश हैं। पूर्व दक्षिण में ज्ञललवती नामक नदी है। इसके आगे सीमान्त देश दक्षिण दिशा में सेत कार्णक नाम कस्बा है। उसके बाद सीमान्त देश पश्चिम दिशा में थून नामक ब्राह्मण ग्राम है, उसके बाद सीमांत उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमांत देश है।[१४४] ईत्सिंग ने अपनी यात्रा के विवरण में मध्यदेश की ये सीमाऐं लिखीं हैं: स्थूल रूप में भारत के मध्यदेश से सीमान्त भूमियों प्रत्यंतक तक का अन्तर पूर्व में और पश्चिम में ३० योजन

---

१३६. सूर, केसव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्मा।

चिंतामनि, मतिराम, भूषण सुजानिए।
लीलाधर सेनापति, निपट, नेवाज, निम्मा,
नीलकंठ, मिश्र सुखदेव देव मानिए।
आलम रहीम, रसखान, सुन्दरादि,
अनेकन सुमतिमए कहां लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजवास हीन अनुमान्यौ,
ऐसे ऐसे कबिन की बानी हू सौं जानिए।

१४०. मोतीलाल मेनारिया, राज्यस्थान पिंगल साहित्य पृ० ११। यहीं लेखक ने एक टिप्पणी दी है:

कन्नौज के राज-कवि राजशेखर सं० ६३७ से ७७ के अनुसार बनारस मध्यदेश का पूर्वी विन्दु था। पंजाब के कन्नौज जिले का पृथूदक अथवा पिहोवा उसकी उत्तरीय एवं आबू पर्वत पश्चिमी सीमा थे। दक्षिण में उसका विस्तार गोदावरी तक था, जिसमें राजस्थान का भी एक बड़ा भाग सम्मिलित था।

१४१. विचार धारा, पृ० १०।

१४२. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये चत् दिन शनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।

१४३. भारती, जून १६५४, पृ० ७।

१४४. जातक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद प्रथम खंड, पृ० ६४।

से अधिक है। दक्षिण में और उत्तर में प्रत्यन्तक की दूरी ४०० योजन से अधिक है।[१४५] सं० १३६१ में मेरूतुंगाचार्य ने, प्रबन्ध चिन्तामणि में मध्यदेश का नाम तो दो बार लिया है पर उसकी सीमाएं नहीं लिखी।[१४६] ई० चौदहवीं शती के अन्त में "मानकुतुहल" की रचना हुई। इसका फारसी अनुवाद सन् १६६६ में फ़रीरुल्ला ने किया। उसने लिखा कि मानसिंह तोमर द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद के पद देशी भाषा में लिखे जाते थे। वह इस प्रदेश को सुदेश कहता है। इस सुदेश की सीमाओं के संबंध में वह लिखता है: "सुदेश से मतलब है ग्वालियर से जो आगरा का राज्य केन्द्र है और जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण में ऊज तथा पश्चिम में वारां तक है। भारतवर्ष में इस बीच की भाषा सबसे अच्छी है।[१४७] कवि केशव दास जी ने सं० १६०१ में मध्य देश में सातोंपुरी, सब तीरथ, गंगादिक नदी, गोपाचलगढ़ लिखे हैं।[१४८] बनारसी दास जैन ने अपने अर्द्ध कथानक में सीमा तो नहीं लिखी पर अपना निवास 'मध्य देश" में बताया है।[१४९] उन्होंने अपनी भाषा को" मध्यदेश की बोली बताया है।[१५०] इस प्रकार मध्यदेश और ब्रजभाषा का संबंध माना जाता रहा है।

पीछे के लेखकों ने ब्रजभाषा की सीमाओं पर जो लिखा है, उस पर और दृष्टि डाल लेनी चाहिए, ताकि ब्रजभाषा के विस्तार का विकास स्पष्ट हो। "वंश भास्कर" के रचयिता प्रसिद्ध चारण "सूरजमल" ने एक दोहे में ब्रजभाषा का प्रदेश दिल्ली और ग्वालियर के बीच माना है।[१५१] "तुहफतुल हिन्द" के कर्ता मिरजाखां ब्रजभाषा के क्षेत्र का इस प्रकार उल्लेख करते है: भाखा ब्रज तथा उसके पास पड़ौस में बोली जाती है। ग्वालियर तथा चन्दवार[१५२] भी उसमें सम्मिलित हैं। गंगा यमुना का दोआब भी ब्रजभाषा का क्षेत्र है।[१५३] इसके पश्चात् जो ब्रजभाषा व्याकरण मिलता है, वह लल्लूलालजी का है। उसमें ब्रजभाषा का क्षेत्र दिया हुआ है। मुख पृष्ठ पर ही लेखक ब्रजभाषा को स्पष्ट करता हुआ लिखता है कि ब्रजभाषा वह भाषा है जो ब्रज, जिला ग्वालियर, राज भरतपुर,

---

१४५. ईत्सिंग की भारत यात्रा, सन्तराम बी० ए० भूमिका पृ० "य"।

१४६. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रबन्ध चिंतामणि, सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृ० ४५ तथा ८७।

१४७. हरिहर निवास दिवेदी, मानसिंह और मान कुतुहल, पृ० ६१।

१४८. यह कवित्त "कविप्रिया" में है। पीछे उद्धृत हो गया है। मध्यदेशी।

१४९. याही भरत सुखेत में मध्यदेस सम ठाऊं।
बसै नगर रोहतिगपुर निकट बिहौली गाऊं॥

१५०. मध्य देश की बोली बोलि।
गर्भित बातें कहूं जी खोलि॥

१५१. पुर दिल्ली औ ग्वालियर बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरा तिनकी मधुर बिसेस॥

१५२. आगरा के पूर्व २५ मील पर एक जिला, मथुरा से इटावा वाले रास्ते पर, यमुना नदी के किनारे, चौहानों की बस्ती अधिक। जैरेट्स आईने अकबरी, पृ० १८३।

१५३. द ग्रामर आफ़ ब्रजभाखा, जियाउद्दीन, भूमिका, पृ० ७।

बटेश्वर, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुंदेल खंड में बोली जाती है।[१५४] आगे लेखक बताता है कि ब्रज और ग्वालियर जिलों की भाषा शुद्ध "ब्रजभाषा" है।[१५५] डा० ग्रियर्सन ने ब्रज भाषा का विस्तार इस प्रकार लिखा है: मथुरा को केन्द्र मानते हैं: दक्षिण में यह आगरे तक, भरतपुर राज्य के बड़े भाग में, धौलपुर में तथा करौली में ब्रजभाषा बोली जाती है। ग्वालियर के पश्चिमी भागों तथा जयपुर के पूर्वी भाग तक यही भाषा है। उत्तर में गुड़गांव के पूर्वी भाग तक ब्रजभाषा प्रचलित है। उत्तर-पूर्व में इसकी सीमाएं दोआब तक, बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा तथा गंगापार तक बदायूं, बरेली तथा नैनीताल के तराई परगनों तक जाती है।[१५६] मध्यवर्ती दोआब की भाषा को अंतर्वेदी कहा गया है।[१५७] मध्यवर्ती दोआब की सीमाओं में आगरा, एटा, मैनपुरी, फ़र्रुखाबाद तथा इटावा जिले आते हैं। यहां इतनी बात जान लेनी चाहिए कि इटावा और फ़र्रुखाबाद में कनौजी है, शेष में ब्रजभाषा।

अलीगढ़ की भाषा को अधिकांश ब्रजभाषा कहा गया है।[१५८] मैनपुरी की भाषा को गजेटियर में ब्रज नाम नहीं दिया गया है। पर वहां की भाषा की जो विशेषताएं दी गई हैं, वे ब्रज से मिलती-जुलती हैं।[१५९]

कैलॉग ब्रज भाषा के क्षेत्र के विषय में कहता है कि राजपूताना की बोलियों के उत्तर पूर्वतक, पूरे 'अपर दोआब' में गंगा जमुना की घाटियों में ब्रज भाषा बोली जाती है।[१६०] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इन सीमाओं को और विस्तृत कर दिया है।[१६१] इसका प्रसार निम्नलिखित प्रदेशों में है: उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूं तथा बरेली के जिले: पंजाब के गुड़गांव जिले की पूर्वी पट्टी, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्य भारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग। क्योंकि ग्रियर्सन साहब का यह मत लेखक को मान्य नहीं कि कन्नौजी स्वतंत्र बोली है। इसलिए उत्तर प्रदेश की पीलीभीत, शाहजहांपुर फ़र्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रज प्रदेश में सम्मिलित कर लिए गये हैं।

ब्रज साहित्य मंडल के फ़ीरोजाबाद अधिवेशन में भाषण करते हुए पं० कृष्णदत्त पालीवाल ने ब्रज की सीमाओं के विषय में कहा था। ब्रज क्या है 'वह कौनसा प्रदेश है'

---

१५४. जनरल प्रिंसीपल्स आफ़ इनफ़्लैक्शन एण्ड कंजूकेशन इन द ब्रजभाखा।

१५५. वही।

१५६. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया, जिल्द ९, पृ० ६९।

१५७. वही।

१५८. एच० आर० नौविल, अलीगढ़ गजेटियर, पृ० ५५,५६: ९४·१४ प्रतिशत जन संख्या अंतर्वेदी बोलती है।

१५९. स्टैटिस्टीकल डिस्क्रिप्टिव एन्ड हिस्टोरीकल एकांउट आफ़ एन० डबल्यू० प्राविंसेज आफ़ इंडिया, एटकिंसन, जिल्द ४, भाग १, पृ० ५६९।

१६०. ग्रामर आफ़ द हिन्दी लैंग्वेज, पृ० ६६।

१६१. ब्रजमाला, पृ० ३३।

उसकी सीमाएँ क्या हैं, इस संबंध में विविध मत प्रकट किए गए हैं। मुझे पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का मत औरों से अच्छा मालूम होता है। उनके अनुसार अभी तक ब्रज की सीमाएँ पूर्णतया निश्चित नहीं हो पाई हैं। परन्तु एक दृष्टि से दिल्ली के दक्षिण से लेकर इटावे तक और अलीगढ़ से लेकर धौलपुर और ग्वालियर तक ब्रज मंडल का विस्तार है।[१६२] श्री जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार उत्तर-पूर्व में ब्रज भाषा की सीमा अलीगढ़ जिले तक तथा एटा जिले में सोरों के आसपास तक जाती है, पूर्व में यह भाषा शिकोहाबाद, इटावा, व मैनपुरी की सीमाओं तक बोली जाती है। आगरा जिला तो ब्रज के क्षेत्र में है ही। दक्षिण में धौलपुर, ग्वालियर राज्य की उत्तर सीमा तक यही भाषा है। दक्षिण-पश्चिम धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य का कुछ भाग इस भाषा क्षेत्र में सम्मिलित है।[१६३]

यह बोली जाने वाली भाषा की सीमाएँ हुईं। काव्य के लिए इस भाषा का प्रयोग बहुत व्यापक था। इस संबंध में डा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कहते हैं: 'ब्रज की वंशी ध्वनि के साथ अपने पदों की अनुपम झंकार मिलाकर नाचने वाली मीराँ राजस्थान की थीं, नामदेव महाराष्ट्र के थे, नरसी गुजरात के थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भोजपुरी भाषा क्षेत्र के थे। ब्रज भाषा को अपनाकर एक से एक कवियों की रस सिद्ध वाणी से उसे इतना समृद्ध बना देने वाले पुष्टिमार्ग के आचार्य भी दाक्षिणात्य थे। बिहार में भोजपुरी मगही और मैथिली भाषा क्षेत्रों में भी ब्रजभाषा के कई प्रतिभाशील कवि हुए हैं।''[१६४] अगरचन्द नाहटा के एक लेख[१६५] के अनुसार ब्रज भाषा कच्छ तक समादृत थी। वहाँ के महाराव लखपत बड़े विद्या-प्रेमी थे। ब्रज भाषा के प्रचार के लिए उन्होंने एक विद्यालय खोला था जिसमें मारवाड़, गुजरात आदि दूर दूर से ब्रज काव्य की शिक्षा पाने के इच्छुक पहुँचते रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सुदूर दक्षिण में भी ग्वालियरी भाषा पहुँची थी: ग्वालेरी का उल्लेख जयकीर्ति आदि ने ही नहीं किया, बल्कि सुदूर दक्षिण में स्थापित बहमनी उत्तराधिकारिणी रियासतों के साहित्यकार भी ग्वलेरी कविता का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख करते थे।[१६६] अगरचन्द नाहटा ने भी ब्रज भाषा के प्रसार पर अपना मत देते हुए लिखा है: मध्यकाल में ब्रज भाषा का प्रचार ब्रज एवं उसके आसपास के प्रदेशों में ही नहीं, पूरवर्ती प्रदेश में भी रहा है। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ एवं कच्छ आदि में भी ब्रज भाषा की रचनायें हुई हैं।[१६७] बंगाल के कवियों ने भी ब्रज भाषा में

---

१६२. ब्रज भारती, चैत्र, वैसाख, जेष्ठ, २००४ वि०, वर्ष ५, सं० १, पृ० ३।
१६३. ब्रज भारती, वर्ष २, अंक ४, पृ० २६।
१६४. नई धारा, वर्ष ८, अंक ११, पृ० ६।
१६५. सुन्दर श्रृंगार की भाषा, भारती, अप्रैल १९५५, पृ० ३१२ से १४।
१६६. भारती, अगस्त १९५५, पृ० १६७।
१६७. ब्रज भारती, वर्ष १२, सं० १ सं० २०११, ब्रज भाषा का विशिष्ट ग्रंथ प्रवीणसागर।

कविता लिखी ।[१६८] मराठापोवाड़ा या युद्ध गीत के लेखक भी कभी-कभी ब्रज भाषा का प्रयोग करते थे ।[१६९]

मद्रास में उर्दू का आधार बन कर ब्रज भाषा पहुँच गई ।[१७०]

---

१६८. सुनीति कुमार चटर्जी, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८० ।

६९. वही ।

१७०. बाकर आगाहं, "मद्रास में उर्दू", इब्राहीमिया मरानि प्रेस, हैदराबाद १९३८, पृ० ४६ ।

सत्येन्द्र

जगदेव का पँवाड़ा

ब्रज में 'जगदेव का पँमारा' देवी के रतजगे के गीतों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भगत लोग देवी विषयक अन्य गीतों के साथ इस पँमारे को भी गाते हैं। इस जागरण में माता जी के भजन, जगद्देव, अहिरामन लीला, मोरंग दाने की लड़ाई, तथा देवी के सोहिले गाये जाते हैं। इन गीतों में केवल 'जगद्देव' ही एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। जगद्देव को धर्मगाथा में स्थान मिलना लोकवार्ता की सामान्य घटना नहीं। यह 'जगद्देव' मालवेश थे। मालवा के परमार वंश में इतिहास की दृष्टि से कितने ही महान् पुरुष हुए हैं, जिनमें से मुंज और भोज तो इतिहास में ही नहीं, साहित्य में भी अमर हैं। किन्तु लोकवार्त्ता में इन्हें विशेष स्थान नहीं मिला। भोज तो सिंहासन बत्तीसी के बहाने लोक में कुछ चले भी हैं, पर उसमें बार-बार उन्हें विक्रमादित्य की यश-कथा के लिए केवल एक बहाना या श्रोता होना पड़ा है। एक लोकोक्ति में भी वे जीवित हैं—कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली। किन्तु इसी वंश के जगदेव का जो मान लोकवार्त्ता ने किया है वह उसे इतिहास तक से नहीं मिला। अभी कुछ समय पूर्व तक तो जगदेव को केवल लोक-कल्पना का ही नायक माना जाता था। इधर अब यह भ्रान्ति दूर हो गयी है। जगदेव निश्चय ही ऐतिहासिक पुरुष था, फिर भी लोकवार्त्ता ने उसे अपनी तरह ही अपनाया है। जगदेव की इस 'लोकवार्त्ता' पर विस्तृत गवेषणात्मक निबंध 'भारतीय साहित्य' भाग ४ अंक १ में प्रकाशित हो चुका है। उसे एक प्रकार से इस पंवाड़े या पंमारे की भूमिका समझना चाहिये। यहाँ हम ब्रज में उपलब्ध 'पँमारे' का रूप प्रकाशित कर रहे हैं।

यह 'पँमारा' प्रधानतः मथुरा के लोहवन गाँव के भगत 'नेंकसा' से सुनकर लिखा गया है। किन्तु इसमें कुछ आगरा के कुबूलपुर गाँव की लोक-गीत-गायकों की टीम से भी सम्मिलित किया गया है। लोहवन का गीत विद्यापीठ के तत्कालीन एक अनुसंधान सहायक श्री चन्द्रभान रावत द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। कुबूलपुर टीम का गीत विद्यापीठ में ही टेपरिकार्डर से अंकित कर लिया गया था। उससे इसे एक दूसरे अनुसंधान सहायक डा० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव ने उतारा। इन दोनों गीतों को मिलाकर ही यह पूरा 'पँमारा' यहाँ दिया जा रहा है। कहीं-कहीं तो आगरे के गीत से नेंकसा के गीत की

टूट पूरी हो जाती है। हमें खेद इस बात का है कि आगरे की टीम का यह पँमारा उतने विस्तार युक्त नहीं जितना लोहवन का है।

लोहवन के पँमारे में जगदेव के १२ मवासों का उल्लेख है। मवासा शब्द यहाँ जगदेव के पराक्रमों के लिए आया है। इन बारह मवासों में से 'इकमन राजा का मवासा' गीत लिखाते समय गायक 'नेंकसा' भी भूल गया। वह इसमें छूटा हुआ है।

पँवाड़े का परिचय

गायक

नेंकसा भगत से यह पवाँड़ा प्राप्त किया गया है नेंकसा जाति का चमार है। लोहबन (मथुरा) का निवासी है। हिन्दी विद्यापीठ के लिए इसको उसके तत्कालीन अनुसंधान सहायक श्री चन्द्रभान एम० ए० ने लिपिबद्ध किया है। इसमें कबूलपूर की टीम का गीत भी यथास्थान जोड़ दिया गया है। इसमें कुबूलपुर की टीम का गीत भी यथा स्थान जोड़ दिया गया है।

जागरण गीत

ब्रज में देवी के जागरण के गीतों में यह गीत भी गाया जाता है। इसमें जगदेव के गाये जाते हैं। यह गीत मवासे जागरण में खड़े होकर ही 'भगत' गाते हैं। इस गीत को गाते समय, साथ में मृदंग और झांझ बजते हैं।

भगत

यों तो व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'भगत' शब्द 'भक्त' से निकला है, पर लोक-शब्द विचार (Folk-Etymology) की दृष्टि से, यह शब्द देवी के विशेष पुजारी के लिए ही आता है; और यह प्रायः नीची जाति के ही होते हैं, जैसे, कुम्हार, माली, कोली या चमार।

मवासे

जगदेव के इस गीत में जगदेव के बारह मवासों का वर्णन है। वीरतापूर्ण, यशस्वी और पराक्रमी कामों को 'मवासे' कहा गया है। जगदेव के ऐसे बारह 'मवासे' ये हैं :

१. भैया कौ मवासौ
२. नाहर कौ मवासौ
३. इकमन राजा कौ मवासौ
४. दाने कौ मवासौ
५. सूरसन कौ मवासौ
६. तिन राजा कौ मवासौ
७. कनवज कौ मवासौ
८. बंगाल कौ मवासौ
९. वीरसेंन कौ मवासौ



जगदेव के पँवाड़े का गायक नेंकसा

१०. वीरमती कौ मवासौ
११. वज्रकोट कौ मवासौ
१२. दिलफांक राजा कौ मवासौ

१—भैया कौ मवासौ

यह प्रथम मवासा वस्तुतः समस्त गीत और उसमें आये मवासों की भूमिका है। रंधौर ने देवी का यज्ञ किया। जगदेव को निमंत्रण दिया गया। जगदेव और उसकी माता यज्ञ में सम्मिलित होने गये। वहाँ जगदेव की माँ का अपमान हुआ। इस पर जगदेव रुष्ट हुआ। उसने साढ़े बारहमन की सांग बनवायी और भाई रंधौर की सभा में जाकर गरका दी। इस प्रकार बल-प्रदर्शन करके वह धारा को छोड़कर चल पड़ा।

२—नाहर कौ मवासौ

धारा को छोड़ने के बाद एक भयानक वन में जगदेव ने ऐसे सिंह का संहार किया जिससे उस काल के बड़े बड़े शूरवीर राजा-महाराजा तक भयभीत थे।

३—इकमन राजा कौ मवासौ

४—दाने कौ मवासौ

अपनी यात्रा में जगदेव एक ऐसे राज्य में पहुँचा जहाँ एक दाना आता था और राज्य की ओर से जिसे एक मनुष्य खाने के लिए मिलता था। जगदेव वहाँ एक बुढ़िया की झोंपड़ी में ठहरा। और उसी दिन उस बुढ़िया के इकलौते बेटे की बलि की बारी थी। जगदेव उस लड़के के स्थान पर स्वयं गया और दाने को मार कर लौट आया।

५—सूरसेन कौ मवासौ

जगदेव सूरसेन के देश में पहुँचा तो फाटक बंद मिले। राजा से फाटक बंद होने का कारण पूछा। १०१ कावरिया आते हैं, उन्हें देने के लिए खजाने में पैसा नहीं। जगदेव सभी कावरियों को जंगल में लिवा ले गया। ब्रह्मफाँस से सबको बाँध कर दाने वाले तेगा से उनकी नाक काटली। कावरियों के राजा ने जंगल में सोते हुए जगदेव को घेरा पर उधर से गूजर की सेना ने उसकी रक्षा की, पर सभी काम आये तब जगदेव की आँख खुली। उसने देवी का स्मरण कर सभी सेना को जिला दिया।

६—तिन राजा कौ मवासौ

जब जगदेव तिन राजा के यहाँ पहुँचा तो, उसे राजा ने लखटकिया बना लिया और सूखे बाग को हरा करने का आदेश दिया। जगदेव ने देवी को मनाया, देवी ने आकर बाग हरा कर दिया। पर राजा के कोश में पंद्रह दिन से अधिक लाखटका प्रतिदिन देने की सामर्थ्य नहीं थी, अतः जगदेव वहाँ से चल पड़ा।

७—कनबज कौ मवासौ

कनबज पहुँचा तो दरवाजे पर बंब रखे मिले। उसने बंब को बजा दिया। कनबज की रानी की सेना उससे लड़ने आयी। सब को मार भगाया। रानी ने तब उसे बुलाया। सत्कार किया, पूछा, कैसे आये? पिता के बंधन छुड़ाने। रानी ने कहा—मेरी पहेली बताओ। पहेली बतादी। तब कहा—मुझसे विवाह करो। जगदेव ने कहा—तू मेरी धर्म की माता है। तेरा विवाह तो अपने पिता से ही करूँगा। पिता के बंधन छुड़ाकर रानी से विवाह कराया, और जगदेव आगे चल दिया।

८—बंगाले कौ मवासौ

बंगाले पहुँचा। वहाँ तमोलिन ने उसे जादू से तोता बना लिया और घर ले गयी। तब देवी बंगाल में आयी, बंगाल के राजा से कहकर तमोलिन की खोज करायी, और जगदेव को बंधन मुक्त किया।

९—वीरसेन कौ मवासौ

बंगाल से आगे वीर नगर में पहुँचा। वहाँ सूखा ताल पड़ा था। पत्थर पर कोई बीजक लिखा था। उस ताल में किसी की बलि देकर ही पानी आ सकता था। घोड़े ने वहीं पानी पीने की ज़िद की। जगदेव खाँड़ा उठाकर बलि देने को तत्पर हुआ कि देवी आ गयी। उसी ने उसका सिर काट कर ताल में चढ़ाया तो पानी से वह भर गया। तब देवी उसी सिर को जगदेव के धड़ पर रखकर जिलाने चली, पर फूलन दे उसकी रानी ने कहा—माँ झूठा सिर नहीं चाहिये। तब माँ ने नारियल मँगा कर उसे धड़ पर रखा तो वह जगदेव के सिर में परिणत हो गया।

१०—वीरमती कौ मवासौ

उस नगर में राजा की लड़की वीरमती के पास प्रति दिन एक मनुष्य जाता था और प्रातः मरा हुआ मिलता था। उस दिन एक दुखिया के लड़के का ओसरा था। माँ रोयी, तो जगदेव उसकी जगह रानी के पास गया। रात में रानी के मुख से नागिन निकली। लाँगुर ने उसे राजा की तलवार के म्यान में बंद कर लिया। प्रातः उठा तो वीरमती उससे विवाह करने को आग्रह करने लगी। पर उसने उसे धर्म-बहिन बना लिया।

११—वज्रकोट कौ मवासौ

वज्रकोट में पहुँचते ही वहाँ के दाने ने उसे घेर लिया। उससे कहा तुम बहुत दानी सुने गये हो। हमें सिर का दान दो। जगदेव ने तुरन्त सिर काट कर दे दिया। तभी माता आ पहुँची, और नारियल लगाकर फिर सिर पैदा कर दिया। पर दाने ने जगदेव को तब भी न छोड़ा। दो सौ मन कालीपीली सरसों का मिला ढेर दिखाकर कहा, इसे सबेरे तक अलग अलग कर दो। जगदेव ने अपना चींटा दल सुमिरा और उन्होंने प्रातः होते-होते सरसों अलग कर दी। दाना हार मान गया।

१२—दिलफाँक राजा कौ मवासौ

देवी माता वहाँ से दिलाफाँक चली गयी। वहाँ की कचहरी में जगदेव पहुँचा। माता ने उससे कहा मेरी अमानत दो। जगदेव ने झट अपना सिर काट कर माता को दे दिया। माता उसी शीश को फिर धड़ पर जमाने लगी तो, फूलनदे ने धक्का दे दिया कि हम झूठा शीश नहीं लेंगे। ग्यारह मवासे तक मैं निरंतर पति के साथ रही हूँ। तब माता ने फिर नारियल से ही सिर पैदा किया, तब फूलनदे के साथ जगदेव धारा को लौट आया। भाई-भाई मिल कर प्रसन्न हुए।

जगदेव कौ पँमारौ : गीत

(नेंकसा कौ कथन)

१. कंठ सुरसुती सुमिरि सैर माता कंठ लगाऊँ
जौ गुर होइ दयाल कछू हरि के गुन गाऊँ
आउ बुद्दि परगट होइ मैया, गुरु गन्नेस मनाइ
जगद्देव की लीला गाऊँ, सुनौ सभा चित लाइ
अरी मेरी आदि भवानी।

(आगरा के गायकों ने यों जगदेव का पमारा आरंभ किया—)

स्तवन

जगत मनोहर भोग तरे यदुनंदन नंद किशोरी हरे
यशा करत परिपूरण बरदे वृषभान किशोरी हरे।
× × ×
जन मध्य लता।।
× × ×

एरी मात मेरी फूलनदे देवा।
चढ़ै तुम्हारैं ध्वजा नारियल और चढ़ैं मेवा।।
अरी मात तैंनें असुरन के मारे। मात तैंनें····
दुष्टन के करि दए नाश तार दयैं भक्तन के सारे
अरे करे तैंनें पांचौ रे पंडा, करे तैंने पंडा
अरै झाल रह्यौ रैंशम कौ हाथन में झंडा।
अरी मात तैंनें······

अरी मात मेरी सकल बुद्धि दैना।
आयौ समर के बीच मात मेरी आजु खबर लेना।
अरी भलौ तैंने पंडन कौ कियौ,
भलौ तैंनें पंडन कौ कीयौ-पंडन कौ कीयौ,
भारत बीच भारुई के अंडा कि अरी घंटा टूटि परौ,
अंडा दिए बचाय। भलौ तैंनें पंडन कौ कीयौ।
अरे मिन्ठि तैंनें नल हू पै जाय करी

चंदा निकरी रात मातु ······जाय हरी
अरी दान बर जग्गरदेव को दीयौ
जाय जसपत के बीच कि अपनौ सीस चढ़ाइ दीयौ
भयौ रुण्ड ते मुण्ड कि अपनौ सीस सुजाय दीयौ
अरे घर तुण्डा भी हुआ
पिरथीगढ़ के माँझ मार सूली पै धर दीया
धरती पै पीरैं लाज करी
सूली तैं लिया बचाय आज तैंने पृथ्वी पै ऐसी लाज करी
अरी भगत दादू भी हुआ भगत दादू भी हुआ
गोद में तेरी पंख चढ़ाय (जराय) दीया ।
पहलैं पहलैं राम मनाऊँ रे,
दूजैं सतगुरु कौ ध्यानु रे ।
पीछैं लाजै सतगुरु कौ नामु जी
तीजैं मनाऊँ बाबा (माता) आपनी
निर्मल खैंचौ चीर
चौथें मनाऊं देवी पंचाली माता कौ आदि सो कंठ करै तिसरारली
माता कौ, देवी दुर्गा कौ
आदि भवानी
सौ कंठ करै तिसरार
रणधीर······· माता तेरी जगाय ---
रणधीर होम रचाइयौ माता दुर्गा कौ, देवी कौ, माता कौ, नौंतौ सबुपरिवार
बामनगढ़ नौंतौ गयौ राजा रंधीर कौ
ए कोई नौंतौ जनै जनै के कुमार
············द्वार
कहां कहां कूं नौंतौ गयौ
औ को को तैंने नौंतौ द्वार ।
बामनगढ़ नौंतौ गयौ सुन मेरी माता
नौंते जनै जनै कुमार
कोई माता जानिहै
कि कितने ठाड़े द्वार
गरीब भैया लीजिए गुनी गरीब निहार
मरी भेड़ की खाल तैं लोह भसम है जाय ।
धरजी लौ पहुँचाय कैं भइया जग्गदेव कूं
माता के आवै भौन में ।

बामनगढ़ कौ नौतौ लिख दियौ । माता बोली बेटा का का कूं नौंतौ भेजो है । तो राजा रंधीर बोले कि माता मैंने बामनगढ़ के काजें नौंतौ भेज दियौ है । तैंने कोई

भगत नौंतौ का। भगत नौंतौ ए—भगतु तौ वेई हैं जो भगमान कौ पाठु करैं। अरे कि तेरौ भइया है खास। कि को? कि जग्गदेव। आठौं पहर चौबीसों घंटा देवी बा के पास रहति है, वाके हिरदे में रहति है—बिना भइया ए सो जग्य काहूँ सों सुफल न होगी। रंधीर बोलो तौ कसे आवेगौ? हम बतामें कै लैकें चामर, रँग कै नाँई पीरे और पहुँचाय दें, रुकेगौ नहीं। रंधीर बोल्यौ, भाई भौत ठीक बात है। तौ चामर केसरि में रँगवाय दीन और नाऊ कें दिवाय घालो कै माता के नाम से लैकें चले नाऊ ठाकुर। चलत चलत के पौंचे कहाँ? कै राजा जग्गदेव के मा पौंचे। जग्गदेव जो काहै सो धारा नगरी रहौ कत्ते। हर ज्वारे चलौ कत्तो। रंधीर जु काम्रो सो राजपाट करतो, बामनगढ़ कौ राजाम्रो। तौ लैकें चामर पौंचें बा ठौरी तौ माता बोली बाकी—कै नाऊ ठाकुर तुम कैसें आए औ। आए काहें माता चामरु लाए हैं। कहा है? माता कौ देवी कौ जागरन है, होम है रह्यौ है, जोगी बामन सब को भोजन करायौ है, सबकूँ दच्छिना दीनी है। तौ अच्छी बात है।

जगद्देव नें माता ते कई कै तू चली जाय, बहूऐ लैजाय, बाल बच्चनु ऐ लैजा। हूँ तौ आ रहूँगो, पानी दूँगो मेरौ खेत सूखि जाइगौ। भरिया है जोका सो मो पैतें भेज डरे खेत की ले लैगौ माल कुटाई कल्लेगौ।

माता बोली कै एक काम करि बेटा! हमारे लये। डोला सजवाइदै, परदा डरवाइदै, कहार बुलवाइदै, तौ माता के होम में देवी के जागरन में हम जांगे। इतनी कही माता नें तौ जगदेव नै जो काहै धारानगरी में जाइकें, अपने रनिवास में चढ़िगौ और जाइकें कहारनु कूं अवाज़ लगाई कि ए कहारो भइया तुम डोला सजाय कें लै आम्रो। हमारी आज महतारी और हमरि धनि जो काहै होम में डोला में बैठि के नाईं जांइगी। तौ जगदेव की रानी और महतारी हार कूँ रोटी लै जातीं और खेतन में काम करतीं सो आजु डोलन में बैठिकैं जाइंगीं। सो गरीब की निन्द्रा संसारु कत्तु ऐ। तौ कहारन नें कही कै भइया एक काम करि कै फटे से परदा और बुड्ढे से पांच चार बनि कैं नाई कहार चले जाउऐ मइया ऐ पहुँचाइ आम्रौ। नहीं तौ धारा नगरी में ते हमें जि निकारि देगौ भइया। भौत ठीक बात है भइया। तौ टूटे से डोला, फटे से बामें परदा और चार डोकरे ८०-८०, ९०-९० बरिस के उमरि के करदये कै जाम्रों भइया पहुँचाइ आम्रौ। तौ डोरा जाके नाई आए कहार लै आए। तौ माता औ रानी बैठि कैं डोलनु में जाति भईं माता के होम कूँ जागरन कूँ।

तोसक मँगाय के राजा नें, राजा जगद्देव ने,
चाली चाली, डोलन में हाकरे।
सिरयल बेटा, राजा ते राजा रंधीर ते
बोले जाइ कें·········बिरमा दे
करतु करतु ए बिरमा ते जुम्राब रे।
अरे ले चलि सेना···उठि······
आमें आमें जगद्देवा अरुमात रे
अरे कैसें आमें··················

················राज पुरोहित,
कैसें कैसें उठी मन की बात रे
तेरे काजें होम रे माता कौ देवी दुर्गा कौ
गंगा ए कौ नौता कौ ग्रामैं रे
बोलैं माता राजा जगद्देव की
कब बाकैं होम रे माता कौ देवी दुर्गा कौ
कब कब की तौ राजा कै जौंनार रे
ग्राठें ग्राठें कौ होम है राजा कै देवी दुर्गा कौं,
नौमी नौमी राजा कें जौंनार जी।
पुनि राजा चाह है राजा रंधौर कौ
बोले राजा चाव है राजा रंधौर कौ
करतु करतु ए माता ते जुग्रावरे—जी
पांछें पीछें डोला गयौ
ग्रागें ग्रागें जगद्देव की मात रे
डोला पहुँचे जाइ कें महलन में
रानी गोधन में बैठी बैठी, सिंहासन मारि कै जी
रनिमास, मौहारि रे
बोले रानी का कहै,
राजा की रंधौर की,
ये डोला भेना कौन के : तेरी भैंना सौति हमारी।
ए मेरी भैंना तौ बिरम्हाती :
ग्राई ग्राई रे राजा मन मोहिरे
ए डौला भैंना तेरी भैंन के,
रानिनन के सासु बहुग्रन के,
ग्राई ग्राई माता के होम रे
राजा के जौंनार रे। राजा रंधौर कौ,
करतु करतु है माता ते जुग्राब जी।

[गायक ने 'जगदेव' की पूर्वकथा नहीं दी। उसे यहाँ यौं दिया जा सकता है। यह वृत्त टेम्पल महोदय के ग्रनुसार है—

मालवा के पंवार राजा उदयाजीत (उदयादित्य) के दो रानियाँ थीं। जिन दिनों उनके संतानें होने को थीं, उदयाजीत को एक राज्य में बंदी बना लिया गया।*

*किसी किसी कहानी में बताया गया है कि राजा कहीं कैद नहीं था। वह घर में ही सो रहा था। जगदेव का समाचार लेकर दासी पहुँची तो चुप खड़ी हो गयी। थोड़ी देर में रंधौर का जन्म हुग्रा। उसका समाचार लेकर दूसरी दासी पहुँची। तो राजाकी दृष्टि रंधौर वाली दासी पर पहले पड़ी ग्रौर रंधौर के जन्म का समाचार उसे पहले मिला, बाद में जगदेव का समाचार मिला। इसी ग्राधार पर राजा ने रंधौर को बड़ा मान लिया।

रानियों में से एक रानी ने पहले पुत्र को जन्म दिया। इसका नाम जगदेव रखा गया। जगदेव के पैदा होने का संवाद उसके पिता के पास एक भाट द्वारा भेजा गया। भाट अफीमची था, वह रास्ते में रुक रुक कर राजा के पास पहुँचा। उधर चार दिन बाद दूसरी रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रंधौर रखा गया। इसका संवाद लेकर एक ब्राह्मण गया। ब्राह्मण सीधा राजा के पास पहुँचा और भाट से पहले पहुँच गया। उसने रंधौर के जन्म का संवाद राजा को सुनाया। बाद में भाट पहुँचा, उसने जगदेव के जन्म का संवाद दिया। राजा ने जिसके जन्म का संवाद पहले सुना था, उसे ही बड़ा माना और उसे राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार किया। जगदेव की मां ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की पर रंधौर की मां का उसके प्रति दुर्व्यवहार बढ़ने लगा। अतः वह अपने पुत्र जगदेव को लेकर राजमहल छोड़कर चली गयी। दरिद्रों की तरह अपने परिश्रम पर निर्भर रह कर उसने जगदेव को पाला। बड़े होने पर जगदेव बहुत बलवान निकला। तभी रंधौर ने देवी का यज्ञ रचा! ×]

(नंकसा की कथन)

२. सगु भैयन मिलि कही बचनु इकु मानि हमारौ
भैया ऐ लेइ बुलाइ जग्गि में होइ सहारौ।
सौ सोती इकु गोत कौ मेरी सुनि दादा रनधौर
ऊंच नींच तोते है जाइगी, कहै और ते औरु।
सीस देवी रहै।

३. राजा उंज भए
उंज के कुंज भए
कुंज के पालदे पँवार भए
पालदे पँवार के उदैयाजीत भए
उदैयाजीत के राजा जगद्देव भए
असल धात की छाती, भकर भकर नेत्तर करैं।
मुख ज्वाला भहराइ
बामन बीर भुजन पै बैठ सिर पै कालिका माइ।
अटल छत्र की जै ॥

१—भैया कौ मवासौ

४. नाऊ दियौ खँदाइ महल जगदेव के आयौ
मेरी सुनि दादा जगदेव कुंवर तोकूं नौंतौ लायौ।
पाटमदे डोला सजौ करि सोलह सिंगार
पाटमदे और जगद्देव पहुँचे जग्गि मझार
सीस देवी रहै।

× टेम्पल महोदय ने राजा को सलीम शाहंशाह के यहां नज़रबंद बताया है। सलीम ने ही रंधौर को बड़ा माना। उधर आगरे वाले इस वृत्त में उदयादित्य को अनबोला रानी कन्नौज वाली की कैद में दिखाया गया है।

५. राजा जगदेव पहुँच्यो। बामनगढ़ के बामन राजा बैठे ऐं।
[उधर जगदेव की मां का डोला रनवास में पहुँचा।]

(आगरा की कथन)

"रानी जाइ कहै राजा की राजा रंधौर की
अरे, कोई रे
आई आई रे रानी,
सौत हमारी,
आई आई रे राजा मन मोहि कें री
रानी आई रे राजा मन मोहि रे री।
ए राजा कैं ढिंग गई रे भैना, सौत हमारी,
माया न जावै काऊ के साथ रे
यह माया जग मोहनी, राजा आई तेरैं भैना,
माया न जावै काऊ के साथ रे।
रानी रंधौर की नें कई कि कैसें लजाइ बे आइगई ऐं—
जा माया तो विपति है राम करै सो होय
ये माया जग मोहिनी नांइ गई काऊ के साथ
मेरी मेरी करि गये लड़त रहे जोजाधीन
अपनी अपने घर के साइंयाँ, हाथी घूमें मेरे ससुर के द्वार।
देखि मथनिया छाछ की,..............।

हम तौ बाऊ दिनाँ नाँय तड़पे जा दिना, हमारी ड्योढ़ी पै हमारे ससुर की ड्योढ़ी पै हाथी सरीखे घूमे। ऐसे सुनि कैं नीचे कूं नारि है गई दोऊ सास बहुनि की। मां ठौरी का काम है रह्यौ कि कौमरी साग हलुआ कौ ही परसाद बैंटौ करतु ऐ। बहुत सी ई। बानैं कई तू बाँटि दै, बानै कंई तू बाँटि दै। जगदेव की रानी बड़ी रानी है तेरी सो बाई के हाथ ते बटवाय दे। सो लै कें नांई थार कौमरी हलुआ रानी नें मन में विचारु करौ मैं थोरौ थोरौ बांटोंगी तो जे सब कहेंगी कि निपट चंडाल है सौ जाने थोरौ थोरौ बांटौ है परसाद।

तौ रानी ने मन में विचारु करि कै नाँही भरि पसौ बाँटौ अब बु सौति जौ विचारु करै कि रानी नैं परायो जानि कैं लुटायौ है।

मां ठौरी सासु बहुन की सुनति सुनामनि है गई। जौ देवी पै जागरन है रह्यौ ओ मां ठौरी। तो इन दोनुन नें हाथ जोड़े देवी के भमन पै माता के भमन पै कछु चढ़ाइवे जागरिन के लयें नाँय लाईं।

रानी बोली मो पै तौ कछु नाँय। सासु बोली मैंऊँ कछु नाँइ लाई। हे देवी, हे मैया, हे भवानी आज हमारी ऐसो कंगाली है कि चार पैसा हम पै चौं जू चढ़ाइबे कूं ऊं नाँयें कि हम कहा चढ़ावें। जहाँ तक भवानी तुम्हारी महरबानी रही तौ डेढ़ डेढ़ सौ की तार फरिया बांधे। माता के भमन पै जाइकैं नांई चढ़ाइबे कूं अशर्फी अरौर लईं।

सो दोनों सास बहू लेकें खटपाटी जाइ डरी तो जग्गदेव हार पै ते आयौ। बगदिबे कौ बखतु है आयौ। तौ झाड़ा न बुहारी, न रोटी न पानी। तो जग्गदेव बोलौ कै माता कैहबर कैसे डरी है। काऊ ने तौ ते बोल बोले, काऊ ते लड़ाई झगड़ौ भयौ है। तौ माता नें कही-न काहू नें बोल बोले हैं, ना काऊ तैं झगड़ौ भयौ है।······ते निपट कंगाल राजा भयौ। हर जोता रह्यौ। बेटा भयौ बेटी होती तौ काऊ राजा ते नातौ तौ जुरतौ। नहीं माता हमारे पिता ने हमारौ बड़ौ हौसला रखो है, हम धनपती हैं। राजा छोटो है और परजा बड़ी है। ए माता, पिता नै हमारौ बड़ौ हौसला रखौ है हर पति के पीछें गजपति है। राजा छोटौ है और परजा बड़ी है।

तौ रनवास में कही है—कपड़ा देख देख कै नाँईं, कपड़ा पहनन कै नाँईं परसन्न है गई हैं—

दुहाई भगमान जी की, दुहाई परमेसुर की, मारग कौ परमु नाँनैं। माता बोली—

बेटा, बैरी कौ बाजनौ है······भइया मार डारौ है,······राज जो हतुकाएँ।······ बाइ जल्दी छुड़ाइकैं लाउ और बापु छुड़ाइ कै नायँ लावे तौ······अरी माता, जग्गदेव अपनी महतारी ते बोलौ—माता गहना पानी बेचि क नाँईं तू मोइ एक घोड़ा लै दै।

(नैंकसा ने इसे यों गाया है)

आधी राति मुंहड़ौ ढक्यौ, रानी रोमति अनी अनी भाँति
अरी मेरी आदि भमानी
माता ! कै काऊ गारी दई, कै काऊ बौलै बोल।
मेरी आदि भमानी।
बेटा ना काऊ गारी दई ना काऊ बोले बोल।
महल गई रनधौर के, मुंआं मोतें बोले बोल।
मेरी आदि भमानी

६. जा दिन बेटा भयौ ता दिनाँ बेटी होंती
काऊ राजा कूं देंती ब्याहि, जाइ ब्याके आलद लेंती
पथरा बेटा जनमती, कुअटा में देंती डारि
हौंतौ नाँइ बांझ रहि जाती रहती तन-मन मारि
सीस देवी रहै।

७. सुनि री माता बात कहै जोऊ करि डारूं
मारुंगो रनधौर कुमर कूं गादी पै परभात
दीबल दे और लरिका बारे करदूं बारह बाट
सीस देवी रहै।

८. नांइ मैंने कीनीं लामनी, नांइ मैंनें किए नराब।
तेरे नगर में बानियां, कोई जिनपै डारै न बाछ।
माता बनियाँ बाछ न देंइगे, न्योंई बात पिता की जाइ

बेटा तेरे पिता की तोप ऐ कोई धरी ऐ लखैरा बुर्ज
मेरी आदि भमानी ।

९. न्यांते राजा चलि दयौ व्वानें साहिर गहि लई गैल
इड़िग्रन सिड़िग्रन चढ़ि गयौ, दै दै भंमरकलीन पै पाम
भमरकलीन नीची दई, दै दे चंपकलीन पै पाम

१०. हात लगाऊं मेरौ सिरु नवै, मेरी पति बाने की जाइ
सैंरी भमानी हिंगुलाज की बु तौ बैठी भुजन पै ग्राइ
ढोपर मारी दाँए पैर की, तकुग्रा सी लई उठाइ
मेरी आदि भमानी ।

(नैकसा गायक यहां फिर गीत को भूल गये हैं । आगरे के क़ुबूलपुर के गायक दल से जो नीचे लिखा वृत्त मिला है, उसे यहां जोड़ देने से इस कमी की पूर्ति हो जाती है ।)

जगदेव वा तोप ऐ लकैं कलुग्रा के पास ग्रायौ ग्रौर बोलौ कलुग्रा लुहार तू १२½ मन की सांग बनाइ दै । लुहार बोल्यौ जिन हाथन ते हमनें तकऊ तक नाँइ धरे तौ १२½ मन की सांग कैसें बनाइदें ग्रौर मन विचार करैं कि भई ग्रब कैसें होइ । लुहारन नैं मिल कें बिचार करौ । तौ लुहारिन बोली एकु कामु करौ । देवी कौ उठायौ भयौ धरौ है ध्वजा नारियल । तौ सब जने मिल कैं नाँई जागरन कर डारौ । तौ लुहार लुहारिन ने का काम करौ कि धारानगरी में जाइ कैं नाँई मां तें घी लाए, गेंहूं लाए चामर लाए । तौ हाथ जोड़ कैं लुहार बोल्यौ हम पैं विपता पड़ी है ताहि काटौ । कै तौ जाइ सांग बनाइ देऊँ नहीं तौ भाज चलौ । तौ सबरे लुहार मिल गए । कोई तापैं, कोऊ बाइ बुग्रावैं, धोंकैं, कोई ठोकैं, कोई पलोटैं,...... । ग्रौर १२½ मन की सांग तैयार है गई बनि कैं नाँई । जगदेव के पास लाए । तो जगदेव ने कही तुम लाए तौ ग्रौ भइया देखूं हल्की है कै भारी है । जि तुमनें बनाई तौ बहुत बढ़िया है । जाकी गढ़ाई का मांगौ । भइया हमारे पास कछु हतु तौ नाँई देबें कूं । हमारे पास तीन बैल हैं, एक १०० कौ ऐ, एक ५० कौ ऐ, एक बधिया है । इनमें तैं त्यारी मन में ग्रावैं चाँएँ तौनसी ऐ छांटि लेउ भइया । तौ, जाइकें कलुग्रा लुहार बोलौ भई दिन सब पै ग्रामतऐं । २०० रुपया की मांगौ तब ५० रुपया की देगौ । जाइकैं एक काम करौ कि ऐसें ई जाय के कहौ । तौ जगदेव ने कही कै तुम तीनौंनु ऐं लै जाउ ।

तौ लुहार बोले जग्गदेव ते कि जैसी हमारी करी है माता भमानी ऐसौ करैं कि ग्राइ जाइ राजु ।

माता ते, तौ जगदेव कहतु है कि माता मैं भइया के रनमास में है ग्राऊँ । तो भइया के रनमास है ग्राऊँ । तौ जगदेव कहा ग्रो नहाय कैं, धोइ कैं नांईं, पूजा माता भमानी की करके, हर वक्त माता के ही ध्यान में रहतु ग्रो भवानी के, चल दये ।

घूमत घूमत नाँईं दरबार में पौंचे । तौ जाइकें दरबार में कचैंरी लग रही, रँधौर की कचैंरी जम रही । तौ जाइकैं नांईं जगदेव पहुंचे । ग्रौर जाइकें नांईं साँग ग्ररकाइ दई । तौ राजा ने जानीं कि जितौ जगदेव ई ग्रायौ ऐ ।

साँग गरकाइ दई । तौ राजा कूँ समझ में ग्राई कि जि तौ भइया जगदेव ई

आयौ है। झटदेसी से खिरकिया मे है कैं नांईं रनमास में चलौ गयौ। जगदेव नें ठाड़े ठाड़े सबते पूँछी तुम में मेरौ भइया कौन सौ है ? जानैं नहीं, पहचानें नहीं, गरीब आदमी बिचारौ कहा जानैं। बहुतसे भइया बैठे। बोले—बैठि जाउ महाराज, जागरन खाली परी भई है।

कै रीझ नहीं औ बूझ नहीं आ जाकौ का काम
घोड़ी बचि कै चालि ए आ सजापति कौ गाँम।

ग रीझ बूझ हमारी भइया कछु हति नाँय। हम माँ बैठि कैं का करिगे। भइया हमारौ कहाँ है। हम तौ बाते मिलिबे आए हैं। तो बुतौ रनमास गयौ है। तौ लैकें नांई सांग लै भमानी कौ नाँउ जगदेव चल दए। तौ भौत से काहे सो रंधौर तें बोले, कै तौय छोड़ेंगौ नहीं। बाने तौ १२½ मन की साँग बनवाई है। तू ७ तए सात सात मन के बनबाउ। उन तएन्नें ल कैं गरकाइ दै। तौ जब बु आबै तो बितनी इ जगै खाली रहन दीजो और सब जगै घेरि कें बैठि जाउ। बु साँग गरकाइ देगौ। साँग फँसि जाइगी तौ बु बैसें ई भज्जाइगौ फिर नँईं आवैगौ। इतनी कही तौ रंधौर नें लोहौ लैकें नांईं बिनंई लुहारुन्ने जाइकें लोहौ दयौ। लुहारुन सोची जगदेव नें तौ हम कूँ तीन बैल दये अब जाके तए हमने बनाइ दए तौ जाने कहा इनाम न देइगौ। तौ लुहार आइकें चुपटि गये—तौ कोई तावै, कोऊ झावै, कोऊ पीटै, कोऊ बुझावै। तौ जा तरह ते सात सात मन के सात तए तैयार कर दए। तौ जाइकें नांईं रंधौर पै तए लैकें पौंच गए। तौ जायकें नांईं तए दै दए। परि राजा नें बात नंईं पूंछी तौ लुहार जरिकें खाक है गए। देखौ एक तौ बु गरीब कौ ओ बा बिचारे नें तीनों बैल दै दए और एक जि राजा, कै जानैं बातऊ न पूछी। बाकौ राजु अखण्ड है जाइ जाकौ न रहै।

माता ए जब मालिम परी तौ बानें जगदेव तें कई—तू बेटा माँ मति जइयो माँ राजा नें सात तए बनवाइ लए हैं। तेरी हँसी होइगी। तौ जगदेव ने कही-हँसी मेरी काऐ की होइगी। हँसी होइगी तेरी। तेरे ई भरोसे में तो हूँ—तू ई मेरी माता है, तू भमानी है, ···तौ जग्गदेव···कब सबेरौ, होय कब जाय। सबेरौ उठिकें नहाइ धोइकें मनन पूजा करिकें जग्गदेव चल दए···भगवान कौ नाम लैकें पौंचे।

सातौ तएन में है कैं साँग पार निकार दई। जब साँग निकर गई तौ सब देखें, भइया जिका बातए, बगल में है कैं निकरि गई, कै सातौ तएन में है कें निकारि दई पार।

तौ एक एक करिकें कचैरी खाली है गई। ···हाथी भेजौ जग्गदेव ए मारिबे कूँ। परि हाथी ने जगदेव के सामनें सीसु झुकाइ दयौ।

(भैया के मवासे में ही 'बामनगढ़' के मवासे को मिलाते हुए आगरा के कुबुलपुर के गायकों ने ये गायन प्रस्तुत किया है:—

रानी रहिय, दोंनों बोहरिया
आवैं आवैं अपने ठौर रनमास रे।
पड़वा काटी होमि कै महाराज नें बेटी कौ,
आयौ आयौ माता के पास रे ऐ जी।

बेटी सोहति रोवती माता जाकी राजा रनधीर की
रोवै रोवै अति ही सिघाति रे जी
अरे बोलैं माता, क्या कहे राजा ते राजा जगदेव ते
जामें बेटा तू भयौरे मेरी कुच्छा में मेरी कुच्छा में
बेटा बेटा मैं न होती रे। लाजौ जाकी धीयरे।
कहुँआ जाती काहू घर
बैठी करती काहू घर कौ राजु रे।
ल्हौरी कौ जायौ, बांदी कौ जायौ—
तू है बेटा निपट किसानु रे जी,
सोलह गन देउ कै अपनी माता के, अपनी माता के
मइया ए लैं मैं मरूं माता मेरी जन-जन्ती,
तरकैईं लै लऊं बामनगढ़ कौ राजु रे जी
मइया ए बाहर्यै—बेटा जाइ मेरे
बहक मरें तेरे बेटा बहुरि जांय जी
बाहिरा बाकल काउ राज कौ—
लैं लै गयौ तेरौ बापु बामनगढ़ कौ राजु रे जी
बोलौ जग्गदेव जातु ऐ रानी ते, अपनी माता ते
गहनौं पातौ बेचि कें माता मेरी,
घोड़ा लैं दैं चढ़ि वे कूं मोइ रे जी।
घोड़ा बध्यौ ऐ घुड़सार में मेरे बेटा
तू चौं मंगावे चढ़िबे कूं और रे जी
लोहा लंगड़ जोरि कै माता मेरी,
सांग बनवाइ दै १२ मन की मोहिनी,
सांग धरी है तेरे बाप की,
राजा की राजा धीराजीत की,
मन भावै तो तैसी है बाँधि लेउ जी
तारी-तारी दै लई राजा नें राजा जग्गदेव नें
आज्ञा लीनी माता ते, माता ते।
तारे लाए जोरि कें राजा नें राजा जग्गदेव नें
चढ़ि लौ चढ़ि लौ गिरि पै हालरे जी,
सबरौ चौबन देखि फिर महाराज जगदेवी कौ
एक न पावै भारी सी तोप रे जी
एक तोप जब मिलि गई है जी, राजा कूं
राजा कूं राजा जग्गदेव कूं
अरे जानें महीं तो मनाई देवी जालपा
कंकाली सोने वाली, आदि भमानी
कैला महारानी।

अरे जानैं धरो देवी कौ लाला जापु रे जी
ज्योंहीं मनाई देवी चार कंकाली चूड़े वाली
बैठी बैठी रे ऊंटन पै आई ऐ जी
बघरि में कुंजी फेंकि दई ऐ राजा नें,
राजा जग्गदेव ने।
है गई है गई रे खार जामें चारि रे जी।
अरे एक थाप जब धारै जब कंधा पै राजा कंधा पै
मारी कालिका जी नें जी।
आवै आवै गोहधन के पास जी
छोहरा सांग बनाइ दै रे छोहरा मुनरा के,
कलुआ लुहार के, कोई बातें बना में रे
अरे जग्गदेव पमारसे जी।
कोई बांधे बांधे धरनी कौ राजा रे
जूड़ी आइ रही है छोहरा कूं डरके मारें
बिना आज्ञा जौं तू तौ हार रे
जब लोहरा बातें करें अपने छोहरा ते अपने छोहरा ते
करति करति ऐ छोहरा ते जुआब रे जी।
अरे माता की चौकी करौ रे
अरे माता की झालरे जी।
नौंते लोहरा ये बटबाइ देउ जी
नगरी में धारा नगरी में
आए आए मेरे लोहरा के पास रे जी।
हाथ जोड़ ठाड़ौ भयौ राजा पंचन में, पंचन में
करतु करतु ए लोहरा ते जुआब रे।
अरे तू लोहरा सांग बनाइदे लोहरा
तू छोहरा लोहरा के
कांपै कांपै जगदेव पमार रे जी।
जब धौताई तेरी जरार बारी लंका वारी चोलै वारी,
बैठी बैठी रे हिरदे मौ आइ रे जी।
जबरे लोहरा विपति है माँ रोवते हम्बै माँ रोवते
बनि गई बनि गई १२ मन की सांग रे जी।
लेंकें सांग जब--लोहरा घर के लोहरा
आमें आमें जग्गदेव घर मात रे।
जग्गदेव पायौ महल में माँ
राजत देवी कौ मा कालिका महतारी कौ, माता दुर्गा कौ
करतु ऐ करतु ऐ जुआब रे जी।
जब जग्गदेव बामें कहै, लुहरा ते

राजा, लुहरा ते
तीन पहर जब खोइ दये राजा नें
राजा जै सिंह नें।
जैसिंह के कहत देव चलते
घर के जुहरा घर के जुहरा
आमें आमें अपने तौ दामाद रे जी।
जग्गदेव मांपै कहै माता ते
अपनी माता ते।
गैया हूँ तौ भय्या के दरबार रे जी।
रच्छा कीनी मानि कें
माता पै अपनी माता पैं।
माँगी माँगी १२ मन की साँग रे जी।
धरि कैं सांग चलतौ भयौ ऐ राजा
जग्गदेवी कौ, माइ का धता वी रे जी
आ बै आ बै रंधौर रनमास जी।
राजा कौ तौ चौथौ बास जी
भैया कैं राजा रंधौर कैं
राजा, उतारो राजा कौ गरबा सारे जी।
जब जग्गदेव बातें करै राजा ते,
राजा रंधौर ते।
तुममें तुममैं मेरी भैया कौन रे जी
ठाड़ौ जग्गदेव देखतौ महाराज जगदेवी कौ,
जगदेवी कौ।
सबरे सिपाइया देखते राजा के, राजा रंधौर के।
तुममें तुममें मेरौ राजा कौन रे जी।
राजा तौ महलन गयौ भरतारी जगदेवी के।
बैठो सिंहासन चलौ ढिग पास रे जी।
जब जगदेव बातें कहै महाराज जगदेवी कौ,
भींजन भींजन···महाराज जगदेवी कौ रे जी।
चाचा कौ तो लाला भयौ शाप रे जी।
धोबी बसिकै का करै नगरी में धारा नगरी में।
ऑं सन्यासिन कौ लाला ना काम्रे।
सांग दई है लगाय धाय कैं रे राजा नें राजा जगदेव नें
डारौ डारौ रे किले कौ डंडा तोरि रे।
डंडा तौरि कैं राजा जगदेवी कौ
उल्टौ तौ चलतौ भयौ राजा जगदेवी कौ।
आवै आवै अपने रनमास रे जी।

राजा तौ रोवै महल में जगदेवी कौ
सपनौ देति ऐ माता दुरगे माई रे जी।
तू मति जइयौ दरबार में, ए बेटा,
चाहिले मेरे, रे जी।
बेटा, तोकूं हाथी न आवै रे।
अरे रंधौर आवै रे जी।
जौ बेटा तुम जाय कह्यौ राजा ते,
राजा रंधौर ते।
सपनौ देति है माता दुर्गा माइ रे जी
पर माता होमि ले महाराजा जगदेवी कौ,
आज्ञा लीनी माता ने माई रे जी।
पाँचौ पहरे कपड़ा राजा नें राजा जग्गदेव नें,
बाँधी बाँधी १२ मन की साँग रें जी।
लै कैं नाम चलतौ भयौ है महाराजा जगदेवी कौ।
आबै आबैं रंधौर रनमास रे जी।
राजा पहुँचौ रनमास–रनमास राजा रंधौर के।
लागौ राजा कौ दरबारु रे जी।
राजा रंधौर नें लाइ चौक ठाड़े करे,
दोनों हाथी भूमियाँ के,
....

राजा जगदेवी कौ।
बोलें रंधौर क्या करै राजा ते राजा जग्गदेव ते।
करिलै करिलै हाथिन कौ नीठु रे जी।
नींठु करै तौ तू करै मेरे भैया छोटे भैया,
करतु ऐ करतु ऐ बामनगढ़ कौ राजु रे जी।
जादा जे तुमही करौ ए, मेरे भैया बनिगै भैया,
करिदै करिदै बामनगढ़ कौ राजु रे जी।
सोरह सग सिवु जात ए राजा ते रंधौर ते
अपने भैया ते।
म्हौं के बचन, मानूं नें,
लिखि दै लिख दै कागद में अंक जी।
दवात कलम मँगवाइ लई ऐ राजा नें
राजा रंधौर नें।
पुरजा तौ लयौ ऐ मँगवाइ रे जी।
झूंठे नटवा जानि कैं राजा कूं, अपने भैया कूं,
झूंठे करतु है राजा बामें आंक रे।
झूंठे राजा कूं जानि कैं, राजा कूं राजा जग्गदेव कूं

वाकी करति है माता बाम रे······राजा जुग्राब रे।
पुरजा लयौ मँगाय कैं राजा नें राजा जग्गदेव नें
लिखि गयौ लिखि गयौ वामनगढ़ कौ राजु रे जी।
जब तौ राजा बातैं—करै देवी कौ जगदेवी कौ,
बाई कौ भरतार जी।
ग्ररे हाथिन कौ करिदैं हाथिन कौ करिदै बीचरे जी।
करिदैं करिदैं हाथिन कौ बीचु रे जी।
ग्ररे···बाइ लई ऐ राजा नें राजा जग्गदेव नें
महीं तौ मनाई देवी जालपाऐ कंकाली,
चोले वाली,
जौ रि करी तौ माता की जुहार रे जी।
ग्ररे कोई पहली पहली रे देवी बारे बारी रे जी।
गूंजे गूंजे (पूजे पूजे) हाथिन के पाँव रे जी।
ग्ररे देवी देखी जालपा, रे कंकाली, चोले वाली,
बैंठी बैंठी रुभन पैं ग्राई रे जी।
ए तौ कोई बैंठौ राजा हाथिन के राजा हाथिन में
लिये लिये गजराज उठाइ रे जी।
कैं तौ मारूं तेर मूंड ते जो भवा की भुमियां की
कैं तौ डारूँ दोनों जने सांग रे जी।
मारैं ते मरि जायँगे ये तो हाथी भुमियाँ की,
डारैं तनि चौकी तौ पहुँचाय रे जी।
ये देवता है दोनों हाथी भुमिया कौ
डारैं डारैं मुकतौ सौ मालु रे जी।
मारैं ते मरि जायंगे दोनों हाथी, भुमियाँ की,
मारते तारौ हजार रे हजार रेजी।
ग्ररे जा भैया मेरे बैंठि जा, हाथी पैं, राजा रानी, पै
जा हाथी पै,
करिदैं करिदै बामनगढ़ कौ राजु रे जी।
जा राजै तू ही करै मेरे भैया,
छोटे भैया. तेरौ मेरौ माता ऐ जीतु रे जी।
ऐसी सुनि ए माता दुर्गे चाली रे जी।
करि ताकौ चलतौ भयौ महाराजा, जगदेवी
ग्राबै ग्रावें ग्रपने तौ रनमास रे जी।

(इस स्थल को लोहबन के नेंकसा ने यों गाया है)—

११. सांगि घुमामतु जाँतु ऐ, भैया की कचैरी जाय
सगु भैंयन कूं रमरमी, भैया कूं सात सलाम

बैठे रहेले गंगा पार के उनकी नगन धरी तरवार मेरी आदि भमानी ।

१२. आंते मेरी राजा चलि दयौ, दरवाजे पै झमार्‌यौ जाइ
बोलैं बोलैं राजा जौ कहै, आजु मेरी सुनिलै माता बात
तेल के दिवला गुल करें, कोई घी के दिवला जोरि
अरी मेरी आदि भमानी ।

(**आगरे वालों का आगे का गान यों चला**)—

माता बारी मां करैं राजा की, राजा जग्गदेव की
करतु ऐ करतु ऐ माता ते जुआब रे जी ।
तेरे घर के देवता छोड़ि दैं माता मेरी जन-जननी ।
घिय के दिवला मंदिर में बारि रे जी ।
मैं जानौ कोई पाठौ रह्यौ, मेरे बेटा
जाके, बेटा जाके, बेटा धाराजीत के······कुमार के
कै कोई पायौ, पायौ रे हीरा लालु रे जी ।
जब तो जग्गदेव बातें करे माता ते अपनी जननी ते,
बोल माता राजा ते राजा जग्गदेव तैं
कौ कोई लायौ लायौरे बामनगढ़ को राजु रे जी ।
ना पायौ मा मेरी जननी मेरी
ना पायौ हीरा कोई लाल रे जी

इसी को लोहवन के गायक ने इन दो चरणों में उपस्थित किया है। और वह यह बताना भूल गया है कि क्यों जगदेव प्रसन्नता प्रकट कर रहा था। आगरा ने इसे बताया है।

बेटा कै कोई लायौ परगनौ, कै लायौ ऐ भारी सी मुहीम
मात ना कोई लायौ परगनौ, नांइ लायौ भारी मुहीम
मेरी आदि भमानी ।

(**आगरे का पाठ आगे यों है**)—

हम तौ चालैं जात नरवर की
लोहागढ़ की रानी कूं लगूं माता की गोद रे ।
हम तौ चालै जात नरवर की लोहागढ़ की
बैठि करौ बामनगढ़ कौ राजु रे जी ।
तब तौ माता बात करैं राजा ते, राजा जगदेव ते ।
बेटा अपने ते ।
अरे कोई करति ऐ करति ऐ रे राजा ते जुआब रे जी ।
राज तौ है रंधीर कौ,
छोटे कौ, तौते ल्हौरे कौ,
लैजा लैजा रानी ऐ साथ रे जी ।
रानी ऐ रथु काढ़ि कैं, मेरे बेटा

जाए मेरे, करतु ऐ करतु ऐ जग्गदेव ते जुग्राब रे जी
हम तौ चाले, जात रे नरवर की लोहागढ़ की,
रानी फूलन दे माता की गोद रे जी ।
बाजौ पैहरे का, राजा नें राजा जगदेव ने,
कोई राजा कौ डोला चलौरे, रानी ऊ भई तैयार रे जी ।
रानी राजा जाय रहे कनबज कूं लोहागढ़ कूं
जाबै जाबै नरवर कूं हाल रे जी ।
देखी माता रोवती राजा की राजा जग्गदेव की
बेटा अपने की, कोई रोवै रोवै रे रानी अँखिया की धार रे
ऐसौ संदे कौ लाय दै नगरी में धारा नगरी में
बहु बेटन ते राखि तौ बिरमाय रे जी
बहु बेटा मेरे जा मैं जा घड़ी रे जात नरवर की लोहागढ़ की ।
जामैं जामै कनबज की गैल रे जी ।

१. इतनी तो सुनि कै रानी जसोउवा नें बुलवायौ रानी जौरैं
करतु ऐ करतु ऐ रानी ते जुग्राब रे जी।
हम ही राखैं बेटा माय कें राजा कूं राजा जग्गदेव कूं ।
तनिक बदरिया तो ओढ़ती रे, नोका की

१. हम तैं खेवान की,
कोई रिमझिम बरसै मेहु रे। रानी ए मेउ रे जी
जब रानी बातें करै राजा ते,
राजा जग्गदेव ते,
चारि महीना घर ही रहौ मेरे बलमा,
करति ऐ करति ऐ रानी तौ जुग्राब रे जी
चारि महीना घर रानी रह्यौ है मोरे राजा,
घोड़ा माँगे, चाले चाले जाड़िन की भाँति रे जी।
चालै चालै जाड़िन की राति रे जी ।
रानी तौ रोवै अनी अनी भांति
राजा जग्गदेवी की,
रोमति कौनें करौ श्री ठाकुर करतैं करता
लै लई लै लई रे विरह की रे बात रे जी।

(यहाँ से चलने का तथा रानी को साथ लेने का गीत लोहवन के नेंकसा ने यों गाया है :—

न्यौते मेरौ राजा चलि दयौ, ब्याने साहिर गहि लई गैल
"कै मारूं तरवारि ते, कै फेंकूं असमान"
"मारें ते मरि जायँगे, मेरौ मालु पिता कौ जाइ ।"
अरी मेरी आदि भमानी

(दै परिकम्मा खेरे खूंट की राजा नबि नबि करतु सलाम
जीउंगो तौ फेरि मिलुंगो, मरे के परेखे नांइ
मेरी आदि भमानी
मंजलि मंजलि वो चाल ने, राजा आगे कूं बढ़ि जाइ
ठाड़ी छज्जेनु देखे मात, मन सोचै पछिताइ
अरी मेरी आदि भमानी
चटक बदरिया ओलरी, बरसति गोलाढार
अरी मेरी आदि भमानी
मूर ते प्यारी ब्याजु ऐ, कोई तोऊ ते प्यारी तेरी नारि
राजु बुरौ रनधौर कौ, कोई लै जा संग लिवाइ
मेरी आदि भमानी
राति पिसावै पीसने, धौंताएँ गोबर की हेल
अरी मेरी आदि भमानी।
तिहारी तौ भीजें सूई पागड़ी, रानी कौ भीजें दखिनी चीरु
काए में सुखऊँ चूँदरी, काए मैं निरमल पाग।
अरी मेरी आदि भमानी
फूलन सुखओ चूँदरी, लौंगनु निरमल पाग
अरी मेरी आदि भमानी
आजु बगदि घर कूँ चलौ, परभात चलुंगी तेरे साथ
अरी मेरी आदि भमानी
खाँड़ौ तौ खेंच्यौ राजा म्याँन तै, धर पैं ते उड़ाइ दूँ नारि
अरी मेरी आदि भमानी
मैंने तो हँसि कैं कही, तैंने मानि लियौ साँत माउ।
अरी मेरी आदि भमानी

२—नाहर कौ मवासौ

मंजलि मंजलि के चालने मंजलि चल्यौ द्वै चारि।
अरी मेरी आदि भमानी
एक मंजलि दूजी चल्यौ तीजी पैं झमार्‌यौ जाइ
एक गैल ते द्वै भईं राजा! द्वै ते है गईं तीनि।
कँडा बीनति पाई डुकरिया झाले ते रही एँ बुलाइ
जौ तू आयौ जगत में बेटा, जगत सराहै तोइ।
ऐसी करनी करि चलि बेटा, पाछें हँसी न होइ।
मंजलि मंजलि के चालने मंजलि चल्यौ द्वै चार
एक मंजलि दूजी चल्यौ चौकी पैं झमार्‌यौ जाइ
नाहरु सौवै जाकी नाहरि जागै, ढोरै पिया की ब्यारि
अरी मेरी आदि भमानी

कौन दिसन तै आयौ परदेसी, कौन दिसन कूं जाइ ।
अरी मेरी आदि भमानी
नाम बताइ दै मात पितन कौ, परगासि आपनौं नामु ।
पालदे पमार गौतु ऐ मेरौ, जग्गदेव मेरौ नाँउ ।
अरी मेरी आदि भमानी
रोइ मरिग्गे घर भाई बाबुला, भटकि मरेंगी बड़ नारि
नाहरि नाहु जगाइ दै अपनौं, में जाई की खेलुंग्गो सिकार
नेंक पिछमनौ हटु परदेसी तेरी जानि अजाँईं जाइ ।
सहज सहज तरवा सहरायौ, बानें नाहरु लियौ जगाइ ।
पहली चोट करी नाहर नें राजा नें दीनी ढाल अड़ाइ
दूजी चोट करी नाहर नें राजा तेगा पै लै जाइ ।
तीजी चोट करी नाहर नें, घोड़ा आसमान उड़ि जाइ ।
उंज के कुंज भए ।
कुंज के पालदे पमार भए ।
पालदे पमार के उदैयाजीत भये ।
उदैयाजीत के जगद्देव और रनधीर भए ।
असल धात की छाती ।
भकर भकर नेत्तर बरें, मुख ज्वाला भहराइ ।
बामन वीर भुजन पै बैठे सिर पै कालिका माइ ।
धरि कैं ध्यानु मातु अपनी कौ, तेगा तौ लीयौ उठाइ ।
मन में सोचु करै सहजादौ मन सौचै पछिताइ ।
पहलौ तेगा मारयौ राजा नें, टूक करे बहराइ ।

मँजिल मँजिल के चाल ने मँजिल चल्यौ द्वै चारि
एक मँजिल दूजी चल्यौ पहुँच्यौ बटेसुर जाइ ।

[नाहर के मवासे को आगरा की टीम ने यों गाया है—

माँ ते राजा चालियौ रे, जग्गदेवी कौ, नवेली कौ
(ललई लैलई) लीन्ही लीन्ही लहरिया बाट रे जी ।
एक गैल की द्र करतु ऐ मेरे राजा अलवेली का चालै चालै बन की गैल रे जी

बहुतउ राजा चालियौ रे महाराजा,
जगदेवी कौ,
दिन उठौ ऐ राजा नें राजा जग्गदेव नें
लेतु लेतु ऐ दाहिनीं पै शिकार रे जी
कै राजा जान दै, राजा जग्गदेवी कौ
ए सिंह सो वै गैल में ए राजा जग्गदेवी कौ

पिरजा करति ऐ राजा ते जुआब रे जी,
फिरि सिंह सो वै गैल में अरे राजा जगदेवी कौ
लैजा लैजा अपनी जान बचाइ कैं रे जी।
जब तौ रानी बातें करै राजा की राजा जग्गदेव की
सिंहिनियाँ सिंहु जगाय दै सिंहिनिया दारी गीदड़िया
आइगौ आइगौ जग्गदेव पमार रे जी
जब सिंहिनियाँ बातें करै सिंह ते, अपने सिंह ते
अरे जागौ जागौ बनी के सिंह रे जी
सिंह पर्‌यौ है भैराइ कें राजा पै,
राजा जग्गदेव पै,
लीनीं लीनीं डराय (उठाय) ? दांब रे
सिंह डारौ मारि कै राजा नें, राजा जग्गदेव ने
राजा प्रियाजीत की, बेटा परमे कुमार कौ,
धारा नगरी कौ।
बोलै जग्गदेव क्या कहै रानी ते अपनी रानी ते,
सिंह, ते कायै तू बेचि दे
·········तौमी, नाए नाए लगाऊ हाथ रे, जी

[इसके आगे आगरा के गायकों ने (सुम्रसैन) : सूरसेन : का सामान्य उल्लेख कर दाने के मारने का और अपना सिर देवी को चढ़ाने का संक्षेप में उल्लेख करके गीत समाप्त कर दिया है। वह भाग यों है:—

डेरा किए जाइ कै राजा नें, राजा सुम्रसैन कें
बैठी बैठी रनिमास में
बोलै राजा क्या कहै रानी फूलन दे
बैठी रहियो बागन के बीच रे जी।
हम तौ जात हैं कनवज शहर में
बैठी राज करौ जी···············
मांते राजा चलि दयौ···········
आयौ आयौ
करतु ऐ करतु ऐ देवी ते जुआब रे।
हम कूं देवी ध्वारिदै राजा कूं राजा जग्गदेव कूं
आयरौ आयरौ जग्गदेव कौ राज रे जी।
वहां ते राजा चालियौ राजा जगदेवी
आयौ आयौ राजा के दरबार रे। जी।
आयौ आमतौ रे राजा नगर (तमर ?) बार कौ राजा टेंटी कौ
काए में परिगई कालो तेरी देह रे जी
अपनो दुख जाते कहै परदेसिया सिपाहिया
आतौ रे रौ·········बरखा की बाट रे जी

बागें लागीं आइयौ रे जी राजा इन्दुर कौ
आइयौ आइयौ रानी के पास रे जी।
मां ते राजा जाइयौ महाराजा जगदेवी कौ
बन्द किबरिया खोलि दै रे माली के छोरा माली के।
सैर कर लिन दै बागन की मोइ रे जी।
पांच मोहर तोय दूंगौ रे छोरा माली के
छुटि गई ज्यां धर्म की बात रे जी
मां राजा चढ़ि गयौ राजा ने राजा जग्गदेव नें
............आयौ............रानी के जौरी
खोल दै खोल दै धरम किवार रानी।......
जामें तो अपने रनमास रे जी।
देवी मनाय कैं, देवी कौ धरि कैं ध्यान
जग्गदेव ने
दानों दियौ मारि
दानौ दियौ मारि जबै तै महलन कूं सुरति करी।
रानी राजा जगदेव दोनों चलि दये, पहुंचे महलन बीच
देवी पै सीस चढ़ाइ कैं करत सबई को ध्यान
मां सीस चढ़ाइ दयौ राजा नें राजा जग्गदेव ने
आयौ आयौ फूलन बाग रे।
बंदौ बारंबार,
अरी मात मैं तैरी सरना
भमन में तेरे पड़ा, मात मैं तेरी सरना।
भमन तुम्हारा लागत सुहावना
मैया लागै तेरा भवन सुहावना
परबत तिहारौ मोहि लगत सुहावना
परबत तेरौ री अरे लगत।
अरे चोलैं वाली जी,
अरे आदि भमानी—भमन तुम्हारा लगत—
अरे कैला महारानी,

[आगरे के गायक जगदेव के इस पँवाड़े को ठीक ठीक नहीं गा सके। अन्त में उन्होंने दाने को मारने और देवी को शीश चढ़ाने को एक-दो वाक्यों में ही समाप्त कर दिया है। ऊपर जो अंश दिया गया है वह भी ठीक-ठीक जमा हुआ नहीं है। उसे यहां देने का हमारा अभिप्राय यही है कि जितना भी अंश हमारे संग्रह में आ चुका है, उसे लोहबन वाले पाठ की तुलना में रख दिया जाय। उससे कहीं लोहबन के गीत की टूट की पूर्ति भी होती है। यहां से आगे का वृत्त लोहबन के नैंकसा ने ही गाया है। वह यहां पूरा दिया जा रहा है :—]

मंजलि मंजलि के चालने, मंजलि चल्यौ द्वै चारि
एक मंजिल दूनी चल्यौ, पहुंचौ बटेसुर जाइ
घोड़ा थान लगाइ परदेसी, तमुआ दीए गढ़वाइ।
अरी मेरी आदि भमानी।
तुम तौ भोजन करौ रानी, मैं लांग्गों नगर को भाउ
लाल लाल झंडा कुमर जी के तनि गए
फोंदा आधे सरग मड़राइ।
अरी मेरी आदि भमानी।
लाल लाल झंडा जा की जरद किनारी
व्वामें बिघन परे अति भारी।
न्यांतें तौ मुंआंजू गयौ, दरवाजे पै पहुंच्यौ जाइ
मारू दरवाजो बन्यौ राजा कौ, बुर्ज गर असया—
बोले बौलै राजा त्यों कहै,
मेरी सुनि दरबानिया बात
फाटिकु चौना खोलै दरवानी, राजा की कचैरी कूंजडि
अरी मेरी आदि भभानी
बोलै दरबानिया न्यौ कहै
सुनि परदेसी बात
फाटिकु कैसें खूलूं भैया
मेरे राजा को हुकमु हतु नांइ
कौन दिसनते आयौ परदेसी
कौन दिसन कूं जाइ
नामु बताइयै मात पितेन कौ
परगासौ अपनौ नामु
सांगि जु लीनी हात में
लेंतु मात कौ नामु
सुनत नामु जगदेव कौ,
नीची नवाइ गयौ नारि
न्यांते दरबनिया चलि दयौ
राजा ढिग पहुंच्यौ जाइ
एकु परदेसी ऐसौ आयौ
जल्दी हुकमु चढ़ाइ
बौलै राजा यौं कहै
मेरी सुनि दरबानियाँ बात
जल्दी फांटिकु खोलौ दरबनियां
व्वाइ जल्दी लाउ लिवाइ
कौन दिसन ते आयौ भैया

कौन दिसन कूँ जाइं, मेरी आदि भभानी
नांउ बताइ दै माता पिता कौ
परगासौ अपनौ नामु
षालदे पमार गौत है मेरौ
जगदेव मेरौ नामु
सुनत नांउ जगदेव कौ
राजा नीचे कूँ नवाइगौ नारि
दीन ई पुकारी, गिरधारी टेर सुनौ हमारी
अन्ध के निरन्ध मेरी चूंदरी उतारी है।
एक नुक्कड़ पै सभा जोरि बैठे कोरौ
एक नुक्कड़ पै भीमसेन गजाधारी ऐ।
हाथ लेइ मनि धरती कूँ पलति देइ
इन्द्र पदवी कूँ दीनी तौ कौन लात मारी है।
इतनौ कहे पै सारी अरवै करि जारी ऐ।
रवि के सब ख्याल, त्रिये कव्वीर कम्माल
राम नाम करती वे तिरी मीराबाई
उसी नाम से तिरि गए सदना कसाई
हरिहरि करती वे तिरी, पातुरिसी गनिका
राम नाम मलि भूलै बंदे जीना दो दिन का
भजन विनु खाइगौ गोता।
तारी मीरा सी बाई
तारी मीरा सी वाई
तारी करमा सी बाई
रैदास भक्त की पच्छि करी
गौतम रिखि की नारि अहल्या
सन्तरि जुग की सिला परी
व्वाऊ पै जाइ किरन पग धारे
बेऊ सिला बैकुंठ तिरी

(तौ का महाराज मेनें पत्थर की सिलाऊ कौ सौ नाँइ कियौ। राजा जगद्देव जा बखत सुनिकें नामु इतने बखाने ऐं।)

कहा दुखु व्याप्यौ तौ
राजा तेरे बदन में
जाकौ दीजौ दीजौ भेदु बताइ
बोलै बोलै राजा न्यौ कहै
मेरी सुनि लेउ भैया बात

तुम सगरे भैया एकु से
तुम में राजा दीसतु नांइ
कै ते रें सावुन नहीं, कै तेरे धोबी नांइ—
अरी मेरी आदि भभानी ।
सगरे भैया न्यों कहैं
मेरी सुनि ले राजा बात
बोलें बोलें राजा न्यों कहै
मेरी सुनि लेउ भैया बात
कै तौ अंतु आइगौ भैया
कै आये करतार, मेरी आदि भभानी
सीरे जल करवाइ फेरि ताते धरवाए
चंदन चौकी डारि कुमर म्वां भले न्हवाए
बारबार तुमते कहूं बचनु समभाइ
कै तौ अंतु आइगौ भैया
कै आए करतार, अरे मेरी आदि भभानी

४—दांने कौ मबासौ

गढ़ के बामनऊ राजा उन
लंक पुरीते दानौ आवैं
लैतु ए मुसक मुसक चढ़ाइ ।
आजु कौ पहरौ दुंगौ भैया
सबु तुम घर कूँ जाऔ । मेरी आदि भभानी ।
न्वांते मेरौ राजा चलि दयौ,
व्यानें साहिर गहि लीनी गैल री, मेरी आदि भभानी
कंडा बीनैं डोकरी
अरैं वु तौ लैं लै लवजु वतबाइ ।
कहां ते आयौ, कहां कूँ जाइगौ,
जाकौ दीजौ दीजौ भेदु बताइ
माता जिन जिन बागन कूँ जांगौ
मोते पलकन करौ अवार । मेरी आदि भभानी
जिन बागन मति जाइ मेरे बेटा
कालु तोइ खाइ जाइ
बोलैं बोलैं राजा न्यौ कहै
मेरी सुनि लै माता बात ऐ
जो मैं आयौ जगत मैं
जगत सराहै मोइ
ऐसी करनी करि जांउ माता

पांछे हंसी न होइ।
म्वांते राजा म्वांजाऊं गयौ राजा
दुरवाजे पै पहुँच्यौ जाइ
माली माली करि रह्यौ
माली कौ बोलतु नांइ। अरी मेरी आदि भभानी।
(माली के, माली को औ माली के।
हूं! महाराज! हाँ महाराज! हाँ महाराज)
न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ
पहुँच्यौ बगीचा में जाइ
चार्‌यौ ओर कूं माली डोलै
माली लै लै लवज बतराइ
जा तखता में घोड़ा विराजै
जामें दानौ घासु
जा तखता में पान फूल ऐं
जामें करूँ विसुरामु
चार्‌यौ ओर कूं माली डोल्यायौ
लै लै कें लबज बतराइ
कौन रूप ते दानौ आवै
दीजौ दीजौ भेदु बताइ।
पहलै तौ आंधी आवै राजा
ता पीछें औरे आमें।
ओरे बरसि बन्द है जाइं राजा
पाछें तें फिकें अंगार।
अंगार बरसि बन्द है जाइ राजा
ता पीछे दानौ आवै।
धरिकें ध्यानु मात अपनी कौ।
लेंवु रामु का नामु। अरी मेरी आदि भभानी
लंक पुरी तै दानों छूट्यौ
पहुंच्यौ बगीचा में
माली माली महि रड्‌यौ दानौ
माली कौ बोलै नांइ।
(माली के, माली के, माली के, सारे माली के।)
नितकौ माली नांइ मेरे दानें
अब न्यां आइ गये करतार ऐं
हिंगुलाज ते माता आइ गई
काली मेरे साथ।

फिरि करि ज्वाबु दियौ माली कौ
घर पै ते उड़ाइ दुंगो नारि ।
गुन पौरीन पगु धरि दियौ दाने
लगत धरम की माइ
सात तल्लाक गुरु मेरे की
सबु दुंगो भेदु बताइ
दाने कें एकु तौ सात धार कौ खांड़ौ
एकु पमन भक्की घोड़ा ऐ
जि लै लै भैया ।
एक विरम फांस ऐ
परि भैया मेरी जानि बकसि ।
एक गौंछ कौ बारु लै लै
तेगा एक लाख सीस काटैगौ
विरम फांस एक लाख आदिमीन की मसक बांधै
घोड़ा तीनों लौक घूमै
गौंछ कौ बार आंच में डारै तौ धूंआंते
लाखों दानौ लड़िबे कूं आमें:
दाने के नाक कान लै लीये:
नाक कान लै लीये राजा नें
दीनी गैल बताइ । मेरी आदि भभानी

५—सूरसेन कौ मवासौ

भजूं सारदा माइ और गुरदेव मनाऊं
जौ गुर होइ दयाल कछू हरि के गुन गाऊं
आउ बुद्दि परगत हो भैया, गुरगन्नेस मनाइ
जगद्देव की लीला गाऊं सुनौ सभी चित लाइ
अरी मेरी आदि भभानी

न्यां ते तौ म्वां जूं गयौ, दरवाजे पै पहुंच्यौ जाइ
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, सुन दरबनियां बात
फांटिकु चौंना खोलै मेरे भैया राजा की कचहरी जांउ
बोलै दरबानियां न्यों कहै, सुनि राजा मेरी बात
फांटिकु कैसें खोलूं भैया, राजा कौ हुकमु हतु नांइ
अरी मेरी आदि भभानी ।

न्यांते दरबनियां चलि दियौ राजा ढिग पहुंच्यौ जाइ
बोलै बोलै दरबनियां न्यौं कहै, सुनि राजा मेरी बात
एकु परदेसी ऐसौ आयौ तोइ तोइ किल्लाइ ।
अरी मेरी आदि भभानी ।

बोलै बोलै राजा न्यौ कहै, ल्वाइ जल्दी लाउ लिवाइ
न्यांते राजा चलि दयौ पहुंच्यौ कचैरी में जाइ
छम्म कचैरी है गई वे आपुस में बतरांइ ।
अरी मेरी आदि भभानी

कौन दिसन ते आयौ परदेसी कौन दिसन कूं जाइ
नामु बताइयै मात-पितन कौ परगासै अपनौ नामु।
"पाल दे पमार गौतु ऐ मेरौ जगद्देव मेरौ नामु"
"कहा दुखु व्याप्यौ तेरे बदन में जाकौ दीजौ दीजौ भेहु बताइ"
एक सै एक कावरिया आवैं, मेरौ बीत्यौ ऐ खजानौ जाइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनि लै राजा बात
आजु कौ दानु मैं दऊं भैया, बैठि मझारौ जाइ।
अरी मेरी आदि भभानी

इतने में कावरिया आए वे लाउ लाउ किल्लाइं।
अरी मेरी आदि भभानी

बोलै बोलै राजा न्यौ कहै मेरी सुनि लेउ भैया बात
न्यां कौ खजानौ निभट्यौ मेरे भैया चलौ बनी में दुंगो जाइ।
अरी मेरी आदि भभानी

आगे आगे राजा चलि दयौ, पाछें कावरियां जांइ।
न्यांते तौम्वां जूं गयौ, पहुंच्यौ पहुंच्यौ बनी में जाइ
अरी मेरी आदि भभानी

बोलै बोलै राजा न्यों कहै मेरी सुनि लेउ भैया बात
एक डोरि ते बैठो भैया सबकूं देंउ चुकाइ।
अरी मेरी आदि भभानी

सहरी ए भभानी हिंगुलाज की, बु तौ बैठी ऐ भुजन पै आइ
सबन की मुसक बांधिलै माता, पल मति करौ अबार।
खंजर लौ लीयो राजा हात में बो तौ लेंतु राम कौ नांम।
अरी मेरी आदि भभानी

सबन की नाक काटिला भैया,
मति करै अबऊ अबार।
अरी मेरी आदि भभानी

बोलैं कावरिया न्यों कहै, मेरी सुनिलै राजा बात।
लाख दुहाई भगमान की, अबऊ बकसौ प्रान।
अरी मेरी आदि भभानी

उंज भये
उंज के कुंज भए
कुंज के पालदे पमार दे भए
पालदे पमार के उदैया जीत भए।
उदैया जीत के राजा जगद्देव और रनधीर भए।
असल धात की छात।

भकर भकर नेत्तर करें, मुख ज्वाला गहराइ
बामन बीर भुजन प बैठे, सिर पै कालिका माइ।
न्यांते कावरिया चलि दए पहुंचे कचैरी जाइ
छम्म कचैरी है गई, वे तौ आपस में बतरांइ।
बोलै बोलै राजा न्यौं कहै, मेरी सुनि लेउ भैया बात
तुमते कैसी बीती भैया, जल्दी देउ बताइ।
अरी मेरी आदि भभानी

अच्छे अच्छेन कौ कामु ऐ भैया,
नकटे बूचेन कौ नांइ कामु।
(राजा सूरसेन—"कहा बात ऐ।"
कावरिया"—ऐसौ परदेसी ऐ। अखैवर के नीचे सोय रह्यौ ऐ।)"
बोलै राजा न्यौं कहै मेरी सुनि लेउ भैया बात
सात तल्लाक गुरु मेरे की, धारा नगरी ऐ देउ तारि।
अरी मेरी आदि भभानी

बोलै बोलै राजा न्यौं कहै सबु भैया लिये बुलाइ।
जल्दी फौज सजाओं मेरे भैया पल मति करौ अवार।
दस हज्जार फौज सजाई जानें दीनीं तोप लगाइ।
अरी मेरी आदि भभानी

न्यांते राजा चलि दऐ, राजा ढिंग पहुंचे जाइ।
राजा सोवै रानी जागै, जाकी दोऊ कर ढोरै व्यारि।
अरी मेरी आदि भभानी

बोलै बोलै घोड़ा न्यों कहै, मेरी सुनि लेउ भैया बात
बैरी ऊपर आयौ भैया, सावधान है जाउ।
अरी मेरी आदि भभानी

अम्माले ते चाल्यौ गूजरौ, राजा ढिंग पहुंच्यौ जाइ।
बोलै बोलै गूजरी न्यों कहै, मेरी सुनि रंग ढ़ोला बात ऐ।
पराई रारि में चौं मरै बलया, चलौन सवारि सात ऐ।
अरी मेरी आदि भभानी

राजा हातन की महदी रची, छूटे नांइ हरदी के दाग जी।
राजा तेगा तौ लीनों हात में, लै लै गुर अपने कौ नामु रे
इतकी हरैया इत धरी, दल करि दीये पनिया ढार रे।
अरी मेरी आदि भभानी

न्हौं न्हौं में गोली लगी। सीना सीना पै लगी ऐ तरवार।
मां सु मांसु धरनी गिरयौ, हाड़न की रही हड़ वारि।
अरी मेरी आदि भभानी।

इतने में राजा जागिए, बु तौ मन सोचै पछिताइ
माता तौ सैरी आपनी, लै लैं तीनि लोक करितार।
बोलै बोलै रानी न्यों कहै, आजु मेरी सुनि रंग ढोला बात
पराई आई में मरिगौ भैया, जाकी पूछी नांइ तैनें बात।
अरी मेरी आदि भमानी

सैरी ऐ भमानी हिंगु लाज की, गु तौ बैठी भुजन पै आइ।
काए कूं में सैरी बेटा, जल्दी ते देउ बताइ।
जाई कारन सैरी माता, तू असने में होइ सहाइ।
ल्हास पै ल्हास परी भैयन की, कहा ठठ कीयौ करतार
माता कै तौ इनकूं ज्याइ दै, नई अब जीमनु कूं धरकार
चटक बदरिया ओलरी, जलु बरसति गोला ढार।
माता जल ते कछु न होइगौ, दीजौ दीजौ अमिरतु ढारि।
इमिरतु बनि के बरसि रही, दल सवरे हरे है जांइ
जोई जोई दलु हर्यौ है गयौ, सोई सोई चरननु आए।
तैनें प्रान बचाए माता, अब हम बचिबे के नांइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनिलै माता बात।
गोवर की धारा नगरी बनाई, सौने की बनि जाइ।
न्यांते मेरी माता चलि दई, करता पै पुकारी जाइ।
अरे सुनि लेउ सुनि लेउ सुनि जु लेउ, मेरी सुनि लेउ एकई बात
भगत की सुनियों टेर ऐ, अरे व्याकौ सबु पूरन है जाइ।
बोलै बोलै करता न्यौ कहै, तू सुनि जगतारनि बात
करता नें बुह रचि दई, माता जी मगन है जांइ।
उंज भए
उंज के कुंज भए
कुंज के पालदे पमार भए।
पालदे पमार के उदैयाजीत भए।
उदैयाजीत के जगदेव रनधौर भए।
असल धात की छाती, भकर भकर नेन्तर करें, मुख ज्वाला महराइ।
बामनवीर भुजन पै बैठे, सिर पै कालिका माइ।

६—तिनराजा

न्यांते राजा चलिदयौ बागन पै भमारयौ जाइ।
घोड़ा थानु लगाइ परदेसी, तमुआ दिए गड़वाइ।
तुम तोजूं भोजन करौ रानी, मैं लांउ लंगर कौ भातु
परदेसन के मामले दरयावन के फेर
मोइ अकेली छोड़िकै मति करौ नगर की सैर।
न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, तिन नगरी पहुंच्यौ जाइ।

न्यांते तौ म्वाजू गयौ पहुंच्यौ पहुंच्यौ कचैरी पै जाइ
तिन नगरी कौ बुलाखो नाऊ, रानी ढ़िग पहुंच्यौ आइ ।
लौटि के नौआ चलि दयौ राजा ढ़िग पहुंच्यौ जाइ ।
व्वा नगर कौ पापी राजा, लै लै लवज बतराइ ।
अरी मेरी आदि भवानी

बोलै बोलै नाऊ न्यों कहै, मेरी सुनिलै राजा बात
ऐसी रानी आइ मेरे भैया तेरे रनवासन हृति नांइ
बोलै राजा न्यों कहै, सुनिलै ठाकुर बात
जल्दी लाऔ लिवाइकें भैया पल मति करौ अबार ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनिलै भैया बात
कौन दिसनते आयौ परदेसी, परगास्या अपनौ नामु ।
पते की खातरि डोलूं मेरे भैया, मन में करूं विचार
कहा मोल नौंकरी कौ भैया जल्दी देइ बताइ ।
लाख टका ऐ मोल कौ भैया, कहाऐ जाकौ भाउ ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै जानें लियौ दिमानु बुलाइ ।
बहुत से नौंकर मेरे भैया लख टकिया हतु नांइ ।
बोलै दीमानु न्यों कहै, मेरी सुनिलै राजा बात
ऐसौं कामु कहा करतु ऐ भैया, दीजौ भेहु बताइ ।
जो कोई कामु न करै भैया, जाइ करंगो जाइ ।
बोलै बोलै दीमान न्यों कहै, मेरी सुनिलै राजा बात
सूख्यौ बागु हर्यौ होइ भैया जाई ऐ देइ बताइ ।
लिखिकें कागद दीयों राजा कूं, दीयों भेदु लिखाइ ।
लाखा बागु सूख्यौ पर्यौ भैया, वुही हर्यौ है जाइ
न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, व्वानें साहिर गहि लई गैल
न्यांते तौ म्वाजूं गयौ, पहुंच्यों पहुंच्यों बगीचा में जाइ ।
धरिके ध्यानु मातु अपनी कौ जानें आसनु लीयौ लगाइ
घंटा हालि गयौ भैया कौ, लांगुर लीयौ बुलाइ
कौन पै भीर परी मेरे भैया, जल्दी देइ बताइ
सूखे बाग में बैठ्यौ जगदेव, लेंतु तिहारौ नांउ
म्यांते मेरी माता चलि दई, लयों लांगुरा साथ ।
सिंध असवारी जगदम्मा बैठी, पहुंची लाला ढ़िग जाइ ।
काए कूं जफि करे मेरे बेटा जल्दी देउ बताइ
एकु मवासौ रुपि गौ मैया जे सर होवे कौ नांइ
सूख्यौ बागु हर्यौ होइ मैया, सर्वं बात रहि जाइ
बोलै बोलै माता न्यों कहै, सुनि बेटा मेरी बात
सूखौ बागु हर्यौ होइ कैसे या कौ भेदु बताइ ।

बोलै बोलै राजा न्यों कहै, सुनि माता मेरी बात
कै तौ बागु हर्यौ होई माता, नईं, दुंगो प्रान गमाइ ।
इमिरितु छोड़ि दयौ माता ने बागु हर्यौ है जाय
मोर पपैया बोलन लागे, जामें कोहिल कर कौरान
करिकें बागु हर्यौ राजा कौ, माता गई सिधारि ।
अरी मेरी आदि भभानी ।

चत्तर सारी पै ढाड़ी ऐ रानी, गु तौ लै लै लवज बतराइ
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, सुनि लेउ पिया बात ऐ ।
मोर पपैया बोलै बागन में, कोइल करै कौरान
ऐसौ कौन बलीम्बर आयौ अरस गरौ बागु हर्याइ
लखत किया हतु नांइ बलमा, कै दूजौ करतारु
न्यांते मेरौं राजा चलि दयौ, संग में रानी जाइ ।
मुंह में तिनूका दीयौ राजा नें लै लै लवज बतराइ ।
मेरे तौ जानें तिरलोकी आयौ, औरु कोई आयौ हतु नांइ
हाथ जोरि के राजा ठाड़ौ लै करता कौ नामु
बोलै बोलै रानी न्यों कहै सुनि राजा मेरी बात
एक बेटी जु हमारें राजा, दीजों तिलकु चढ़ाइ ।
धर्म की मात लगति ऐ मेरी, मति ना पापु चढ़ाइ
ऐसौ ब्याहु करुंगो मेरी माता, कहा ठट्टु रोप्यौ करतार
ठाम ठाम पै ब्याहु करुंगो, कहा जु करुंगो जाइ ।
एक दिना ते द्वै भए भैया, द्वै के है गए चारि ।
चारि दिना ते छै भए भैया, छै ते है गए सात ।
पन्दरह बारे बीते राजा, दीजौ हिसाबु कराइ ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै ब्वाते, लीयौ दीमानु बुलाइ
जेऊ मवासौ जीत्यौ लालानें, जाकौ दीजौ भेदु बताइ ।
बोलै दीमानु न्यों कहै भाई, मोमें अकलि हति नाइ ।
मानस की बदि लई मेरे राजा, कै आयौ करतार ।
हाथ जोरिकें माफ़ी मागी, जीउ दान दै जाउ
कौन की नौकरी करी मेरे भैया, नौकर लीयौ बनाइ
कछू मोइ चहिंयतु नांइ, दीजौ हिसावु कराइ ।
पन्द्रह दिना कूं भयौ तहखानौ, आगे कूं हतु नांएं ।
हाथ जोरि राजा भयौ ठाड़ौ, रानी ऊ टाड़ी भई आइ
सबरी सिपह ठाड़ी भई आगें, हमारें कछू हतु नांइ ।
उंज के कुंज भए
कुंज के पालदे पमारदे भए
पालदे पमार के उदैयाजीत भए

उदैयाजीत के जगदेव और रनधीर भए
असल घात की छोती
भकर भकर नेत्तर करें, मुख ज्वाला भहराइ
बामन बीर भुजन पै बैठे सिर पै कालिका माइ।

ठग नगरी

न्याते मेरौ राजा चलि दयौ धरि लई साहिर गैल
न्याते म्वांजू गयौ कुअटा पैंभमार्यों जाइ।
भौत दिनन कौ प्यासौ रानी, मोइ दीजौ पानी प्याइ।
कौन दिसन दे आयौ परदेसी, कौन दिसन कूं जाइ।
नामु बताइदै मात पितन कौ परगास्या अपनौ नामु
पालदे पमार गोत, ऐ मेरौ, जगद्देव मेरौ नामु
लंबौ घूंघट मार्यौ तीन्यौनु, लै लै लवज बतराइ।
मजलि मजलि के चालने, ठग नगरी पै पहुंचौ जाइ
घोड़ा थान लगाइ परदेसी, तमूआ दिये गड़वाइ
हम तौजूं भोजन करें तुम न्याँई करौ बिसरामु।
कच्चौ पलंग बिछायौ भाकसी पै, विस्तर धरे जमाइ।
फूलन की ब्वानें सेज बनाई, अतरन के छिरकाइ।
बोलै बोलै ठागिया न्यों कहै, सुनि लेउ बेटी बात
सौन चिरैया आई बेटा, जाऊ ऐ लेउ भरमाइ।
सीरे जल करवाइ औरु ताते करवाए।
चंदन चौकी डारि कुमरम्वां खूबु न्हवाए।
छत्तीसौ भोजन किये, परसे चरन अघाइ
जैमें राजा, जिमामें ठगिनी, दोऊ कर ढोरें व्यारि।
भोजन जिमाइ दए लाला कूं, पलिका दए बताइ।
उठाइ के पलिका देखन लागे, जल दीखै अपरंपार
तेगा तौ खेच्यौ राजा म्यान ते, लै लै लवज बतराइ
कैसे दगा करी ठगिनीऔ, दीजौ भेद बताइ।
एकै मारै द्वैन्नै फेंकें, ब्वानें करि दीये पनिया ढार
ऊजरू खेरौ करि दियौ, राजा लै लै राम कौ नामु
एक ठगिया बचनौ लाग्यौ, भैया जीवु दान दै जाइ
कैसे जीव दान दूं मेरे भैया, दुंगो खोज मिटाइ
तेगा तौ मार्यौ राजा जोरतें, ब्वानैं ल मया कौ नामु
करिकें फैसलौ खतमु भयौ, रानी ढिग पहुंच्यौ जाइ।
बोलै बोलै रानी न्यौ कहै, मेरी सुनि रंग ढ़ोला बात
कै तौ कालु अरि गयौ तिहारौ, तिरलोकी भए सहाइ
बनते आइ गये राम, टाप घोड़न की बाजी

जल कौ लोटा हात द्वार पै भगिन ठाड़ी
तू कन्या समतूल दूसरे ज्वाला रानी।

७—कनवज

धरती माता तू बड़ी और तोते बड़ौ अगासु।
देवन में दुर्गा बड़ी, याकौ नगरकोट में राजु।
धाई राजा राम नें, धाई गोरखनाथ
धाई पांचों पंडवा, फिर धाई संसार।
भजूं सारदा माई और गुरदेव मनाऊं
जौ गुरु होइ दयाल कछु हरि के गुन गाऊं।
आउ बुंदि परगट होइ भैया, गुर गन्नेस मनोइ
जगद्देव की लीला गाऊं, सुनौ सभा चित लाइ।
अरी मेरी आदि भभानी।

न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, वांते साहिर गहि लई गैल
न्यांते तौ म्वाजूं गयौ, पहुंच्यों पहुंच्यौ ऐ बनी में जाइ।
एक गैल की द्वै भईं, द्वै न की है गई तीनि
कंडा बीनैं डोकरी, व्वानें भाले ते लयौ बुलाइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहैं, सुनि फूलमदे बात
तनक अगारी बढ़ि जा रानी, जल्दी लाउ बुलाइ।
बोलै डोकरी न्यों कहै, मेरी सुनि परदेसी बात
तनक सहारौ दै जा बेटा, कोई संग न साथ।
हातु लगाऊं सरु नवै, मेरी पति बनि की जाय।
ठोकर मारी दाएं पांइ की, हेल उठी हति नांइ।
घोड़ा ते नीचे भयौ, जानें लीये हाथ लगाइ
बलु करि हेल उठाई लाल, हेल उठी हति नांइ
सैरी ऐ भभानी हिंगुलाज की, बैठी भुजन पै आइ।
कलकत्ता की काली सैरी, तू तौ लीजौ खवरि मेरी आइ।
कै तौ आइकें खवरि लै लै, नईं दुंगो प्रान गमाइ।
सोलै अकलाते अबलाए ठाड़ी, घोड़ा रहयौ लुम्याइ।
बोलै बोलै अबला न्यौं कहै, मेरी सुनिलै बेटा बात
एक गैल कनवज कूं पहुंची, जल्दी चल्यौ जा आजु।
न्यांते भैरौ राजा चलि दयौ, कनवज पै भमारयौ जाइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनि फूलन दे बात।
परदेसन के मामलो, दरयावन के फेर।
ऐसे मिति करौ, तुम रानी मती लगाओ देर।
बोलै बोलै घोड़ा न्यों कहै, मेरी सुनि लौ भैया बात
सावधान हुसियार रहियौ, मति दिल में घबराइ।

न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, दरवाजे पै पहुंच्यौ जाइ ।
दरवाजे पै संतरी घूमें, बे दै दै लवज बतरांइ ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, सुनि दरबनियां बात ।
कौन सी बम्म धरी मेरे भैया, जल्दी देइ बताइ ।
बोलै दरमनिया न्यों कहै मेरी सुनि ले भैया बात ।
व्वाई रानी की बंब फेरी, चलौ हमारे साथ ।
हाथ म चोव लई लाला नें, दीनों डंका लगाइ ।
बंब की घोर गई अंबर कूं सबु नंगर जुरि जाइ ।
न्यांते सूबेदार चलिदए, लाला ढिग पहुंचे जाइ ।
कैसे डंका मारे बंबन में, जल्दी देइ बताइ
तेगा खेंच्यौ म्यान ते लाला, लै लै लवज बतराइ
तेगा माऊं देखि कें गए संतरी भाजि
व्वा रानी के ढिग पहुंचि गये, कहे बचन समझाइ ।
चौदह सँज्वानु सज्यौ रानी कौ, संग कालिका माइ ।
सैरी ऐ भमानी हिंगुलाज की, बु तौ बैठी भुजन पै जाइ ।
विरमफांस लाला नें लीनी, लै मैया कौ नांउ
दाने बारौ खांडौ लीयौ, सुमिरि लयौ भगमानु ।
तारी मीरा सी बाई, तारी करमा सी बाई,
तारे सदना से कसाई

रैदास भगत की पच्छि करी,
गौतम रिसि की नारि अहल्या, सत्तर युग की सिला परी ।
व्वाऊ पैजाइ रामु पगुधारे, नेऊ सिला बैकुंठी धरी ।
रिवि के सबु ख्याल
तरि गये कब्बीर कम्माल
राम नाम करती तिरि गई मीरा बाई ।
उसी नाम ते तिरि गये सदना कसाई ।
हरि हरि करते बे तिरे सैन भगत नाई ।
हरि नें बे तरि रैदास
गंगा फट भीतर आई ।
सुआ पढ़ामत पे तिरीं पातुर सी गनिका
राम नामु मति भूलै बंदे जीना दो दिन का ।
भजौ मन राम नाम तोता
कहा तू गफलति में सोता
भवन चितु खाइ गयौ गोता
दस हजार फौज सजि गई ऐ, तो पदई सजवाइ ।
बूरी ते बूरी अड़ी, फौदा आधे सरग मड़राइ

इतकी हरैया इत धरी, दल करि दीये पनिया ढ़ार
कोई ल्हास ल्हास तर दब कै कोई रह्यौ विलखाइ ।
हाहाकार मच्यौ दल भीतर, बीति रहे घमसान
बोलै फूलमदे न्यौं कैह, सुनि रंग ढोला बात
तेगा बन्द करौ बलमाजी. है रहे अत्याचार ।
न्यातैं दरमनिया चलदयौ, रानी ढिंग पहुच्यौ जाइ ।
बातें पेस एक न जाइगी, तिरलोकी कोप्यौ आइ
बोल बोलै रानी न्यों कहैं, मेरी सुनि भैया बात
काऊ ढब प्रान बचाओ भैया, काऊ ढब लाओ लिवाइ ।
बूढ़े बुढ़े चलिदए, चलत न लगी अवार
लाला ढिग वे पहुंचि गये, हाथ जोरि समझांइ
बोलै राजा न्यौ कहै, मेरी सुनि लेउ भया बात
कहा तौ भीर परी मेरे भैया जल्दी देउ बताइ
बोलै बुड्ढ़े न्यों कहै, सुनि ले राजा बात
रानी कौ बुलायौ साहिबा, चलौ हमारे साथ
न्यौंतें मेरौ राजा चलि दयौ, रानी ढिग पहुँच्यौ जाइ
बोलै रानी न्यों कहै, मेरी सुनि परदेसी बात ।
कौन दिसनतें आयौ परदेसी, कौन दिसन कूं जाइ
नामु बताइदै मात-पितन कौ, परगासि दै अपनौ नामु
पालदे पमार गौतु ऐ रानी, जगद्देव मेरौ नामु ऐ ।
सुरतनाम जगदेव कौ रानी, सिर नीचे कूं नवाइ गई नारि ।
भौतु दिनन में खबरि लई, मेरौ आइ गयौ करतार ।
सीरे जल धरवाए औरु ताते करवाए ।
चंदन चौकी डारि कुमर म्वां भौतु न्हवाए ।
छत्तीसों व्यंजन करे, परसे चरन अघाइ
जैमै कुमर जिमाव रानी, दोऊ कर ढ़ोरे व्यारि
भोजन दिये जिमाइ, फेरि आगे कूं धायौ
पहुँचि गयौ रनिवास, फेरि वानें पलंग नवायौ ।
बार बार तौतें कहूँ वचन कहूँ समझाइ ।
तीनि लोक के कर्ता आए, आइ मिले भगमान ।
तौ महाराज अब तुम कैसे आये ।
पिता ऐ छुड़ाइबे आयौ ।
एक पहेली बताइदेउ :

पहेली—

"अंख में एक पंखु व्यानौ,
सूआ बीध्यौ पानी

जा कहानी कौ अर्थ बताइदै
तू राजा में रानी

(कनवन में एक बैलु मर्‌यौ ब्वाकौ सीसु पर्‌यौ ब्वाकी आँखि में एक बाजरे कौ पौधा उपज्यौ। ब्वा पै ओस कौ पानी लहराइ रह्‌यौ। जिही तेरी पहेली कौ अर्थ ऐ) हाँ—है तौ जिही।)

उंज भए, उंज के कुंज भए
कुंज के पालदे पमार भए।
पालदे पमार के उदैया जीत भए
उदैया जीत के जगद्देव और रनधीर भए।
भकर भकर नेत्तर करें, मुख ज्वाला भैराय।
बामन बीर भुजन पै बैठे, सिर पै कालिका माइ।
बोलै रानी याते न्यों कहै, आजु मेरी सुनि रंग ढोला बात
जल्दी भामरि डारिलै बलमा, अब मति करै अवार
खाँड़ौ तौ खेंच्यौ राजा म्यानतें, मैं तो टुकड़ा करि दऊँ चारि।
धर्म की मात लगति ऐ मेरी, तू मति पाप चढ़ावै।
पहलें पिता जो आयौ नगर, भामरि ब्वाई की डारूँ
तिरवाचा भरवाई लाला नें, बीच धरे सिरी भगमान ऐं।
अब तौ फंद छोड़ि दै मेरौ, परमात चलूं तेरे साथ
न्याँते मेरौ राजा चलि दयौ, रानी ढिंग पहुँच्यौ जाइ।
बोल राजा याते न्यों कहै, मेरी सुनि लै तिरिया बात।
सैंरी ऐ भमानी हिंगुलाज की मैंने सैंरे सिरी भगमान।
बोलै फूलमदे न्यों कहै, मेरी सुनि रंग ढोला बात
तेरी फतै जु है गई बलमा, चलि तू मेरे साथ।
रानी नंगर सैल जो करूँगो रानी, म्वां खूटे हमारे भागि।
न्यांते मेरौ राजा चलिदयौ सबु नगरी में घूम्यौ जाइ।
चौपह से बंदु आ जेल में, बे तौ लै लै लवज बतराइ।
फाटिक खोल्यौ जाइ कें, बे तौ लेंत राम कौ नामु
कै तौ आजु तिरलोकी आयौ, कै फूटे भागि हमारे
राम नामु वे करते जाइ रहे, सबु भैया तेरे आये
चौदहसै मन की फांसी कहीए, लैंत राम कौ नामु
अमरु रहो भैया तेरी गादी, हमकू दीये छुड़ाइ।
न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, पहुँच्यौ पिता पै जाइ।
बोलै राजा वाते न्यों कहैं, मेरी सुनि लै बेटा बात
कुटुम की राखी आजु तौ, तेरी रन में फबैगी तरवारि।
आगे गीली बांस कटाइकैं, फेरा दीयें ऐं कुमर डरवाइ।
सैंरी ऐ भभानी हिंगुलाज की, सुमिरे सिरी भगमान

मात पितन कूं सुमिरि रह्यौ, व्यानैं लीये गुरु के नाम
डारि कें फेरा राजा चलि दयौ, रानी ढिग पहुंच्यौ जाइ ।
बोलै रानी यातें न्यों कहै, मेरी सुनि रंग ढ़ोला बात
अब मति देर करौ मेरे ढोला, मति ना करौ अबार
रानी ते राजा मिले जैसे सोने में मिलतु सुहागु ।
तिहारी गैल तौ जे रहीं, हम चलें दोनों साथ ।
अरी मेरी धन्नि सारदा माइ
आइ घटवासौ लीयौ, भैया मैं तौ बलिहारी गुरु जांउ
जानें मोई ज्ञानु बतायौ ।
बनते आइ गये रामु
टाप घोड़न की बाजी
जल कौ लोटा हाथ द्वार पै भगिनी ठाड़ी
तू कन्या समतूल दूसरे ज्वाला रानी ।

८—बंगालौ

करि परनामु मात पितन कूं राजा आगे कूं बढ़ि जाइ
न्यांतै तौ न्वांजू गयौ, बंगाले पहुंच्यौ जाइ ।
इत ढाकौ इत सहर बंगालौ, जाके बीच लखैरा बागु
तुम तौजूं भोजन करौ रानी, मैं लाऊ बंगाले कौ भाउ
परदेसन के मामले, दरयावन के फेर ।
मोइ अकेली छोड़ि कैं मति करें बंगाले की सैर ।
खांडों तौ खैंच्यौ राजा म्यानते, धड़ पै ते उड़ाइ दुंगौ नारि
मैंने तौ हंसि कें कही तुम मानि लई सतभाउ
धरि कें ध्यानु मात अपनी कौ ला ला बंगाले जाइ ।
बामन भेरौं छप्पन कलुआ, संग जोगिनी माइ
भैंसन बारी भैंसन पै बैठी, आगे चलै कालिका माइ ।
जिन्दा तारी बजाइ रहे भैया, अगारैं चलौ बीर असवार
न्यांते तौ न्वांजूं गयौ, बंगाले पहुंच्यों जाइ ।
बैठी तमोलिनि पान लगावै, झाले ते रही बुलाइ
आ परदेसी बैठि तखत पै, बीड़ा दियौ लगाइ ।
जिन पाननु मैं ना खाऊँ ठगिनी, खांगो मल्हैया पान ।
खोल्यौ टिपारौ तम्मोलिन नें, दिये दूधिया पान
पहलौ मंत्रु छोड़यौ तमोलिन, मेढ़ा लियौ बनाय
द्वै पांइ मुख पूंछ विराजै, मैं ई मैं किल्लाइ ।
दूजौ मंत्रु छोड़यौ तमोलिनि, मुरगा लयौ बनाइ
चारि पाइ मुख पूंछ विराजै, कई कूं किल्लाइ ।
तीजौ मंत्रु छोड़यौ तम्मोलिनि, सुअना लियौ बुनाइ

दुऐ पांइ मुख पूंछ विराजैं, लेंतु राम कौ नांउ
लै सुग्रना बो घर कूं चाली, टिपारे पै धर्‌यौ जमाइ।
उंज भये, उंज के कुंज भये
कुंज के पालदे पमार भए
पालदे पमार के उदैयाजीत भए।
उदैयाजीत के जगद्देव रनधौर भए।
भकर भकर नेत्तर करें, मुख ज्वाला भैराइ
बामन बीर भुजन पै बैठे सिर पै कालिका माइ।
दाने से बस कीये महतारी, टूटै जेवरा मोपै नांइ।
नाहर से बस कीये माता री, दरगाऊ फूट्‌यौ नांइ।
सवरे मवासे बस किये न्यांतक, पिंजरा टूटतु नांइ।
घंटा हालि गयौ मैया कौ लांगुर लियौ बुलाइ।
कैसे घंटा हाल्यौ मेरे बेटा, जल्दी देइ बताइ।
व्वा बंगाले में घिर्‌यौ जगद्देव, लावै चौंना छुड़ाइ
सिंघु सजाइ दै मेरे बेटा लांगुर, अब मति देर लगावै।
दौरी दौरी माता आई बंगाले में पहुंची आइ।
चार्‌यौ ओरुकूं माता डोलै, लाला दीसतु नांइ।
व्वा बंगाले कौ बंगाली राजा, तुरत लियौ बुलवाइ
बोलै माता न्यों कहै, मेरी सुनिलै राजा बात
कै तौ पतौ बताइ बेटा कौ, नई चलौ हमारे साथ
सबकी नौंति करै महतारी पतौ तौं देंउ लगाइ
नौं तौ दै दीयौ व्वा राजा नें, बहुत करी ज्यौनार
पतवरि पतवरि लगि गई मैया सबकूं दियौ जिमाइ
सगरौ नंगर सिल्टि गयौ ऐ, लाला कौ पतौ हतुनांइ
छूटे खोजी चलि दए, तमोलिनि पै पहुंचे जाइ
बोलै खोजी न्यों कहै, मेरी सुनि लेउ भैना बात
राजा नें तौ याद करी ओ, चलौ हमारे साथ
न्यांते तमोलिनि चलि दई राजा ढ़िग पहुंची जाइ
काए कूं मैया यादि करीऊं जल्दी देउ बताइ।
इकु परदेसी आयौ तेरे न्यां व्वाऊ ऐ लाम्रौ लिवाइ
कै तौ कहनौ मेरौ मानौ, नई भुसक दऊं चढ़वाइ।
न्यांते खोजी चलि दए, पिंजरा लियौ उठाइ
आइ पिंजरा आगे धरयौ माता गई रिस्याइ
माता नें मंतुर पहलौ छोड्‌यौ, कुतिया लई बनाइ
गंडा काटि दयौ लाला कौ, हाल रूप है जाइ
हात जोरि करना करि रह्यो, माता तैंने लयौ बचाइ।

न्यांते माता विदा है गई, हिंगुलाज पहुंची जाइ।
न्यांते मेरो राजा चलि दयौ रानी ढिंग पहुंच्यौ जाइ
बोलै रानी न्यों कहै मेरी सुनि रंग ढोला बात
"कैसी त्तते भई तिहारी, जल्दी देउ बताइ
रनछेत्तर में जीति कें आयौ, अब मेरी अबला ई गई जिताइ।
न्यां की बातें न्यांई छोड़ौ अगिया और करौ तैयार
भजूं सारदा माई और गुरुदेव मनाऊं
गुरुई के लागूं पाइ जिननृ मोइ ज्ञान बताइ।
आर बुद्दि परगत भई, गुरु गन्नेस मनाइ।
बंगालौ पांछें दयौ, आगें जलौ अंधाइ।

६—वीरसैन

सुमिरुं सीता राम और सारदा भमानी
मुखं विराजै आइ कहूं कछू उजिल बानी
आउ बुद्दि परगट होइ मैया, गुरु गन्नेस मनाइ
जगदेव की लीला गाऊं सुनौ सबै चित लाइ।
बंगालौ पाछें दयौ, जानें लीए राम मनाइ।
मजलि मजलि ते चलि रह्यौ राजा, आगे कूं बढ़ि जाइ।
एक मजलि दूजी चल्यौ तीजी पै झमार्‌यौ जाइ।
न्यांते तौ म्वांजू गयौ, पहुंच्यौ वीरनगर पै जाइ।
घोड़ा थान लगाइ परदेसी, तमुआ दए गढ़वाइ।
सूखौ तालु रहै राजा कौ, जामें पानी दीसै नांइ
बीजकु लिखि रह्यौ ग्वा पटिया में, राजा रह्यौ निहारि
बांचि रह्यौ ब्वा बीजक कूं सोचि सोचि पछिताइ
जौ कहूं आवै धारा नगरी कौ राजा, देगौ सीस चढ़ाइ।
सीस चढ़ाइ देइ बो राजा, ताल पानी है जाय।
घोड़ा ऐ प्यास लगी ऐ भारी, घोड़ा रह्यौ अकुलाइ
बोलै घोड़ा न्यों कहै, मेरी सुनै जगद्देव बात
कै तौ पानी लाओ मैया, नई छूटे जांत पिरान
खांडो तौ खेंच्यौ राजा म्यानते, लै मैया कौ नामु
घंटा हालि गयौ मैया कौ, लांगुर लीयौ बुलाय।
जल्दी देखौ मेरे बेटा, पल मति करौ अबार
बीर नगर में फिर्‌यौ जगद्देव, व्वाइ चौंन देखौ जाइ।
न्यांते मेरी माता चलि दई, लाला ढिग पहुंची आइ।
बोले माता न्यों कहै, मेरी सुनै जगद्देव बात
काए कूं प्रान गमावै बेटा, ताल में पानी है जाय।
खांड़ौ मारि दियौ माता नें, धर पै ते उड़ाई नारि।

ताल में पानी धरि अर्रानौ, चारों ओर कूं जाइ।
खवरि परी ऐ बीरसैन कूं ब्वाइ चौंन देखौ जाय।
न्यांते राजा चलि दयौ, पहुंच्यौ पहुंच्यौ ताल पै जाइ।
बोलै बोलै माता न्यों कहै मेरी सुनिलै राजा बात
कै तौ सीसु हर्‌यौ होइ बेटा कौ, नई तोइ कालु खाइ जाइ।
हात जोरि पामन परि गयौ, गु तौ लै लै लबज बतराइ।
मेरे बस की नांइ मेरी माता, आइ मिले करतार।
सीसु उठाइ लियौ मैया नें घर पै दियौ जमाइ
बोलै फूलमदे न्यौं कहै, मेरी सुनि लै भैना बात
जूठौ सीसु मैं नांइ लुंगी धर्म कौ सीस जमाइ
नारियल लियौ मँगाय माता नें, धर पै दयौ जमाइ
मंतुर छोड़ि दियौ माता नें, सीसु अमर है जाइ
हात जोरि कें राजा बोल्यौ, सुनि मेरे करतार
आइकें मेरी खबरि लई ऐ नामु अमर है जाइ।

१०—बीरमती

आगें राजा चलि दयौ, पाछें ते राजकुमार
न्यांते तौ म्वां जूं गयौ, पहुँच्यौ पहुँच्यौ कचैरी जाइ।
सगु नंगर बुलवायौ राजा नें, दई कचैरी जुरवाय
हाथ जोरि के सगरे बोले गयौ समैया आइ
इक दुखिया वो बोलन लागो, आयौ ओसरौ आजु
आजु कौ कालु ऐ मेरे बेटा कौ मरुंगी जहर विसु खाइ।
बोलै जगद्देव न्यों कहै, सुनि माता मेरी बात
तेरे बेटा के बदले में माता, मैं दुंगो जानि गमाइ।
बीरनगरु बनि छोड़यौ, पहुँच्यौ बेटी ढिग जाइ
सगरे भैया न्यों कहै ब्राते लै लै लबज बतरांइ।
और की आई में मति मरे बेटा तोइ कहा बनि आइ
न्यांते तौ म्वांजू गयौ राजा, पहुँच्यौ रनमासन जाइ
रनमासन में पहुँचि गयौ ऐ, दीनों पलंग नवाइ
फूलन की ब्बानें सेज बिछाई, दए छिरकाइ कराइ।
अतरन के छिरकाव भए ऐं, फूल दए विछवाइ।
आधी राति कौ आयौ समैया, रानी सोइ गई पाम पसारि
नागिन निकरि रही ब्बा मुखते लहर-लहर लहराइ
मैया नें तौं लाँगुरा भेज्यौ पल मति देर लगावै।
बीर नगर में फिर्‌यौ जगद्देव ब्बाइ चौंन आवै वचाइ।
तेगा खेंचि लयौ लाला नें लै लै लवज बतराइ।
तेगा खेंचि अलग धरि दीयौ म्यानु जु दियौ लगाइ।

म्यान में नागिन आई गई ऐ, दीनी मुसक चढ़ाइ ।
अचेत ते राजा सोइ गयौ, म्वां खबरि रही हति नांइ।
परभाते घौपरु है गयौ, परि राजा जग्यौ हतु नांइ।
रानी उठि कै चालन लागी, मन सोचै पछिताइ ।
जाइ दिना ते लोटा ढार्‌यौ आइ मिले करतार ।
उठि कें बैठ्यौ है गयौ लाला लै मैया कौ नामु
बोलै बोलै रानी न्यों कहै याते, सुनि परदेसी बात ।
भीत दिना ते तेरौ लोटा ढारूँ, लैंतौ तेरौ नामु ।
पालदे पमार कौ आवैं जगद्देव, कै आइ मिलें करतार ।
मेरी फांसी छूटी ऐ करता, अब मन सरूप है जांउ।
कै तौ मेरी भाभरि डारौ, लै चलौ संग लिवाइ ।
अब न निठैगी, अब न निठैगी, संग चलुंगी तेरे साथ ।
बोल तौ जगद्देव न्यों कहै बाते सुनि लै भैया बात
धर्म कौ पिता लगतु ऐ बीरसैन धर्म की तू बहिन ऐ।
पाप गठरिया मति बाँधै भैया अब जीवौ नांउ
बोलै बोलै रानी न्यों कहै, बाते सुनिलै बलमा बात ऐ ।
तेगा खेंचि लयौ लाला नें मुख ज्वाला भहराइ ।
एक टूंक ते द्वै करूं धर पै ते उड़ाइ दऊं नारि ।
हात जोरि वो पामन परि गई, लै लै लबज बतराइ ।
धर्म कौ भैया लगतु ऐ मेरौ खूनु माफु है जाइ ।
सगु नंगर की फांसी छूटी, बखतु मिल्यौ ऐ मां आइ ।
न्यांतै तौ म्वां जू गई, पहुँची पहुँची पित ढिग जाइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै बाते सुनि लेउ बेटी बात
कौनें तौ तेरी बन्दि छुड़ाई जल्दी देउ बताइ
बोलै बोलै बेटी न्यौ कहै मेरी सुनौ पिताजी बात
एकु परदेसी आयौ महल में, दीनी बन्दि छुड़ाइ ।
चारि संतरी राजा नें भेजे, लाला ढिग पहुँचे जाइ
बोलै संतरी न्यौ कहै, मेरी सुनि लै भैया बात
राजा नें तू जल्द बुलायौ सुनि लै भैया बात
बोले बोले राजा न्यौं कहै मेरी सुनौ संतरी बात
घर कूं देर होंति ऐ भैना, राजा ते कहियौ जाइ ।
न्यातें मेरौ राजा चलि दयौ, फूलमदे पै पहुँच्यौ जाइ ।
बोलै फूलमदे न्यों कहै, सुनि रंग ढोला बात
कैसे प्रान बचे मेरि बालम, जल्दी देउ बताइ ।
नगर कोट ते माता आई, म्वां आइ मिलै करतार
सबकी बंदि छूटि गई रानी, झूटु कही ना जाइ ।

बनते आइ गये रामु टापु घोड़न की बाजी
जल कौ लोटा हात, द्वार पै भगिनी ठाड़ी
तू कन्या समतूल दूसरी ज्वाला रानी

११—बज्रकोट

भजूं शारदा माइ और गुरुदेव मनाऊं
जो हरि होंइ दयाल कछू हरि के गुन गाऊं
आजु बुद्धि परगट हो मैया, गुरु गन्नेस मनाइ
जगदेव की लीला गाऊं सुनौ सभा चित लाइ
न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, जानें साहिर गहि लई गोद
एक मजलि दूजी चल्यौ तीजी पै झमार्यौ जाइ
बज्जुरु को बन्यौ दाने कौ म्वांई करें बिसराम
बोलै बोलै राजा न्यों कहै मेरी सुनि फूलमदे बात
तुम तौजूं भोजन करौ मैं करुं नगर की सैर
न्यांते तो म्वांजूं गयौ राजा पहुंच्यौ चौकी जाय
पहरेदार घूम रहे व्वाके लै लै लबज बतराइ।
रस्ता बन्द है रही मैया न्यां है कें हुति नांइ।
बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनिलै भैया बात
रस्ता छोड़ि देउ मेरे मैया, चलौ हमारे साथ
न्यांते राजा चलि दयौ दाने पै पहुंच्यौ जाइ
बोलै दानों न्यों कहै, मेरी सुनि परदेसी बात
कौन दिसन ते आयौ भैया, परगासै अपनौ नामु
पालदे पमार गोतु ऐ मेरौ जगदेव मेरौ नामु
सुनत नाम जगदेव कौ सिर नीचौ नवाइ गयौ नारि
भैयन पै व्वानें खबरि भेजि दई भैया लिये बुलाइ
सौन चिरैया आई मेरे भैया, जल्दी पकरौ आइ।
बज्रकोट में तौ राजा फिर गयौ, न्यां कोई संग न सहाय
कहां गई मेरी मात कंकाली, कहां हिंगुलाज की माइ
बामन भैरों कहां जु गये, कहां गये छप्पन कलुआ जाइ
इतनी बात सुनी माता ने सिंघासन गयौ हालि
लांगुरु बीर मातु बुलवायौ देखौ चौं न बेटा जाय।
ऐसौ दानी कहियतु भैया, हम कूं दानु मिलि जाय।
राजा नें तौ सोचु न जान्यौ, तिरवाचा गयौ हारि।
मांगन होइ सो मांगिलै भैया, हमरि बीच भगमान
सीस कौ दानु जो दीजौ भैया, और कछ मांगतु नांइ।
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनि लै दाने बात
कछू न मांगन जान्यौ भैया, कछू मांगै दरबार

खांडों तौ खेच्यौ राजा म्यानते राजा नें धड़ ते उड़ाइ दई नारि
जोई दानु तैनें मांग्यौ भैया, जाई ऐ लै लै आजु
ठाड़ी तौ रानी रोमती, लै तिरलोकी कौ नामु
हातन मंहदी रचि रही, नांए छूटे हरद के दाग
सिंघासन हाल्यौ माता कौ लांगुर लियौ बुलाइ
देखै न देखै मेरे बेटा कुंसौ भगतु सतायौ।
वज्रकोट में घिरगयौ बेटा, व्वाइ चौन देखै जाइ।
सिंह सजाइ दै जल्दी लांगुर, पलक न करै अवार
सिंह सजाइ दियौ व्वा लांगुर नें पलक न करी अवार
न्यांते मेरी माता चलि दई, पहुंची राजा ढिग जाइ।
विकट बनीन में रानी रोबै मन सोचै पछिताइ।
बोलै माता न्यों कहै, मेरी सुनि फूलमदे बात
कहै तौ सीस तेरौ व्वाई ऐ लायदूं, नहीं औरु करुं तैयार
व्वा कौ बाहिनौ व्वापे पहुंच्यौ, गुअमोइ चहिंयतु नांइ।
नारियल मगांइ लियौ माता ने धर पै दियौ जमाइ।
इमिरुत छोड़ि दियौ माता नें जे जु अमर है जाइ।
बोलै दानौ न्यों कहै भैया, सुनौ हमारी बात।
एक बात तौ औरु जौ रचि गई चलौ हमारे साथ।
सौमन रासि कारी सरसों की, सौमन पीरी न्यारी
दोनों तौ इकिठौरी कीनी, दीने गंज लगाइ।
राति राति में न्यारी है जाइ जब तू न्यांते जाइ।
बोले राजा न्यों कहै भाई, सुनि लै दाने बात।
ऐसौ इनमानु कहा नु देखौ, जल्दी कहौ अगार।
सरकतु धरि दयौ व्वा राजा नें जापै लिखि देउ आजु
धरि कें ध्यानु मातु अपनी कौ मन सोचै पछिताइ।
इतने में दलु हों तौ मेरौ, व्वाऊ ऐ लें तौ बुलाइ।
चींटा दलु बु आगे ठाड़ौ चरनन में परिजाइ।
हुकमु करौ तुम हुकमु करौ, जल्दी देउ बताइ
बोलै राजा न्यों कहै मेरी सुनि लेउ भैया बात
सांझ भई दिन गयौ मुंदनि पै गयौ समैया आइ।
द्वै सै मन सरसों है भैया, न्यारी न्यारी है जाइ।
मति घबड़ावै मति घबड़ावै, थोरी देर में है जाइ।
चींटा दलु लगि गयौ ऐ भैया, पीरी ऐ डारै न्यारी
सई सांझ ते लग्गा लगायौ आधी तौ ढरि जाइ।
आधी सरसों रहि गई भैया, सबेरौ पहुंच्यौ आइ।
थोरी देर के अब अरसा में सबु न्यारी है जाइ।

तो जूं तौ दिन निकर्यौ भैंया दानों पहुंच्यौ आइ।
न्यारे न्यारे ढेर परे ऐं अचिरजु कह्यौ न जाइ।
न्यांते तौ दानों चलि दयौ, पहुंच्यौ पहुंच्यों कचैरी में जाइ।
सगरे भैया बोलि ले, व्वानें मतौ कियौ ठहराइ।
कै तौ कोई तिरलोकी आयौ, कै कोई विद्यामानु ऐ।
हाथ जोरि कें दानों बोल्यौ ल लै लबज बतराइ।
चलौ तौ चलौ तुम चलौ मेरे भैया संग हमारे चले आउ।
न्याते तौ म्वांजूं गयौ दानों, राजा ढिग पहुंच्यौ जाइ
हाथ जोरि कें दानों बोल्यौ लै लै लवज बतराइ।
जीमनुदान दै दै मेरे भैया, न्यां मोते कछू हतु नांइ
इतने में मया हंकारी, लाला ढिग पहुची आइ
कहा ठठु रचि दयौ मेरे भैया जल्दी देउ बताइ।
बोलै जगदेव न्यों कहै मेरी सुनिलै माता मोइ।
दाने कौ मवासौ जीत्यौ माता अब कछु कसरि हति नांइ।
माता पहुंची दिलाफांक की कचैरी, आसनु रही ऐ लगाइ।

१२—दिलफांक

न्यांते मेरौ राजा चलि दयौ, चलत न करी अवार
न्यांते तौ म्वांजूं ठायौ पहुंच्यौ पहुंच्यौ कचैरी जाइ।
बैठे हैं रुहेले गंगा पार के, उनकी नगिनि धरी तरवारि
छम्म कचैरी है गई, कोई काऊ ते बोलतु नांइ
सबु भैयन कूं रमरमी, राजा कूं सात सलाम
बोलै राजा न्यों कहै, मेरी सुनि लै राजा बात
तेरे दरबार में माता आई जल्दी देऊ बताइ
सोल्है कला ते अबला ऊभी बेटा ते रही बतराइ
सुधि करि सुधि करि मेरे बेटा, खबरि रही ऐ क नांइ
बोलै बोलै राजा न्यों कहै, मेरे सुनिलै माता बात
यादि आइ गई ऐ लाला,कूं लै लै लबज बतराइ।
दै दै बेटा मेरी अमान्ति, अब छोड़न की नांउ
खांड़ौ तौ खेंच्यौ राजा म्यान ते धर पैते उड़ाई दई नारि।
लै लैरी माता अपनी अमान्ति जामें कछू उजुरु हतु नांइ
मैंनें तौ हंसि कें कही बेटा, तैंनें जौंहर डार्यौ पारि
तुही सतवादी निकर्यौ बेटा और मिलिबे को नांइ
सीसु उठाइ लियौ माता नें, धर पै दियौ जमाइ।
धक्का दै दीयौ फूलमदे ग्वाई ऐ रही समझाइ
जूठौ सीसु नांइ लेंउ, हमतौ तब जीनौ धरकार
काए कूं चंडी बात बनावै, घर अपने कूं जाइ

"कंकाली ! हिबाऊं माथौ ढांकीयो सु कासु; इतरी ताल माथौ उघाड़ौ हुतो, नै हिवै माथै कपड़ौ लियौ।"

ताहरां कंकाली बोली—"महाराजा ! इतरी ताल दरबार मांहै मरद कोई बैठो न हुतो, तै माथै कपड़ौ न लीयौ। तो हिवै दरबार माहै मरद आयौ; दातार, आयो, तै माथै कपड़ौ लीयौ। आज संसार माहै जगदेव पंमार नर छै, तादार छै।"

कवित्त

कंकाली कंनडी दिस दक्षिण हुं चली।
गुजरातह जे सिंह आइ तत-खिणहज मिली ॥
उलंघि कुली छतीस अथ साहण नहीं पारह ।
अधक अनोपम राइ ताम फल वंदत वारह ॥
सरग संपनाचकवै मगज भग्या मग्गभर ।
कंकाल कहै जे संघ सुणि, मोहि समीपम विवह पर ॥१॥
उत्तर दच्छिन पुव्व देस पच्छिम संपत्ती ।
नर नरिंद भुव पन्त कित्त कारण जोवंती ॥
जहां राइ जेसिंध कुली छतीस अवंनी ।
सिर कपड़ नह दीयौ वाम कर आसिका दिन्नी ॥
जब जगदेव पिख्यो नयण, सिर ढंकव आसिक दीयो ।
दाहिणै हाथ पसाव दियौ तब सु राव विखवाद कीयो ॥२॥
त्रिया चरित न लभई, अरघन हरस रसद्द ।
कुंन कारण सिर ढंकीयो, इम पूछै परमद्द ॥३॥
सब कोऊ ससमथ है, आपण पै आवास ।
ऐ पांचे अहलगिया, जसन हूवत तिण पास ॥४॥
सब कोऊ ससमथ है, चित्त चोखै मुह मिठ ।
दान खग जगदेव सम, खत्री अवर न दिट्ठ ॥५॥
मान हो राय मच्छर करां, जंपै बयण अक्षेस ।
जो आपै जगदेव तुहि, सम चौगुण हुं देस ॥६॥
तीन भुवण जस विसतरै, सरग मृत पाताल ।
परमद संक एसो भयौ, सिर दीजै कंकाल ॥७॥

कवित्त-स्त्री वाक्यं

आपौ गयवर गुडीय, अवल पटकूल विवह पर ।
दीजै गाम कोठार, रयण सोलह कंचण भर ॥
दीजै गऊ कूल महिष थट्ट थाली बहु भंतीय ।
पूत त्रिया दासी न दास बहु भांति निरंतर ॥
दीजंत दान हैमंर चमर धनुष खाग ग्रह मंडणो ।
जगदेव त्रिया इम उचरै, सीस न दीजै आपणो ॥८॥

जगदेव वाक्यं

आपूं गयवर एक राय तौ पंच समप्पै ।
पंच बुरी धूं दान, राय पंचासक अप्पै ।।
हीरा मांणिक लाल, देत मुहि मन्न न नंदै ।
कड़ी मूंदड़ी दियं, राय बहु भाई समदै ।।
दीजंत दान इमर चमर, धनुष खग्ग ग्रहि मंडणौ ।
जगदेव कहै सुन्दरि निसुणी, सीस न हुवै आपणौ ।।९।।
जिन्ह जीवन कारणै, काल दुकालहि संची ।
चिन्ह जीवन कारणै भोग भोयन रस मंची ।।
चिन्ह जीवन कारणै भोग कीजंत महावर ।
चिन्ह जीवन कारणै मिलै गुणवंती सुन्दरि ।।
जीव कै काज गढ़ संचीयै छत्र जोवन कंचन कसी ।
जगदेव जीव अति दोहिलौ, मम आपिस हुड हुड हसी ।।१०।।

द्वितीय स्त्री वाक्यं

तूं पंवार कुल मव:र:दु, तू मेवासा भंजण समदल ।
अप्पै तूं मग्गयौ मैज दीन्हौ तुझ बल ।।
कंकाली वीनवै सीस अप्पो मुगट मण ।
सुणौ राव जेसिंह करै, कंदलज अप्प मन ।।
अदबुद आया तन अंग वै वैण अनोपम चित्तधर ।
जगदेव कंकाली उचरै, सीस दीयंतौ विलंब न कर ।।११।।
धड़ा काट सिर दियौ, ता स तै अमृत वुट्ठौ ।
अधर वग्ग आहन्यौ सभा सब कनह ज दिट्ठौ ।।
अपन कर कपियो कित्त कारण तै दिन्हो ।
सुणै बोइत दातार, इसौ दत किण हीन किन्नो ।।
पमार भोज विकम पछौ ध्रम जास नाहीं कर व सै ।
अजरिज एह जगदेव कौ धड विण सिर हुड हुड हसै ।।१२।।
सभासीस संचयौ, हाक गजव उचरीयौ ।
पिख राइ गयौ भाजि, भाज मंदिर उतरीयौ ।।
तबही काल कंकाल बोल बोलै तिण वारह ।
दैण कह्यौ चोंगुणौ देह दिन्नौ जप वारह ।।
जेसिंह कहै कंकाल सुणि, मोहिच्छंडि लै लखसौं ।
पिख्योज सीस जगदेव कौ, भाग राव जेसिंह जौ ।।१३।।
तब न भांत उगवै तब न फण पनधर झलै ।
अरजन ग्रहै न बांण, करन पारथ्योज चलै ।।
ब्रह्मा छंडै वेद इंद्र किम रहै झरंतौ ।
ईस कृपण तद भयौ पवन जग रहैं वहंतौ ।।

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के प्रकाशन

१. "भारतीय साहित्य।" त्रैमासिक मुखपत्र। वर्षभर में ८०० पृष्ठों की गवेषणापूर्ण सामग्री। वार्षिक मूल्य–१२, रु०। एक प्रति–५, रु०। वर्ष भर के सजिल्द अंक १८, रु०; अजिल्द–१६, रु०। जनवरी १९५६ से प्रारम्भ।

२. "ग्रंथ-वीथिका।" अलभ्य एवं अप्रकाशित हस्तलिखित तथा अप्राप्य मुद्रित ग्रंथों का संग्रह। १९५६ के अंक में नौ ग्रंथ हैं और १९५७ के अंक में ग्यारह ग्रंथ हैं। मूल्य–१०, रु०।

३. "हिन्दी धातु संग्रह।" प्रसिद्ध भाषातत्त्ववेत्ता हार्नले के निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर। मूल्य–२, रु०।

४. "जाहरपीर गुरुगुगा।" सं०—डॉ० ... हरपीर का लोक गीत तथ ... ० ।

५. "भा ... भाषाओं में ऐतिहासिक उपन ... ० ।

६. "छन्द ... सं०—डॉ० विश्वनाथ प्र ...

७. " ... क्तियों के चमत्कार प ... ५, न० पै०।

८. ... श्रीराम शर्मा व

९. ... ोलाल 'शोला')

१०. ... डॉ० माता प्रसाद गुप्त।

११ " ... डॉ सत्येन्द्र नाथ घोषाल।

१२. " ... ०—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद।

१३. " ... –डॉ० विश्वनाथ प्रसाद।

१४. " ... ०० एफ० फर्तुगानोव।

... केसरी नारायण शुक्ल।

१५. " ... सं०—डॉ० सत्येन्द्र।

१६. " ... सं०—डॉ० सत्येन्द्र।

१७. " ... उदय शङ्कर शास्त्री।